

श्रीमन्महाराज
संस्कृत महापाठशाला पत्रिका

त्रैमासिकी

सम्पुटम् ४]

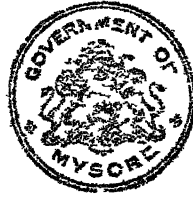
एप्रिल् १९२८

[सञ्चिका २

सम्पादक.

महामहोपाध्यायः

गणितरत्नम् लक्ष्मीपुरंश्रीनिवासचार्यः।



मैसूरु

राजकीय शास्त्रामुद्रालये सम्मुद्रिता

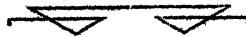
१९२८

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

विषयसूचना

| सङ्ख्या | विषय — प्रवन्ध | पुटसङ्ख्या |
|---------|--|------------|
| १ | पत्रिकाविषय — संपादक | १—२ |
| २ | कविकाव्यविचार — महाविद्वांस सरलकविसरिण चक्रवर्ति राजगोपालाचार्य | ३-१६ |
| ३ | कालिदासोपहरसङ्गता— महाविद्वांस कनकाडि ॥ गोपालकृष्णशास्त्रिण | १७-२४ |
| ४ | पूर्वमीमांसाभाष्यभूषणम्— महामहोपाध्याय पण्डितरत्नं लक्ष्मीपुर श्रीनिवासाचार्य. | ५७-८० |



विज्ञप्तिः

भो भो महाशया ! सहृदया ! सप्रश्रयमिदमिदानीं विज्ञापयाम-संस्कृतविद्याभिमानीन पुरुषप्रवरा. य कचन विषयमाधि-कृत्य संस्कृतभाषामय अनतिसक्षिप्तविस्तर उपक्रमोपसंहारपरिक-र्मित कस्याप्यनुद्वेगकर अचर्चितपूर्व कालदेशदशानुगुण प्रपञ्चोप-कारकर धर्माद्यविरुद्ध जीर्णमङ्गे सुभाषितम्” इति निर्वेदस्य “वीरा वाचैव केवलम्” इत्यपवादस्य वा प्रशमकर प्रस्पष्टमुख-विलासमुपन्यास विलिख्य यदि प्रेषयेयुर्महान्त, तेभ्यो महद्गुण-समर्प्य अनन्तान् धन्यवादान् पत्रिकायामस्यां तमुपन्यास पार-याम प्रकाशयितुम् ॥

यदीच्छति वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गाश्चरन्तीर्निवारयेत् ॥
न हीदृश संवनन त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दान च मधुरा च वाक् ॥

सपादकस्य

मूल्यप्रकारः

- १ अस्या पत्रिकाया वार्षिक अग्रिम मूल्य सार्धैकरूप्यक प्रापणव्ययपृथक्कृतम् (भारतमण्डले)
- २ विद्यार्थिना पुन एकैरूप्यकम्
- ३ विभिन्नदेशे सपादरूप्यद्वयम् (3 s) प्रापणभृति पृथक्

पत्रिकाप्राप्तिस्थानम्,

सि. रामानुजय्यंगार,

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालाध्यक्ष मैसूरु.

॥ श्री. ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

विषयसूचना

| संख्या | विषय —प्रबन्धार | पुटसंख्या |
|--------|---|-----------|
| १. | विद्यार्थिपारितोषिकसभा वृत्तान्त | २५—३८ |
| २ | कालिदासोपह्वरसङ्गता— महाविद्वांस कन्नवाडि॥ गोपालकृष्णशास्त्रिण | ३९—४६ |
| ३ | वर्णाश्रमधर्म — विद्यारत्नाकरा कोडवाशङ्क नरसिंहाचार्या. | ४७—६२ |
| ४ | महापाठशाला वृत्तान्त — शालाध्यक्ष | ६३—६८ |
| ५ | पूर्वमीमांसाभाष्यभूषणम्— महामहोपाध्याया पण्डितरत्न लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्या | ८१—१०४ |

विज्ञप्तिः

भो भो महाशया ! सहृदया ! सप्रभ्रयमिदमिदानीं विज्ञा-
पयाम—सस्कृतविद्याभिमानिन पुरुषप्रवरा. य कचन विषयमाधि-
कृत्य सस्कृतभाषामय अनतिसंक्षिप्तविस्तर उपक्रमोपसंहारपरिक-
र्मिन् कस्याप्यनुद्वेगकर अचर्चितपूर्वं कालदेशदशानुगुण प्रपञ्चोप-
कारकर धर्माद्यविरुद्ध 'जीर्णमङ्गे सुभाषितम्' इति निर्वेदस्य
'वीरा वाचैव केवलम्' इत्यपवादस्य वा प्रशमकर प्रस्पष्टमुख-
विलासमुपन्यास विलिख्य यदि प्रेषयेयुर्महान्त, तेभ्यो महद्भय
समर्प्य अनन्तान् धन्यवादान् पत्रिकायामस्या तमुपन्यास पार-
याम प्रकाशयितुम् ॥

यदीच्छति वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गाश्चरन्तीर्निवारयेत् ॥
न हीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥

सपादकस्य

मूल्यप्रकारः

- १ अस्या पत्रिकाया वार्षिक अग्रिम मूल्यं सार्धैकरूप्यक
प्रापणव्ययपृथक्कृतम् (भारतमण्डले)
- २ विद्यार्थिना पुन एकैकरूप्यकम् प्रापणव्यय पृथक्कृतम्
- ३ विभिन्नदेशे सपादकरूप्यद्वयम् (3 s) प्रापणभृति पृथक्

पत्रिकाप्राप्तिस्थानम्,

सि. रामानुजय्यंगार,

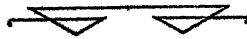
श्रीमन्महाराजसस्कृतमहापाठशालाध्यक्ष. मैसूरु.

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

विषयसूचना

| सङ्ख्या | विषय - प्रबन्ध | पृष्ठसङ्ख्या |
|---------|--|--------------|
| १ | श्रीकृष्णनृपोदय शिवभोगा कुके सुब्रह्मण्यशास्त्रिण | ६९ |
| २ | कालिदासोपश्रवसङ्गता महाविद्वांस क ॥ गोपालकृष्णशास्त्रिण | ८० |
| ३ | अम्बास्तुति केशवभट्ट , विद्यार्थी | ८८ |
| ४ | पाठशालावृत्तान्त | ८९ |
| ५ | भीमासाभाष्यभूषणम् महामहोपाध्याय पण्डितरत्न लक्ष्मीपुर श्रीनिवासाचार्या | १०५ |



विज्ञप्तिः

भो भो महाशया ! सहृदया ! सप्रश्रयमिदमिदानीं विज्ञापयाम -संस्कृतविद्याभिमार्गानि पुरुषप्रवरा य कचन विषयमाधिकृत्य संस्कृतभाषामय अनतिसक्षिप्तविस्तर उपक्रमोपसहारपरिकर्मित कस्याप्यनुद्वेगकर अचर्चितपूर्व कालदेशदशानुगुण प्रपञ्चोपकारकर धर्माद्यविरुद्ध “जीर्णमङ्गे सुभाषितम्” इति निर्वेदस्य ‘वीरा वाचैव केवलम्’ इत्यपवादस्य वा प्रशमकर प्रस्पष्टमुखविलासमुपन्यास विलिख्य यदि प्रेषयेयुर्महान्त , तेभ्यो महद्भयसमर्प्य अन तान् धन्यवादान् पत्रिकायामस्या तमुपन्यास पारयाम प्रकाशयतुम् ॥

यदीच्छति वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गाश्चरन्तीर्निवारयेत् ॥
न हीदृश संवनन त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥

सपादकस्य

मूल्यप्रकारः

- १ अस्या पत्रिकाया वार्षिक अग्रिम मूल्यं सार्धैकरूप्यक प्रापणव्ययपृथक्कृतम् (भारतमण्डले)
- २ विद्यार्थिनः पुन एकैरूप्यकम् प्रापणव्यय पृथक्कृतम्
- ३ विभिन्नदेशे सपादरूप्यद्वयम् (3 s) प्रापणभृति पृथक्

पत्रिकाप्राप्तिस्थानम्,

एच्. योगनरसिंहार्यः,

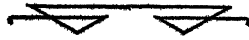
श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालाध्यक्ष. मैसूरु.

॥ श्री ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

विषयसूचना

| सङ्ख्या | विषय —प्रबन्धार | पुटसङ्ख्या |
|---------|--|------------|
| १ | कुन्दमालाविमर्श महाविद्वांस क॥ गोपालकृष्णशास्त्रिणः | ९१ |
| २ | जीवन्मुक्तिपूजा योगनृसिंहार्या , महापाठशालाभ्यक्षाः | १०८ |
| ३ | उपनिषत्सारार्थ महामहोपाध्याय विद्यानिधि विरुपाक्षशास्त्रिण | ११८ |



विज्ञप्तिः

भो भो महाशया ! सहृदया ! सप्रश्रयमिदमिदानीं विज्ञापयाम—संस्कृतविद्याभिमानिन पुरुषप्रवराः य कचन विषयमाधिकृत्य संस्कृतभाषामय अनतिसंक्षिप्तविस्तर उपक्रमोपसंहारपरिकर्मित कस्याप्यनुद्वेगकर अचर्चितपूर्व कालदेशदशानुगुणं प्रपञ्चोपकारकर धर्माद्यविरुद्ध “जीर्णमङ्गे सुभाषितम्” इति निर्वेदस्य ‘वीरा वाचैव केवलम्’ इत्यपवादस्य वा प्रशमकर प्रस्पष्टमुखविलासमुपन्यास विलिख्य यदि प्रेषयेयुर्महान्त, तेभ्यो महद्भयसमर्प्य अनन्तान् धन्यवादान् पत्रिकायामस्या तमुपन्यास पारयाम प्रकाशयितुम् ॥

यदीच्छति वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गाश्चरन्तीर्निवारयेत् ॥
न हीदृशं संवनन त्रिषु लोकेषु विद्यते ।
दया मैत्री च भूतेषु दानं च मधुरा च वाक् ॥

सपादकस्य

मूल्यप्रकारः

१. अस्या पत्रिकाया वार्षिक अग्रिमं मूल्यं सार्धैकरूप्यकं प्रापणव्ययपृथक्कृतम् (भारतमण्डले.)
२. विद्यार्थिनः पुन एकैरूप्यकम् प्रापणव्यय पृथक्कृतम्
३. विभिन्नदेशे सपादकस्य द्वयम् (3 s) प्रापणभृति पृथक्

पत्रिकाप्राप्तिस्थानम्,

एच्. योगनरसिंहार्यः,

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालाध्यक्षः मैसूरु.

विषयसूचिका.

| विषय | पृष्ठ. |
|----------------------------|--------|
| प्रतिज्ञासूत्रेऽथशब्दार्थः | १ |
| „ अतश्शब्दार्थ | १२ |
| चोदनासूत्रे चोदनापदार्थ | १५ |
| „ इयेनविचारः | २५ |
| निमित्तसूत्रम् | ३० |
| प्रत्यक्षसूत्रम् | „ |
| स्तूपदार्थविचार | ३४ |
| औत्पादिकसूत्रम् | ४० |
| कृत्तिकारमतम् | ४३ |
| तत्र प्रत्यक्षसूत्रम् | ४४ |
| निरालम्बवाद | ४६ |
| तन्निरास | ४९ |
| स्वमतत्त्वम् | ५१ |
| असत्यात्सत्यासिद्धिः | ५२ |
| शून्यवाद माहायानिक | ५४ |
| तन्निरास | ५७ |
| ज्ञानानुमानसिद्धान्त | ५९ |
| प्राकट्यम् | ६३ |
| अनुमानम् | ६६ |
| उपमानम् | ७१ |
| अर्थापत्तिः | ७२ |
| अभावः | ७३ |
| चित्राक्षेपः | ७५ |
| संबन्धाक्षेप | ७९ |

| विषय | पृष्ठसं. |
|----------------------------|----------|
| स्फोटवाद | ८१ |
| आकृतिवाद | ८८ |
| वनवाद | ९० |
| सबन्धाक्षेपपरिहार. | ९२ |
| चित्राक्षेपपरिहार | ९८ |
| आत्मवाद पूर्वपक्ष | १०० |
| „ सिद्धान्त | १०७ |
| शब्दानित्यताधिकरणपूर्वपक्ष | ११४ |
| „ सिद्धान्त | ११७ |
| वाक्यार्थाधिकरण पूर्वपक्ष | १२९ |
| „ सिद्धान्त | १३२ |
| भावनावाक्यार्थ | १३६ |
| अभिहिताद्यन्वय. | १३८ |
| मतान्तरम् | १३९ |
| अपौरुषेयताधिकरणम् | १४० |



शोधनपत्रिका.

| पुट | पङ्क्ति | पठनीयम् | पुट | पङ्क्ति | पठनीयम् |
|-----|---------|-------------|-----|---------|---------------|
| 92 | 21 | तत्साधना | 64 | 9 | कल्पनसि |
| 95 | 14 | क्लिञ्जता | 69 | 21 | शाक्या |
| 96 | 11 | भयादा | 7~ | 7 | देश) म् |
| ,, | 21 | र्यार्थत्वे | 78 | 15 | धीन |
| 97 | 14 | जैमिनि | ,, | 17 | निरपेक्ष |
| 9 | 4 | समामन | 78 | 19 | विरुद्धमि |
| 15 | 19 | चोदनैव | 81 | 17 | भामहे |
| 27 | 23 | ताहकू | 83 | 15 | वर्णपर |
| 31 | 17 | मन्यन्ते | 89 | 20 | वनवत् |
| 33 | 1 | सतीन्द्रिया | 93 | 1 | सबन्ध |
| 36 | 2 | भूतिर्यै | 94 | 6 | वृद्धिर्यस्या |
| 37 | 20 | यत्प्राथ | ,, | 12 | प्रमाणमन्त |
| 40 | 2 | नुपलब्धे | 95 | 2 | प्रथमभ |
| ,, | 6 | विश्वविदितौ | ,, | 3 | द्वय |
| ,, | 15 | तिष्ठन्त | 98 | 3 | यणस्या |
| 51 | 2 | निद्राका | 104 | 9 | समानक |
| 56 | 2 | सम्भवात् | 120 | 11 | कर्णश |
| ,, | 15 | तत्रापि | 124 | 22 | शक्यामि |
| ,, | 20 | रस्तदा | 132 | 22 | कल्प्यते |
| 57 | 13 | अतो | 134 | 1 | वाक्यार्थ |

इदमवधेय—आदित 8 म पुटपर्यन्तं पत्रिकापुटसंख्या निवे-
शिता । तत पृथगेव संख्या पुस्तकसौकर्याय प्रकाशिता ।

इद पुनरवधेय—अष्टमपुटभाष्यं अन्त्य पङ्क्तित्रयं सप्तमपुटभा-
ष्यान्तभागे पठनीयम् ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका

प्रतिमासत्रय प्रकटीक्रियमाणा

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समा

(ईशोपनिषत्)

सपुट-४]

जनवरि १९२८

[सञ्चिका-१

येन ध्वस्तमनोभवेन बलिजित्काय पुरास्त्रीकृतो
यश्चोद्वृत्तभुजङ्गहारवलयोगगा च योऽधारयत् ।
यस्याहुश्शशिमच्छिरोहर इति स्तुत्य च नामामरा
पायात्स स्वयमन्धकक्षयकरो न स्सर्वदोमाधव ॥

स्वविषयः

अयि ! महाशया इदमिदानीमवधारयितुमर्हन्ति भवन्तः तत्र
भवन्तः अशेषजनसभावनीयाः असंभवदवद्यगन्धा अस्या पत्रिकायाः
ग्राहक्य अनुग्राहकाः पाठका प्रचारकाश्च महान्तः ॥

पत्रिकायाः पुनरस्यास्तृतीयोऽप्यब्दपूर्त्युत्सवः श्रीमतो महाराजस्य
रजतमहोत्सवेन साकं निर्वृत्त इति महाभाग्यमेवैतत् ॥

एतस्या पत्रिकायाः तुरीयेऽपि वर्षारम्भे साजलिबन्धेन शिरसा
सनमोवाकेन वचसा सदैवसंपदा मनसा च भगवन्तमुभयाविभूतिक-
मुमयलिङ्गक वासुदेव समुपास्य भूयोभिर्धन्यवादैः सदयहृदयान् पत्रि-

काया आहकाननुग्राहकाश्च महोदारान् अभिनन्द्याविज्ञेन पत्रिका-
प्रकाशने प्रवर्तामहे । प्रयतामहे च यथाबल निरपरोधेनानेन व्यापारेण
जगदन्तरात्मान प्रशासितार सर्वेषामणीयासमणीयसा रुक्माम स्वं-
धीगम्य पुरुषोत्तम समाराधयितुम् ॥

इदमेव खल्वस्माक सोभाग्य, यद्वत्सरत्रय निरवग्रह पत्रिकैषा
प्राचरदिति । यत प्रारम्भशौर्यशालिन्य बह्व्य सस्कृतपत्रिका
अन्तरायप्रतिहता नैतावन्तमपि काल प्रकाशमुपगता । एषा तु खलु
तुरीयश्रीमत्कृष्णराजमहाराजकृपातिशयेन भवतामादरातिशयेन च तुरी-
यमपि वत्सरारम्भमहोत्सवमुद्युक्तेऽनुभवितुम् ॥

इत्.परं पुनरस्माक महतीधृतिरस्ति चिर जीवतीय पत्रिकेति ।
यस्मात् त्रैवार्षिक्येव बालग्रहपीडाऽपि बालानाम् । तस्मादाशास्महे
एतावन्तमर्थकलापमस्या पत्रिकाया । यथा—निरवद्यपथप्रस्थान सज्ज
नचित्तिविनोदन अनुद्वेगकरवचन सभवत्यप्यपराधेऽसुलभसमाधान सुभा-
षितप्रवचनं महाजनमानसोल्लासैकप्रयोजन इत्यादिकम् ॥

पत्रिकायामस्या प्रतिपाद्या विषया समुद्देशविशेषा सपत्तिपारि-
कराश्च यथावस्थिता एव अतीतेषु वर्षारम्भेषु सम्यगेव ससूचिता इति
पुनरप्यसकृदावेदनेन नैव विक्षिपाम. महाजनाना विविधव्यापारावधान-
निरवकाशानि अपूर्वविषयग्रहणसमुत्सुकानि मनासि । पर तु पत्रिका-
प्रकाशनपदसुलभाः स्तुलितविशेषाः मर्षणीया महाशयैरिति भूयोभूय
प्रार्थिता अपि पुन. प्रार्थयामहे ॥

शय्या शाद्वलमासन शुचिशिला सद्य द्रुमाणामघः

शीत निर्झरवारि पानमशन कन्दा सहाय्य भृगा ।

इत्यप्रार्थितलभ्यसर्वविभवे दोषोऽयमेको वने

दुष्प्रापार्थिनि यत्परार्थघटनावन्ध्यै वृथा स्थीयते ॥

(उपकार परो धर्मः) [नागानन्दनाटकम्.]

कविकाव्यविचारः

गुणाढ्य

| | |
|--|---|
| प्रतिष्ठानपुराधीशसातवाहनभूपते । | |
| सभायामाद्यशतके गुणाढ्योऽभूद्बुधाग्रणीः ॥ | १ |
| अयं महाकविश्चक्रे भूतभाषामयी पराम् । | |
| बृहत्कथा सप्तलक्षग्रन्थैः परिमिता शुभाम् ॥ | २ |
| प्राक्तेनेषु प्रबन्धेषु गुणाढ्यस्य च तत्कृते । | |
| नाम निर्दिश्यते तैस्तैस्तत्रतत्र सुधीवै ॥ | ३ |
| तच्च वासवदत्ताया काव्यादर्शे च दृश्यताम् । | |
| भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्था बृहत्कथाम् ॥ | ४ |
| बाणस्तु हर्षचरिते प्रशसा कुरुते यथा । | |
| बृहत्कथा समुद्दिश्य गुणाढ्यकविनिर्मिताम् ॥ | ५ |
| समुद्दीपितकन्दर्पा कृतगौरीप्रसाधना । | |
| हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय बृहत्कथा ॥ | ६ |
| ^१ कादवर्या तथा वक्ति बाणो गद्यकवीश्वर । | |
| इत्यस्ति दशरूपेऽपि “विभाव्य च बृहत्कथाम्” ॥ | ७ |
| त्रिविक्रमकविन्द्रेण नलचप्वामितीरितम् । | |
| गुणाढ्यस्य कवीन्द्रस्य कथा वीक्ष्य रसोत्तराम् ॥ | ८ |
| शश्वद्वाणाद्वितीयेन नमदाकारधारिणा । | |
| धनुषेव गुणाढ्येन नि शेषे राजितो जन ॥ | ९ |

^१कादवर्यामुज्जयिनीवर्णने — “बृहत्कथाकुशलेन” इति ।

| | |
|---|----|
| आर्यासप्तशतीनाम्नि गोवर्धनविनिर्मिते । | |
| महाकवेर्गुणाढ्यस्य प्रशसा परिदृश्यताम् ॥ | १० |
| अतिदीर्घजीविदोषाद्व्यासेन यशोऽपहारित हन्त । | |
| कैर्नोच्येत गुणाढ्यः स एव जन्मान्तरापन्न ॥ | ११ |
| ^१ अलकारे परिकरे चित्रार्थं न बृहत्कथाम् । | |
| इत्यप्यदीक्षितकविः प्रत्न पद्यमुदाहरत् ॥ | १२ |
| ^२ पाश्चात्यपण्डित कोऽपि वेबराख्यो विमर्शक । | |
| गुणाढ्यं क्रिस्तशके षष्ठेऽभूदिति मन्यते ॥ | १३ |
| आचार्यदण्डिन कालस्स एवेति च वक्तव्यम् । | |
| ^३ दण्डिनाऽस्या कथायास्तु प्राचीनत्वं समर्थितम् ॥ | १४ |
| एवमसि स मेधावी वेबराख्यविमर्शक । | |
| गुणाढ्यदण्डिनोर्वक्ति समकालस्थितिं कथम् ॥ | १५ |
| ^४ प्रथमे शतके क्रिस्तद्वितीये शतकेऽथवा । | |
| गुणाढ्यस्सबभूवेति भूलराख्य महाशय ॥ | १६ |
| ^५ कीर्ताख्य कोऽपि पाश्चात्यविमर्शकधुरधर । | |
| गुणाढ्यस्तुर्यशतके बभूवेति वदत्यहो ॥ | १७ |

^१ कुवलयानंदे परिकरालकारोदाहरणे दृश्यता ।

^२ Webers history of Indian Sanskrit literature

^३ मृतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थं बृहत्कथाम् ।

इत्यत्र—प्राहुरितिपदेन स्वस्माद्बृहत्कथाया बहुप्राचीनत्वं सूचयत्याचार्यदण्डीति नेदमविदितं विदुषाम् ।

^४ A Macdonell's Sanskrit literature P 376

^५ A B Ceith's Sanskrit literature P. 93.

| | |
|--|----|
| प्रायस्त्वय स्वभाव स्यात्पाश्चात्याना महात्मनाम् । | |
| यत्प्रज्ञभारतीयाना कृतीना कृतिनामपि ॥ | १८ |
| अर्वाचनत्व यत्नेन स्थापनीय विशेषत । | |
| तेन पाश्चात्यसबोधाद्धीर्बभूवेति सिद्ध्यति ॥ | १९ |
| यदि प्रमाण लभ्येत स्वसिद्धातविघातकम् । | |
| तदा प्रक्षिप्तमित्युक्ता साधयन्ति स्वसविदम् ॥ | २० |
| अहो ! महान् समारम्भ आङ्गानामिष्टसाधने । | |
| शान्ता वय भारतीयस्ते वदन्तु यथातथा ॥ | २१ |
| अस्माक तु मत तावत्सातवाहनभूपते । | |
| सभायामाद्यशतके गुणाढ्योऽभूदिति स्थिरम् ॥ | २२ |
| कथामन्य समालम्ब्य ^१ रत्नावल्यादयोऽनघा । | |
| समुल्लसन्ति सर्वत्र ग्रन्था इति विमर्शका ॥ | २३ |
| काश्मीरानन्त राजस्य काले चैकादशे पुन । | |
| प्रकाशेन्द्रतनूजात क्षेमेन्द्रोऽभून्महामति ॥ | २४ |
| बृहत्कथा समालम्ब्य मजरीं कृतवान् स्वयम् । | |
| गीर्वाणभाषया सर्वजनवेद्यस्वरूपया ॥ | २५ |
| सक्षिप्तां ता समालोक्य रामभट्टतनूभवः । | |
| सोमदेवोऽनतराज काले ^१ चैकादशे पुन. ॥ | २६ |
| गभीरया मधुरया वाचा चक्रे कथार्णवम् । | |
| इति सिद्धातयत्यन्ये विमर्शनविचक्षणा. ॥ | २७ |

^१ रत्नावली—नागानन्द—प्रियदर्शिका—पञ्चतन्त्र—कादवरी—मालती—
माधव—मुद्राराक्षस—वेतालपञ्चविंशति—हितोपदेशादयो ग्रन्था बृहत्कथा
मवलम्ब्यैव समुत्पन्ना इति कथासारिस्तागरोपोद्धाते काशीनाथशर्मा
लिखति । ^{१-२} क्रिस्तैकादशेशतके.

| | |
|---|----|
| भूतभाषामयीं दृष्ट्वा सोमदेवमहाकवि । | |
| गैर्वाण्या रचयामास कथा रसघनिष्ठया ॥ | २८ |
| भूतभाषामयी सा तु खण्डेऽस्मिन्भारतेऽधुना । | |
| द्वीपातरेषु वा हत न कुत्राप्युपलभ्यते ॥ | २९ |
| क्षेमैर्द्रोऽपि कथामेता गैर्वाण्यापर्यवर्तयत् । | |
| इतिस्फुरति नश्चित्ते ग्रन्थयोरवलोकनात् ॥ | ३० |
| गुणाढ्यचरित तावत्सोमदेवबुधाम्रणी । | |
| कथासागरनाम्नि स्वे लिखत्येव समीक्ष्यताम् ॥ | ३१ |
| विंध्यारण्यप्रविष्टेन पृष्टोऽय काणभूतिना । | |
| गुणाढ्य स्वीयचरित प्राहेत्यमिति सगतिः ॥ | ३२ |
| प्रतिष्ठानेऽस्ति नगर सुप्रतिष्ठितसञ्जकम् । | |
| तत्राभूत्सोमशर्माख्य कोऽपि ब्राह्मणसत्तम ॥ | ३३ |
| बभूव तस्य विप्रस्य श्रुतार्था नाम कन्यका । | |
| श्रुतार्थायाः सुतो जातस्त हि जानीहि मा सखे ॥ | ३४ |
| गणावतारो जातोऽय गुणाढ्यो नाम भूसुर । | |
| इति तत्कालमुदभूदतरिक्षात्सरस्वती ॥ | ३५ |
| कालेन पचता याता जननी मे महामते । | |
| अथ शोक समुत्प्लव्य बालोऽपि गतवानहम् ॥ | ३६ |
| स्वावष्टभेन विद्याना प्राप्तये दक्षिणापथम् । | |
| कालेन तत्र संप्राप्य सर्वा विद्या प्रसिद्धिमान् ॥ | ३७ |
| स्वदेशमागतोऽभूव दर्शयिष्यन्निजान् गुणान् । | |
| प्रविशन् चिरात्तत्र दृष्टवानुत्तमा श्रियम् ॥ | ३८ |

| | |
|---|----|
| कचित्सामानि छदोगा गायति च यथाविधि । | |
| कचिद्विवादो विप्राणामभृद्वेदविनिर्णये ॥ | ३९ |
| एवंप्रायाण्यह पश्यन् कौतुकानि पदेपदे । | |
| प्रासवान्राजभवन महेन्द्रसदनोपमम् ॥ | ४० |
| ततश्चात प्रविष्टोऽह शिष्यैरग्रे निवेदितः । | |
| आस्थानस्थितमद्राक्ष राजान सातवाहनम् ॥ | ४१ |
| शर्ववर्मप्रभृतिभिर्मन्त्रिभि परिवारितम् । | |
| रत्नासिंहासनासीनममरैरिव वासवम् ॥ | ४२ |
| विहितस्वस्तिकार मासुपविष्टमथासने । | |
| राज्ञा कृतादर चैव शर्ववर्मादयोऽस्तुवन् ॥ | ४३ |
| अय देव भुवि ख्यात सर्वविद्याविशारदः । | |
| गुणाढ्य इति नामास्य यथार्थमत एवहि ॥ | ४४ |
| इत्यादितत्स्तुतिं दृष्ट्वा मन्त्रिभि सातवाहन । | |
| प्रीतः सपदि सत्कृत्य मन्त्रित्वे मा न्ययोजयत् ॥ | ४५ |
| अथाह राजकार्याणि चिंतयन्नवस सुखम् । | |
| शिष्यानध्यापयस्तत्र कृतदारपरिग्रह ॥ | ४६ |
| कदाचित्कौतुकाद्भ्राम्यन्सर्वैर गोदावरीतिटे । | |
| देवीकृतिरिति ख्यातमुद्यान दृष्टवानहम् ॥ | ४७ |
| ततः कदाचिदध्यास्त वसंतसमयोत्सवे । | |
| देवीकृत तदुद्यान स राजा सातवाहन ॥ | ४८ |
| विहरन् सुचिर तत्र महेन्द्र इव नन्दने । | |
| वापीजलेऽवतीर्णोभूत्क्रीडित कृमिनीसखः ॥ | ४९ |

| | |
|---|----|
| असिंचत्तत्र दयितास्सहेल करवारिमि ! | |
| असिच्यत स तामिश्च वशाभिरिव वारण ॥ | ५० |
| अथैका तस्य महिषी राज्ञ स्तनभरालसा । | |
| शिरीषसुकुमारागी क्रीडती क्लममभ्यगात् ॥ | ५१ |
| सा जलैरभिषिचन्त राजानमसहा सती । | |
| अब्रवीन्मोदकैर्देव पारिताडयमामिति ॥ | ५२ |
| तच्छ्रुत्वा मोदकान् राजा द्रुतमानाययद्बहून् । | |
| ततो विहस्य सा राज्ञी पुनरेवमभाषत ॥ | ५३ |
| राजन्नवसर कोऽत्र मोदकाना जलातरे । | |
| उदकै सिंच मा त्व मामित्युक्त हि मया तव ॥ | ५४ |
| सधिमात्र न जानासि माशब्दोदकशब्दयो । | |
| नचप्रकरण वेत्ति मूर्खस्त्व कथमीदृश ॥ | ५५ |
| इत्युक्तम्स तथा राजा शब्दशास्त्रविदा नृप । | |
| परिवारे हसत्यतर्लज्जाक्रतो झडित्यभूत् ॥ | ५६ |
| परित्यक्तजलक्रीडो वीतदर्पश्च तत्क्षणम् । | |
| जातावमानो निर्लक्ष प्राविशन्निजमदिरम् ॥ | ५७ |
| पांडित्य शरण वा मे मृत्युर्वेति विचिंतयन् । | |
| ‘शयनीयपरित्यक्तगात्र’ सतापवानभूत् ॥ | ५८ |
| तत्र सर्वस्य रुद्धेऽपि प्रवेशे कथमप्यहम् । | |
| प्राविश मम पश्याच्चशर्ववर्मा लघुक्रमम् ॥ | ५९ |
| उपविश्याथ निकटे विज्ञप्त स मया नृप । | |
| अकारण कथं देव वर्तसे विमना इति ॥ | ६० |

| | |
|--|----|
| श्रुत्वापि सुचिर भूपस्तूष्णीमासीदवाञ्छुस्त्र । | |
| मामस्तमौनः साकूतमवदच्च तत परम् ॥ | ६१ |
| शिक्षमाणः प्रयत्नेन कालेन कियता पुमान् । | |
| अधिगच्छति पाण्डित्यमेतन्मेकथ्यता त्वया ॥ | ६२ |
| मम तेन विना ह्येषा लक्ष्मीर्न प्रतिभासते । | |
| विभवै किं नु मूर्खस्य काष्ठस्याभरणैरिव ॥ | ६३ |
| ततोहमवद राजन्वर्षैर्द्वादशभिः सदा । | |
| ज्ञायते सर्वविद्याना मुख व्याकरण नरैः ॥ | ६४ |
| अह तु शिक्षयामि त्वा वर्षषट्केन तद्विभो । | |
| श्रुत्वैतत्सहसा सेर्ष्यशर्ववर्मा किलावदत् ॥ | ६५ |
| सुखोचितो जन क्लेश कथ कुर्यादियच्चिरम् । | |
| तदह मासषट्केन देव ! त्वा शिक्षयामि तत् ॥ | ६६ |
| श्रुत्वैवैतदसमाव्य तमवोचमह रुषा । | |
| षड्भिर्मासैस्त्वया देव शिक्षितश्चेत्ततो मया ॥ | ६७ |
| संस्कृत प्राकृत तद्वद्देशभाषा च सर्वदा । | |
| भाषान्नयविद त्यक्त यन्मनुष्येषु सभवेत् ॥ | ६८ |
| शर्ववर्मा ततोऽवादीन्नचेदेव करोम्यहम् । | |
| द्वादशाब्दान्वहाम्येष शिरसा तव पादुके ॥ | ६९ |
| इत्युक्त्वा निर्गते तस्मिन्नहमप्यगम गृहम् । | |
| राजाऽप्युभयत सिद्धिं मत्वाऽऽश्वस्तो बभूव सः ॥ | ७० |
| विहस्त शर्ववर्मा च प्रतिज्ञा ता सुदुस्तराम् । | |
| पश्यन् सानुशयस्सर्व स्वभार्यायै शशस तत् ॥ | ७१ |

| | |
|---|----|
| साऽपि त दु खितोवाच सकटेऽस्मिन् तव प्रभो । | |
| विना स्वामिकुमारेण गतिरन्या न दृश्यते ॥ | ७२ |
| तथेति निश्चय कृत्वा पश्चिमे प्रहरे निशि । | |
| शर्ववर्मा निराहारस्तत्रेव प्रस्थितोऽभवत् ॥ | ७३ |
| सोऽपि वातैकभक्षस्सन् कृतमौन सुनिश्चय । | |
| प्राप स्वामिकुमारस्य शर्ववर्मान्तिक क्रमात् ॥ | ७४ |
| शरीरनिरेपेक्षेण तपसा तत्र तोषित । | |
| प्रसादमकरोत्तस्य कार्तिकेयो यथेप्सितम् ॥ | ७५ |
| आगत्य शर्ववर्मार्थ कुमारवरसिद्धिमान् । | |
| चिन्तितोपस्थिता राज्ञे सर्वा विद्या प्रदत्तवान् ॥ | ७६ |
| प्रादुरासश्च तास्तस्य सातवाहनभूपते । | |
| तत् क्षण किं न कुर्याद्धि प्रसाद पारमेश्वर ॥ | ७७ |
| राजार्हर्त्तानिचयैरथशर्ववर्मा | |
| तेनार्चितो गुरुरिति प्रणतेन राज्ञा । | |
| स्वामीकृतश्च विषये मरुकच्छनाग्नि | |
| कूलेपकण्ठविनिवेशिनि नर्मदाया । ॥ | ७८ |
| ततो गृहीतमौनोह राजान्तिकमुपागमम् । | |
| तत्र च श्लोकमपठत् द्विजः कश्चित्स्वय कृतम् ॥ | ७९ |
| त चाचष्ट स्वय राजा सम्यक्संस्कृतया गिरा । | |
| तत्रालोक्य च तत्रस्थो जन प्रमुदितोऽभवत् ॥ | ८० |
| ततोऽह कृतमौनत्वाद्वयवहारबाहिष्कृत । | |
| अनिच्छत तमामत्र च प्रणामेनैव भूपतिम् ॥ | ८१ |

| | |
|---|----|
| निर्गत्य नगरात्तस्माच्छिष्यद्वयसमन्वित । तपसे निश्चितो द्रष्टुमागतो विन्ध्यवासिनीम् ॥ | ८२ |
| इह प्राप्तोऽहमद्राक्ष पिशाचान्सुबहून्मून् । अन्योन्यालापमेतेषा दूरादाकर्ण्य शिक्षिता ॥ | ८३ |
| मया पिशाचभाषेय मौनमोक्षस्य कारणम् । प्रतिपालितवानाम्मि यावदभ्यागतो भवान् ॥ | ८४ |
| दृष्ट्वा त्वां स्वागत कृत्वा चतुर्थ्या भूतभाषया । मया जातिस्मृत्येत्येष वृत्तान्तो मेऽत्र जन्मनि ॥ | ८५ |
| एवगुणाढ्यवचसा साऽथ सप्तकथामयी स्वभाषया कथा दिव्या कथिता काणभूतिना ॥ | ८६ |
| ईदृशी च कथा कुत्र कदा कस्य कृतेऽभवत् । इतिचेत्पृच्छते तच्च कथ्यतेऽस्माभिरादरात् ॥ | ८७ |
| पृष्ट कदाचित्पार्वत्या शकर श्रितशकर । विद्याधराणा चरित प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ | ८८ |
| निरुद्धेऽपि तदा द्वारे पुष्पदन्तो गणोत्तम । अलक्षितो योगवस्त्रात्प्रविवेश स तत्क्षणात् ॥ | ८९ |
| प्रविष्ट श्रुतवान् सर्व वर्ण्यमान पिनाकिना । विद्याधराणा सप्तानामपूर्वं चरिताद्भुतम् ॥ | ९० |
| श्रुत्वाऽथ गत्वा भार्यायै जयायै सोऽप्यवर्णयत् । को हि वित्त रहस्य वा स्त्रीषु शक्नोति गूहितुम् ॥ | ९१ |
| साऽपि तद्विस्मयाविष्टा गत्वा गिरिसुताग्रतः । जगौ जया प्रतीहारी स्त्रीषु वाक्सयम् कुत ॥ | ९२ |

| | |
|--|-----|
| ततश्चुकोप गिरिजा नापूर्वं वर्णित त्वया । | |
| जानाति हि जयाऽप्येतदिति चेश्वरमभ्यधात् ॥ | ९३ |
| प्रणिधानादथ ज्ञात्वा जगादैवमुमापति । | |
| योगी भूत्वा प्रविश्येद पुष्पदन्तस्तदाऽशृणोत् ॥ | ९४ |
| जयायै वर्णित तेन कोऽन्यो जानाति हि प्रिये । | |
| श्रुत्वेत्यानाययद्देवी पुष्पदन्तमतिक्रुथा ॥ | ९५ |
| मर्त्यो भवाविनीति विह्वल त शशाप सा । | |
| शापान्त प्रति शर्वाणी शनैर्वचनमब्रवीत् ॥ | ९६ |
| विंध्याटव्या कुबेरस्य शापात्प्राप्त पिशाचताम् । | |
| सुप्रतीकामिधो यक्षः काणभूत्याख्यया स्थित ॥ | ९७ |
| त दृष्ट्वा सस्मरन् जातिं यदा तस्मै कथामिमाम् । | |
| पुष्पदन्त प्रवक्तासि तदा शापाद्विमोक्ष्यसे ॥ | ९८ |
| इत्युक्त्वा शैलतनया व्यरमत्तक्षणात्कुथा । | |
| आराधिताश्चेत् क्षांत्यैव के न कुर्युरनुग्रहम् ॥ | ९९ |
| ततस्समर्त्यैवपुधा पुष्पदन्तः परिभ्रमन् । | |
| नाम्ना वररुचि किंच कात्यायन इति श्रुतः ॥ | १०० |
| पारं संप्राप्य विद्याना कृत्वा नन्दस्य मन्त्रिताम् । | |
| स्निग्धः समाययौ द्रष्टुं कदाचिद्विन्ध्यवासिनीम् ॥ | १०१ |
| ददर्श च समीपेऽस्य पिशाचाना शतैर्वृतम् । | |
| काणभूतिं पिशाच त वर्ष्मणा सालसन्निभम् ॥ | १०२ |
| ततस्तस्मै कथामेतां वर्णयित्वा ततोऽब्रवीत् । | |
| इदानीं क्षीणशापोऽहं यतिष्ये देहमुज्झिनुम् ॥ | १०३ |

| | |
|---|-----|
| त्व च सप्रति तिष्ठेह यावदायाति तेऽन्तिकम् । | |
| शिष्ययुक्तो गुणाढ्याख्यस्त्यक्तभाषात्रयो द्विजः ॥ | १०४ |
| सोपि ब्रह्मिव क्रोधादेव्याः शसो गणोत्तमः । | |
| माल्यवान्नाम मत्पक्षपाती मर्त्यत्वमागत ॥ | १०५ |
| तस्मै महेश्वरोक्तैषा कथनीया महाकथा । | |
| ततस्ते शापनिर्मुक्तिस्तस्य चापि भविष्यति ॥ | १०६ |
| एव वररुचिस्तत्र काणभृतेर्निवेद्य सः । | |
| प्रतस्थे देहमोक्षाय पुण्य बदरिकाश्रमम् ॥ | १०७ |
| ततः स मर्त्यवपुषा माल्यवान् विचरन् वने । | |
| गुणाढ्य इति विख्यात काणभूर्तिं ददर्श स ॥ | १०८ |
| आश्रित्य भाषा पैशाचीं भाषात्रयविलक्षणाम् । | |
| श्रावयित्वा निज नाम काणभूतिमथाब्रवीत् ॥ | १०९ |
| पुण्यदन्तात् श्रुता दिव्या शीघ्र कथय मे कथाम् । | |
| येन शाप तारिष्यावस्त्व चाह च सम सखे ॥ | ११० |
| इति तेनार्थितस्तस्मै तदा पैशाचभाषया । | |
| विद्याधराणां चरित काणभूतिरवर्णयत् ॥ | १११ |
| तथैवच गुणाढ्येन पैशाच्या भाषया तथा । | |
| निबद्धा सप्तभिर्वर्षैः ग्रन्थलक्षणाणि सप्त सा ॥ | ११२ |
| मैता विद्याधरा हार्षुरिति तामात्मशोणितैः । | |
| अटन्त्या मप्यभावाच्च लिलेख स महाकविः ॥ | ११३ |
| गुणाढ्येन निबद्धा च ता दृष्ट्वैव महाकथाम् । | |
| जगाम मुक्तशापस्सन्काणभूतिर्निजा गतिम् ॥ | ११४ |

| | |
|--|-----|
| प्रतिष्ठा प्रापणीयैषा पृथिव्या मे बृहत्कथा । | |
| अयमर्थोऽपि मे देव्या शापान्तोक्तावुदीरितः ॥ | ११५ |
| तत्कथं प्रापयाम्येना कस्मै तावत्समर्पये । | |
| इति चाचिन्तयत्तत्र स गुणाढ्यो महाकविः ॥ | ११६ |
| अथैको गुणदेवाख्यो नन्दिदेवामिध पर । | |
| तमूचुत्तुरुपाध्याय शिष्यावनुगतावुभौ ॥ | ११७ |
| तत्काव्यस्यार्पणस्थानमेकं श्रीसातवाहन । | |
| रसिको हि बहेत्काव्यं पुष्पामोदमिवानिलः ॥ | ११८ |
| एवमास्त्विति तौ शिष्यावान्तिकं तस्य भूपते । | |
| प्राहिणोत्पुस्तकं दत्त्वा गुणाढ्यो गुणशालिनौ ॥ | ११९ |
| स्वयं च गत्वा तत्रैव प्रतिष्ठानपुराद्वहि । | |
| कृतसकेत उद्याने तस्थौ देवीविनिर्मिते ॥ | १२० |
| तच्छिष्याभ्यां च गत्वा तत्सातवाहनभूपते । | |
| गुणाढ्यकृतिरेषेति दर्शितं काव्यपुस्तकम् ॥ | १२१ |
| पिशाचभाषा तां श्रुत्वा तौ च दृष्ट्वा तदाकृती । | |
| विद्यामदेन सासूय स राजैवमभाषत ॥ | १२२ |
| प्रमाणं सप्तलक्षाणि पैशाच नीरसं वच । | |
| शोणितेनाक्षरन्यासो धिक्पिशाचकथामिमाम् ॥ | १२३ |
| तत् पुस्तकमादाय गत्वा ताभ्यां यथागतम् । | |
| शिष्याभ्यां तद्गुणाढ्याय यथावृत्तमकथयत् ॥ | १२४ |
| गुणाढ्योऽपि तदाकर्ण्य सद्यः स्नेहवशोऽभवत् । | |
| तत्त्वज्ञेन कृतावज्ञः को नामान्तर्न तप्यते ॥ | १२५ |

| | |
|--|-----|
| सशिष्यश्च ततो गत्वा नातिदूरं शिलोच्चयम् । | |
| विविक्तरम्यभूभागमग्निकुण्डं व्यधात्पुर ॥ | १२६ |
| तत्राग्नौ पत्रमेकैकं शिष्याभ्यां साश्रुवीक्षितम् । | |
| वाचयित्वा स चिक्षेप श्रावयन् मृगपाक्षिणम् ॥ | १२७ |
| नरवाहनदत्तस्य चरितं शिष्ययो कृते । | |
| ग्रन्थलक्षं कथामेका वर्जयित्वा नदीप्सिताम् ॥ | १२८ |
| तस्मिंश्च ता कथा दिव्यां पठत्यपि दहत्यपि । | |
| परित्यक्ततृणाहाराः अशृण्वन् साश्रुलोचना ॥ | १२९ |
| आसन्नभ्येत्य तत्रैव निश्चला बद्धमण्डला । | |
| निखिलाः खलु सारगं वराहं महिषादय ॥ | १३० |
| अत्रान्तरे च राजा मूढस्वस्थं सातवाहनम् । | |
| दोषचास्यावदन्वैद्या शुष्कमासोपभोजनम् ॥ | १३१ |
| आक्षिप्तास्तन्निमित्तं च सूपकारा बभाषिरे । | |
| अस्माकमीदृशं मासं ददते लुब्धका इति ॥ | १३२ |
| पृष्ट्वाश्च लुब्धका ऊचुर्नातिदूरे गिरावितम् । | |
| पठित्वा पत्रमेकैकं कोऽप्यग्नौ क्षिपति द्विज ॥ | १३३ |
| तत्समेत्य निराहाराः शृण्वन्ति प्राणिनोऽखिलाः । | |
| नान्यतो यान्ति तेनैषा शुष्कं मासमिदं क्षुधा ॥ | १३४ |
| इति व्याधवचः श्रुत्वा कृत्वा तानेव चाग्रतः । | |
| स्वयं सकौतुकाद्राजा गुणाढ्यस्यान्तिकं ययौ ॥ | १३५ |
| ददर्श तं समाकीर्णं जटामिर्वनवासतम् । | |
| प्रशान्तशेषशापाग्निधूमिकाभिरिवामितम् ॥ | १३६ |

| | |
|--|-----|
| नमस्कृत्य च पप्रच्छ त वृत्तान्त महीपति । | |
| ज्ञानी कथावतार तमाचख्यौ भूतभाषया ॥ | १३७ |
| ततो गणावतार त मत्वा पादानतो नृप । | |
| ययाचैता कथा तस्माद्विव्या हरमुखोद्गताम् ॥ | १३८ |
| अथोवाच स त भूप गुणाढ्य सातवाहनम् । | |
| राजन् षडग्रन्थलक्षाणि मया दग्धानि षट्कथा ॥ | १३९ |
| लक्षमेकमिद त्वस्ति कथैका सैव गृह्यताम् । | |
| मच्छिष्यौ तव चात्तैतौ व्याख्यातारौ भविष्यतः ॥ | १४० |
| इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य त्यक्त्वा योगेन ता तनुम् । | |
| गुणाढ्य शापनिर्मुक्तः प्राप दिव्य निज पदम् ॥ | १४१ |
| अथ ता गुणाढ्यदत्तामादाय कथा बृहत्कथा नम्रा । | |
| नृपतिरगान्निजनगर नरवाहनदत्तचरितमयीम् ॥ | १४२ |
| लक्षात्मिका कथामद्य पश्यता विदुषा हृदि । | |
| शिष्टनाशान्महदुःख हतः हा ! जायते ध्रुवम् ॥ | १४३ |
| रसोत्तराः कथाः श्रोतुं वाञ्छा यदि भवेद्भुवि । | |
| तर्ह्यवश्य कथा दृश्या गुणाढ्यकविनिर्मिता ॥ | १४४ |

इति सरलकविसूरे विद्याविभूषण, विद्यावाचस्पति,
काव्यविशारद, ज्ञानगुण करेत्यादि विरुदांकितस्य
महाराज तुर्य श्रीकृष्णराजास्थान महाविदुष
अकचति वास्त्यराजगोपालसूरे
कृतिषु कविकाव्य विचारे
द्वितीय प्ररोह

कालिदासोपज्ञरसज्ञता

कवयः

नत्वा किशोर नन्दस्य मन्दस्मितलसन्मुखम् ।

शृङ्गारानन्दसन्दोहं तनोमि कविनाक्रमम् ॥

भो भो तर्कव्याकरणालकारादिशास्त्रपारावारपारीणा. सरसाल-
कारकाव्यविचारचातुरीचुञ्चव, असाधारणकवितानिर्माणमार्मिकधुरीणा
सहृदया सद्यमिदमामोदयन्त्विति सप्रश्रयमावेदये ॥

विदितमेवैतदत्रभवता, यन्निसर्गसम्यञ्चि रमणीयवस्तुप्रतिपाद-
नविचक्षणकाव्यनिर्माणरञ्जितलोकपुञ्जानि कविकुलानि सरससूक्तिमुधा-
रसनिर्झरै सहृदयहृदयगमै पामराणामपि स्वान्तानि नितान्तमानन्द-
सन्दोहान्दिलन्यारचयन्तीति ॥ यदाहुः—

अविदितगुणापि सत्कविभणिति कर्णेषु वमति मधुघाराम् ।

अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृश मालतीमाला ॥

मल्लीसुमचयविलसत्परिमलमुचि वाचि यो न मोदत ।

ब्रह्मदयू वासुदयू र्वाग्मदयूर्वा किमेतेन ॥

परिच्छिन्नस्वादोमृतगुडमधुक्षौद्रपयसा

कदाचिच्चाभ्यासात् भजति ननु वैरस्यमधिकम् ।

प्रियाविम्बोष्ठे वा रुचिरकविवाक्येऽनवधि

नवाऽनन्दः कोपि स्फुरति तु रसोसौ निरुपमः । इत्यादि ॥

काव्यं च रसालंकारोल्लसितशब्दार्थसघटनात्मकमेव—

कविः शान्तो दक्षः सुजनविनुतः मुश्रुतरस

कलावेदी विद्वान् कलमृदुपद काव्यरचन ।

कृतज्ञो दैवज्ञ सद्यहृदय सत्कुलभव
 शुभाचार छन्दोगुणगणविवोकी स हि कवि ॥
 इत्येवलक्षणलक्षिताना कवीना भारती भारतीप्रसादलब्धमहिमा सकल-
 भुवनन्यपि करतलकलितवरसमानान्याकलयन्ती—
 नियतिकृतनियमराहिता ह्यदिकमयीमनन्यपरतन्त्राम् ।
 नवरसरुचिरा निर्मितिमादधती भारती कवैर्जयाति ॥
 इति सहृदयशिरोमाणिमम्भटभट्टप्रतिपादितादिशा विजयतेतराम् ॥
 तादृशी कविता च सहृदयहृदयावर्जिका लोके दुर्लभैव । यतो
 भण्यते—

नरत्न दुर्लभ लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा ।
 कवित्व दुर्लभ तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा ॥ इति ॥

कवीना च समय लोकक्रममतिशेते, न तु नियमेन तमनुवर्तते ।
 तथाहि—काविर्हि स्वकृतेषु महाकाव्येषु, अद्रिसामान्ये रत्नानि, अल्प-
 जलाशयेपि हसादीन्, नदीष्वप्यम्भोजादीनि कीर्त्यादौ शौक्ल्य, अकीर्त्या-
 दिषु नैल्य, प्रतापक्रोधादिषु रक्तता चकोरेषु ज्योत्स्नापान, सर्वजलेषु
 शैवाल, अशोके कामिनीपादाघातेन पुष्पोद्गममित्यादीन्यसन्ति वस्तून्-
 पनिबध्नाति ॥

वसान्ते मालतीपुष्पादीनि, चन्दने फलपुष्पे, कुट्मलेषु रक्तता,
 नारीणा श्यामता, इत्येवमादीनि सन्त्यपि वस्तूनि न निबध्नाति ।
 वर्षास्वेव शिखिनां प्रौढि हिमवत्येव भूर्जत्वक्, मलय एव चन्दनानि,
 हेमन्तशिखिरौ विना सर्वर्तुषु कमलानि, शैल वृक्ष मेघ वारिधि वीरुस्तु
 कार्णार्णमित्यादीन् नियमान्पुरस्कृत्य व्यवहरति । अतएवेद निगद्यते,
 अपारे काव्यससारे कविरेव प्रजाप्रति ।
 यथास्मै रोचते विश्व तथेद परिवर्तते ॥

शृङ्गाररसप्रतीत्यौपयिकत्वेन नायिकामुखनयनकुचादीन्यङ्गानि वर्णयतीति एतावता कवे न स्त्रीमुखासक्तिकलुषितस्वान्तत्वं सम-
वति । अत्र रुद्रटाद्या एव समादधिरे—

न हि कविना परदारा एष्टव्या नापि चोपदेष्टव्या ।

कर्तव्यतयाऽन्येषा न च तदुपायोऽभिधातव्यः ॥

किन्तु तदीय वृत्त काव्याङ्गतया स केवलं वक्ति ।

आराधयितुं विदुषः तेन न दोषः कवेरत्र ॥

तथा कवितया किं वा तथा वनितया च किम् ।

पदविन्यासमात्रेण यथा नापहृतं मनः ॥ इति ॥

एतेन नव्यविपश्चित्परिकल्पितं महाकविभिर्भिन्नैरूप्यमाणं शृङ्गार-
रसविचारः सारस्य नाम्माकं नवीननागरकाणामावहतीति स्वप्रातिभापारि-
कल्पितं सिद्धान्ताभासं प्रत्युक्तं प्रत्येतव्यं ॥

औचित्यशरणा हि महाकवयः औचित्याविरोधेनैव सर्वत्र साम-
रम्यमाघातुं प्रयतमाना परिदृश्यन्ते । ते च कवयः स्वसिद्धान्तानुरोधेन
कचित्सादृश्यं, कचिदारोपं, कचिदध्यवसायं, कचित्सन्देहं, कचित्
श्लेषं, कचित्समासोक्तिं, कचिच्चेतनेष्वचेतनस्वरूपं, कचिदचेतनेष्वपि
चेतनस्वरूपं कचिन्मूर्तेष्वमूर्तरं, कचिदमूर्तेष्वपि मूर्तत्वमभ्युपगम्य
विदग्धमणितिप्रकारान् स्वमनिषोन्मिषितान् समुन्मेषयन्तीत्यहो कवीनां
समये चारुता । तदेतदुक्तं ध्वन्यालोककृद्धि —

भावानचेतनानपि चेतनवच्चेतनानचेतनवत् ।

व्यवहारयति यथेच्छं सुकविः काव्ये स्वतन्त्रतया ॥

केवलं स्वभावोक्त्यालंकारमात्रनिवेदननिष्णातप्रज्ञाशालिभ्यः आधु-
निकपाण्डिततल्लजेभ्यो न रोचत इयं सराणिरिति चेत्, काव्यार्थनिर-
न्तरपरिशीलनसमुपजातसहृदयतोन्मिषितविषणानां का हानिः । एवमेव

चाचार्याभिनवगुप्तपादा सजगरिरे, “येषा निरन्तरकाव्याभ्यासवशात् विशदीभूते मनोमुकुरे वर्णनीयतन्मयीभवनयोग्यता त एव सहृदया रसज्ञा ” इति च । आधुनिकेष्वपि केचित् एव अभिप्रयन्ति—

दीर्घपुच्छ. चतुष्पाद ककुद्भात् लम्बकम्बलः ।

गोरपत्य बलीवर्दः शष्पाण्यत्तीत्यलकृती ॥

स्वभावोक्तिं रूपकं च सादृश्यं व्यक्तमाश्रिता ।

कवयन्ते नमस्तेभ्योऽविद्वद्भ्यो भणितेर्विधा ॥ इति च ॥

कालिदास

एव च रसज्ञेषु महाकविषु अनन्यसामान्यगुणभूमा श्रीमान्कालिदासनामा महाकविः सकलकविकुलतिलक इति जोषुष्यते । तथाहि—काव्यप्रकाशे “काव्यं यशसेऽर्थकृते” इति कारिकाविवरणावसरे “कालिदासादीनामिव यज्ञ ” इति प्रथमं अमुमेव महाकविमजीगणत् । राजानकरुच्यकप्रभृतयः ।

पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाऽधिष्ठितकालिदासाः ।

अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादानामिका सार्थवती बभूव ॥

इत्यादिना जयाडिण्डिमताडनपूर्वकं अद्यापि तत्तुल्यं कविर्न तर्तत इति निरणैषु । लौकिकानामाभाणकोपि परिदृश्यते “कवयः कालिदासाद्याः कवयो वयमप्यमी ” इति ॥

स्वर्गेऽपि दुर्लभां कविसार्वभौमकालिदासप्रतिभालकृता कवितां भारतवर्षीया वय उपभुङ्क्षमह इति सगम्भीरं भभाषिरे केचन रसिकशिरोमणयः । यथा—

एणमासमबला च कोमला माहिष दधि सशर्करं पयः ।

कालिदासकविता नव वयः स्वर्गशेषमुपभुङ्क्षते जना ॥

इति । अभिनन्दमहाकवी रामचरिते—“स्यार्तिं कामपि कालिदास-

कवयो नीता शकारातिना” (विक्रमभूषालेन) इत्येवमभिननन्द ।
रम्भिकमणी राजशेखरमहाकवि सुभाषित हारावल्ल्या—

एकोपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित् ।

शृङ्गारे ललितोद्वारे कालिदासत्रयी किमु ॥

इति व्याहारीत् । ज्योतिर्विदाभरणकारोपि भारतवर्षे विक्रम भूमि-
गालकाले कालिदासादीनि नव रत्नान्यासन्नित्यध्यवससौ । यथा—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्ख

भेतालभट्टघटकर्पर कालिदासा ।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभाया

रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥ इति ॥

मातृभूमि

एवञ्च समुदञ्चितगुणगणणीय कालिदासकविप्रकाण्डः इमं भरत-
खण्डं मण्डयामासेत्यहो भारतवर्षस्य वैभवम् । कालिदास भवभूत्यादी-
न्महाकवीन् व्यास वाल्मीकि पाणिनि पतञ्जलि प्रभृतीन् ऋषीन्,
श्रीशबरस्वामि कुमारिलभट्टाचार्य श्रीशङ्करभगवत्पाद वाचस्पतिमिश्र
विद्यारण्यवरेण्यान् तान् शास्त्रप्रवर्तकान् महार्घरत्नानि मगवती भारती
भूमिः असूतेत्यहो भव्य भागधेय भावुकानाम् । ईदृशरत्नानां खनीभूते
भारतवर्षे सुभासारसीमातिवर्ती कवितारस देवानामपि दुर्लभ इति
प्रतिपादित एव । भारतवर्षे स्वर्गादपि समुत्कृष्टम् यतोत्रत्याः साधवः
समुचितधर्माद्यनुष्ठानेन ब्रह्मोपासनादिना वा स्वर्गादप्यनुत्तम ब्रह्मलोका-
दिकं गन्तुमीशते । अपथ्यान्नभोजनवत् आसन्नमरणाधिकार नाकमोगः
कम्पै नाम रांचेतेति श्रीहर्षमहाकविः दमयन्तीमुखेन भारतवर्षस्य
सर्वोत्तमत्वं प्रफुल्लयति—

वर्षेषु यद्भारतमार्थवर्या स्तुवन्ति गार्हस्थ्यमिवाश्रमेषु ।
 तत्रास्मि पत्युर्वारिवस्ययाऽहं शर्मोर्मिकिर्मीरितधर्मलिप्सु ॥
 स्वर्गे सता शर्म परं न धर्मा भवन्ति भूमाविह तच्च ते च ।
 इष्ट्यापि तुष्टिः सुकरा सुराणां कथं विहाय त्रयमेकमीहे ॥
 साधोरपि स्वः खलु गामिताधो गामी स तु स्वर्गमितः प्रयाणे ।
 इत्यायति चिन्तयतो ह्यदि द्वे द्वयोरुदकः किमुशर्करे न ॥
 प्रक्षीण एवायुषि कर्मकृष्टे नरान्न तिष्ठत्युपतिष्ठते यः ।
 बुभुक्षते नाकमपथ्यकल्पं धीरस्तमापातसुखोन्मुखः कः ॥ इति ॥

एतादृशमहामहिमानी भारतवर्षे जन्म लभमाना वयं प्रथितप्राचीन-
 पुरुषधौरेयतां वोढुं न शक्नुमः । तदीयं समज्ञाज्ञानपूर्वकं लोकोत्तर-
 तदीयचरितादिकं श्रोतुं, पाठितुं वा न स्पृहयामः । भक्त्या तदाचरित-
 धर्माननुष्ठानं न प्रयतामहे । अनुष्ठाने अशक्नुवन्तोऽपि समीक्षितुमपि
 नोत्सहामहे । आस्माकीनां बालका अपि परकीयासिद्धान्तश्रवणबद्ध-
 श्रद्धां अन्यदीयवेषभाषादिकमनुकुर्वाणाः, अबला इव केशवेशरचना-
 चातुरीविदग्धाः, क्रीतान्नभक्ष्यभोजनदक्षाः, पाश्चात्यविद्यामात्रशिक्षण-
 विचक्षणतया धन्यमन्याः तत्रतत्र उपन्यासश्रवणमात्रेण कृतकृत्यतामभि-
 नयन्तः सनातनधर्मजिज्ञासायामप्यनीहमानाः स्वाभाविकीभार्यतां ध्वस-
 यितुं कदम्बन्यवतरन्ति चोत्सहमानाः प्रयतमानाश्च परिदृश्यन्ते ॥

मातृभाषा

अहहा ! यद्यपि वयं राष्ट्रीयभाषाया आङ्ग्लविद्याया च गौरवं
 दधानेषु समन्यामहे । नोदास्महे तान् । पाश्चात्याविषयशिक्षणदार्ष्टिक-
 शिक्षणादिषु न संशेमहे । तदीयप्रज्ञोपज्ञवैद्युतशक्त्यादिषु अतीव वैदग्ध्यं
 निश्चिनुमहे । तदीययन्त्रोपकरणादन्यद्याप्युपयुज्यमहे । यद्यद्यावहारिक-
 कार्यनिर्वाहकतया अपेक्षितं तत्तत्सर्वैरप्यकामतया अभिलषणीयमेवेति

विश्वसिम । तथापि अस्मदीया बाला यावता ऐहिकव्यापारो निर्वो-
ढव्य तावत्परकीय कलाशिक्षणादिषु वैदग्ध्यमधिगम्य पारलौकिक-
व्यवहारोपयोगि शास्त्राभ्यसनादिषु आदरेण प्रवर्तमाना स्वाभाविक-
मार्यत्वमपमार्ष्टुमनीप्सन्तः, शाश्वतिके श्रेयसि श्रद्धाधीरन्निति सदाकाक्षा-
महे । एवञ्च आस्माकीनैरार्यबालकैः राष्ट्रभाषा मातृभाषा देशभाषा
चेति भाषात्रयमवश्यमाश्रयितव्यमेवेत्यकामतः प्राप्तम् । तत्र राष्ट्रभाषा
निरूपयितु न वयमिदानीमुद्युम्बहे ॥

द्वैतीयकी मातृभाषा तु पुरुषार्थार्थिभिः सर्वैः बालादिवृद्धान्तैः
आदरेण समाश्रयणीयेत्यभिमन्यामहे । सर्वेप्यार्यबालाः मातृभाषाया किं
फल वर्तेतेति न सशयीरन् । यतो हि मातृभाषा सास्कृती परिशुद्धा
गीर्वाणाना वाणी सती सृष्ट्याद्यारभ्य अद्ययावत् जेगयिते । गीर्वाण-
भाषेव काश्चिदपि भाषा, चिरकाल प्रतिष्ठा नालभन्त । विश्वामित्रादि-
वत् “अन्यमिन्द्र करिष्यामि” इत्यद्भुतशक्तिमुत्पादयितु, धर्मराजादिवत्
हरिश्चन्द्रादिवच्च धर्मे सत्ये वा अवस्थापयितु साहायकानि भाषान्तराणि
न शक्नुयुरिति दृढ प्रतीम । ततस्सर्वेप्यार्याः सन्मार्गेऽवस्थाय धर्मादि-
कमनुष्ठातु अधर्माचरणात् दुष्फलमनधिगतु च सास्कृती सनातना
भाषा दृढ सेवेरन्निति श्रद्दामहे ॥

केचन अनार्या सास्मृती भाषा मृतमयी भाषेति निश्शङ्कभाष-
माणाः सध्यावन्दन सकल्प देवपूजनादिप्रत्यहव्यवहारेण जीवन्तीमपि
तां अनिरीक्षमाणाः बालान्विप्रलम्भयन्त स्वकपोलपरिकल्पित प्रमाणा
भासैः यथेच्छ विवदमानाः परिदृश्यन्ते । नैतावता तस्या भाषाया
मृतप्रायत्व मुमूर्षुत्व वा सम्भवाति । व्यवहर्तार एव सर्वत्र भ्रियेरन् न तु
भाषा मृतकल्पा अधिगम्यते । एतादृश सस्कृतभाषाया कीदृश सौन्दर्यं
कीदृश वैदग्ध्यं कीदृश सारस्यं कीदृश वा सौख्यमित्यादिक विविच्य
प्रदर्शयितुमिदानीमुत्सहामहे ॥

देशभाषा तु सर्वैस्सेवनीयेत्यत्र न केचिदपि सशेरते । प्रकृतेऽस्माकं कार्णाटिकी भाषा देशभाषात्वेन वरीवर्ति । ता च सर्वे बालका नियमेनाभ्यस्यन्ति । परं तु पारीणा भवितुं न प्रयतन्ते । यतो मातृभाषाभ्यसनं विना देशभाषापारीणता सुगमा न स्यात् । अतः कार्णाटिकान्प्रति मातृभाषा एवमावेदयते तस्मात्—

भो' कर्णाटमहीसुता प्रियजना दीना मदीया गिर
 श्रुत्वा द्राक्परिशीलना कुरुत च स्वान्ते परोक्तिं न हि ।
 देश्याया गिरि सर्वमेव भवितुं युक्तं तथापि प्रसू
 मा विस्मर्तुमसाप्रत हि भवता वाचा निदानं परम् ॥ १
 मां दृष्ट्वा प्रहसन्ति नूतनजना जल्पन्ति निशङ्कतः
 भाषा नार्थकरी मृता न हि तथा साध्य किमप्यत्र वै ।
 इत्येव स्वकपोलकल्पितगिराऽवष्टभ्य मा सांस्कृत्यं
 सत्त्वेव प्रियपुत्रकेषु बत हा न्यक्कारयन्ति ध्रुवम् ॥ २
 संघ्यावन्दनं देवपूजनं नदीस्नानादि सत्कर्मसु
 स्मार्तेष्वप्यथ वेदसिद्धमहितेष्वन्या न वागादृता ।
 आर्यासंस्कृतभाषया व्यवहरन्त्यश्रान्तमित्थं सति
 ब्रूयुस्तेऽपशदाः कथं मृतमयी भाषेति निर्लज्जया ॥ ३
 अज्ज्ञाह न मृता मुमूर्षुमपि मा दीनां स्मरेयुर्जनाः
 नाह मृत्युमुपागता तु भवता कल्याणहेतुः परम् ।
 वेदा मय्यस्त्रिला पुराणनिबहस्सच्छास्त्रबृन्द महा
 काव्यं नाट्यकर्मसूक्तिरथ च व्यक्तं कला सर्वशः ॥ ४
 सर्वे राष्ट्रगिराऽथवा व्यवहरन्त्वात्मीयभाषात्मना
 सतुष्याम्यहमत्र नैव कलये दोषाङ्कुरं चाप्यपि ।
 युष्माकं विरुदादिषु स्थितिमतीं प्रत्ना सुरैरातां
 वाणीं मामवधूय नेशत इति ज्ञाप्य च वस्त्वस्ति न' ॥ ५

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

प्रतिमासत्रय प्रकटीक्रियमाणः.



“ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ”

(ईशोपनिषद्)

सप्त-४]

एप्रिल् १९२८

[सञ्चिका-२

प्रज्ञावैशाखवेधक्षुभितजलनिधे वेदनाम्नोऽन्तरस्थ
भूतान्यालोक्य मग्नान्यविरतजननग्राहघोरे समुद्रे ।
कारुण्यादुद्घारासृतमिदममरै दुर्लभ भूतहेतोः
यस्त पूज्याभिपूज्य परमगुरुममु पादपातै नतोस्मि ॥ १

यत्प्रज्ञालोकमासा प्रतिहतिमगमत् स्वान्तमोहान्धक्वरो
मज्जोन्मज्जच्च घोरे ह्यसकृदुपजनोदन्वति त्रासने मे ।
यत्पादावाश्रिताना श्रुतिशमविनयप्राप्तिस्त्र्यम्बमोघा
तत्पादौ पावनीयौ भवभयविनुदौ सर्वभावैः नमस्ये ॥ २

श्रीमन्महाराज संस्कृत महापाठशालाया प्रभववत्सरीय
विद्यार्थी पारितोषिक महासभाया पठिताः
गीर्वाणभाषात्मका. श्लोका

सुरासुरनिषेविता शशिसिताशुजालावृता
सुघोदधिसुतायुता मुनिहृदब्जभृङ्गायिता ।
नतावनरता हिता सुकृतिना दयाराजिता
तनोतु भवता हित हयमुखी परा देवता ॥ १

श्रीगीर्वाणकललताश्रयतरुस्सौजन्यवादान्यक-
प्रज्ञाधैर्यमुखानवद्यसुगुणाम्भोधिस्सता शेवधि ।
धर्मत्राणकृतादरश्शुभयशाश्श्रीशानुकम्पाबला-
दाचन्द्रार्कमिलतले विजयता श्रीकृष्णभूमीपति ॥ २

श्रीकृष्णक्ष्मेशराज्यागमशुभदिवसेऽमुत्र विद्यागृहेऽत्र
छात्राणा वर्षजाता बहुमतिमुदिता कर्तुमेषा बुधानाम् ।
गोष्ठी तस्या कृपातश्शमदमकरुणाज्ञानवैराग्यभाजो-
नूलश्रीरङ्गनाथाभिधयतिपतयस्स्वामितामङ्गचकार्षु ॥ ३

यतीशाना एते मुचिरमिह विद्यागृहवरे
पुराऽर्चीतन्यायादिमविविधविद्यास्सुर्विदिताः ।
प्रधानन्यायाध्यापकपदमगुस्सप्रति परे
हयग्रीवास्थने महिततमदीप्ति हि दधते ॥ ४

ततस्तैश्छात्राणामनुपमकृपाद्रौर्विरचितै-
 रुदारैस्सम्मानैस्सुजनमणिकृष्णेन्द्रकलितै ।
 निवासद्रव्याद्याकृतिविविधसाह्यैश्च रुचिरै-
 स्तदीया मरूयाऽत्र प्रतिशरदमिन्वेऽधिकतमा ॥ ५

कलाशाला नेतुर्नयपथगुणैकप्रणयिनो-
 बहुश्रद्धोत्साहप्रगुणाविमलाध्यापनजुषाम् ।
 बुधाना छात्राणा रुचिरमतिभाजा च तनुता
 हरिर्दीर्घ चायुर्धृढतनुशुभारोग्यधनताम् ॥ ६

इति माहिशूरमहीपति वाणीप्रासाद पाठशालावाम् ।
 मुख्यज्योतिस्तन्त्राध्यापक कविशेषसूरिराशास्ते ॥

श्रीमन्महाराज सस्कृतमहापाठशालाया ।
 श्रमिन्प्रभव माघ शुक्ल सप्तम्या)

करुण शेषाचार्यः,
 ज्योतिष्शास्त्र महोपाध्यायः.

श्रीमन्महाराज सम्कृत महापाठशालाया प्रभववत्तरीय
विद्यार्थि पारितोषिक महासभाया पठिताः
गीर्वाण भाषात्मकाः श्लोकाः.

स्वस्ति स्वागतमस्तु तत्रभवते शाताय दाताय च
श्रीमन्नृतन रङ्गनाथ परकालाख्याय ते स्वामिने ।
अध्यक्षत्वमुपेत्य सत्पारिषदो विद्यार्थिसम्मानना
प्रीत्या यत्क्रियते त्वयाद्य तदहो धन्याश्च मान्या वयम् ॥ १

श्रीमद्विद्यापदाचद्वर्णपतिकरुणापागपूतातराळा
सेय गीर्वाणविद्याविहरणघराणि पाठशाला विशाला ।
अज्ञानादुद्धरती दृढतरतमसो ज्ञानदीप प्रकाश्य
च्छात्रान् मातेव पुत्रानवतु विगलितान्योन्यभेदप्रसगा ॥ २

श्रीमन्नाल्वडि कृष्णराज करुणासाम्राज्यसारस्वत—
प्रासादाभिध पाठसञ्चानि वरे सद्बैदिकाध्यापकाः ।
कर्णाटोद्धृतिहेतवे विनयवद्धृत्ताश्च विद्यार्थिनो—
लोकाज्ञानतमो हरतु विलसत्कीर्तिप्रदीपाकुलै ॥ ३

गीर्वाणालयपारितोषिकसभाकार्यक्रमोपक्रम
श्रीमन्नाल्वडि कृष्णराजनृपते पट्टाभिषेकस्मृति ।
पौराणा रथसप्तमी वरतिथौ यच्चात्र समेलन
तन्नः सप्रति पूर्वपुण्यनिवह पाकोन्मुखं मन्महे ॥ ४

श्रीमन्नाल्वडि कृष्णभूमिपतिना लोकोपकारात्मना
 निर्व्याजोपकृति प्रजासु विहिता या सा न विस्मर्यते ।
 ईषच्चापि तथापि तत्प्रतिकृतौ सप्रत्यशक्ता वय
 सद्भक्त्या स्तुमहेऽद्य तद्धितकृते नित्य महोपाधवम् ॥ ५

नरहरि कविना रचित
 श्रीबालसरस्वतीत्युपाद्देन ।
 स्वागतपञ्चकमेत-
 द्धिताय जगत समर्प्यते भक्त्या ॥ ६

श्रीमन्महागजसंस्कृतमहापाठशालाया | बालसरस्वती नरहर्याचार्य
 श्रीमत्प्रभव माघ शुक्ल सप्तम्याम् | श्रीवाणीविद्युत बालिका पाठशालोपाध्यायः

॥ जयतु भगवान् ॥

श्रीबालसरस्वती नरहरिशर्मणा विराचित
पाठशालाभ्युदयसल्लापः.

अथ प्रविशति स्वयम्भा गोविन्देन सहाभाषमाणो
गृहचितर्दिका गतो गोपाल

गोपालः—सखे गोविन्द ! चिराद्दृष्टोऽसि । अपि कुशली
भवान् ? इदमासनमास्तीर्णम्, अत्रोपविश मुहूर्तम् । इहस्थावेव प्रकृति-
सौन्दर्यसुखमनुभवाव ।

गोविन्द —भो वयस्य ! अहो ते विस्मृतिशीलता । आगामिने
रथसप्तमीदिने श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालाया ऐषमस्तनपारि-
तोषिकमहोत्सवो भविता । तदुत्सवादिने सायन्तने च मुहूर्ते आमन्त्रणा-
नुरोधेन मयावश्य तत्र गन्तव्यम् । तन्मा तस्मिन्नेव दिने स्मारयेत्यह-
मनुयुक्तः । तदद्योत्सवदिनामिति स्मारयामि त्वाम् ।

गोपालः—वयस्य ! क्षम्यता । विस्मृत खलु सर्वमेतदादितो
मया । सम्यक्त्वया काले प्रतिबोधितोऽस्मि । बाढम् । भो ज्ञायता का
वेला वर्तत इति ।

गोविन्दः—(निर्वर्णः) सखे ! परिणतप्राया सप्तमीतिथिः ।
हन्त पाठशालाया प्रवृत्त इव वार्षिकमहोत्सवो दृश्यते । अहो नु खलु
चिराय संप्राप्तः समीहित समय । त्वर्यता त्वर्यता कृत विलम्बेन
यथा महोत्सवकालो नातिवर्तेत तथैवावा परिषदः सामाजिकौ भवाव ॥

[इत्युभौ परिक्रामत]

(तत् प्रविशतो मध्येमार्गं मुकुन्दो मुरारिश्च)

मुकुन्दः—(अन्यतोदत्तदृष्टिं गोपालमालोक्य)सखे गोपाल !
कुतस्तवेद वैयात्य यत्समीपेनाप्यतिक्रामन्नितो दृष्टिं न ददासि ।

गोपालः—अहो ममानन्दकन्दो मुकुन्दः । श्रीमन्महाराज
सस्कृतमहापाठशालाया मधुरमधुर श्रूयमाणो वाद्यविशेषो मा त्वरयति
पाठशालानुप्रवेशाय । तन्महोत्सवावलोकनव्यग्रं तवोपालम्भे पति-
तोऽस्मि ।

मुरारिः—मुकुन्द ! कार्यान्तरव्यापृतं मेनमन्तरां प्रतिबधान ।
ब्रूहि कियदूरे तद्गृहं यत्र वयमाहूताः ।

गोपालः—भोभो अलमलमन्यथासम्भावितेन । इयं हि
रुचिराकृतिः साविशेषप्रसाधितोत्सवसमाजस्यादर्जायित्री पाठशाला प्रेक्ष-
काणां मनांसि निगलयति । तद्युवामावामपिच मिलितास्सन्तः तत्र
गत्वा वार्षिकमहोत्सवदर्शनजनितानन्दममन्दमनुभवामः ।

मुकुन्दः—(आदासान्य नाटयन्) अये गोपाल ! वर्षेवर्षे
प्रवर्तितस्साधारणो वार्षिकमहोत्सवः श्रुतदृष्टपूर्वं एवास्माकम् । न तत्र
कोऽपि वैचित्र्यविशेषः । तत्र सर्वा प्रवृत्तिस्तु गीर्वाणभाषाविषयिणीति
कर्णाकर्णिकया शृणुमः । परन्तु सस्कृतभाषायां नास्माकमीषदप्यभि-
निवेशः । तत्तत्रगताः किं जानीमो वयम् ।

मुरारिः—अपिच श्रूयतां तावदत्र प्रतिकूलताप्रसङ्गः । तत्र
गतानां सुखोपवेशनार्थं नासनान्यास्तीर्णानि भवन्ति । सर्वैरपि तत्रगतैः
रवनितल एव समुपवेष्टव्यम् । तदपि यथाकथञ्चित्सौढव्यं स्यात् ।
इदं हि नाम चित्तोद्वेजकं यत्तन्मनानन्दकराणि नाटितकादीनि श्रवणा-
नन्दकराणि सङ्गीतकादीनि वा वैदिकमण्डलीषु स्वप्नप्रायाण्येव खलु
भवन्ति । न यत्र चित्ताकर्षणप्रसङ्गः तत्र जनैर्नगन्तव्यमेवेत्यस्माकमाशयः ।
एहोहि मुकुन्द ! अन्यत्र साधयामो वयम् ।

गोपालः— सखे मुकुन्द ! अज्ञातपरमार्थस्त्वम् । वयस्य मुरारे !
निर्गलवागासि यदनाशङ्कनीय तदाशङ्कसे । श्रूयता यदि कौतुकमवे-
दयामि । वैदिकाना लौकिकाना च महात्मना यदेकत्र समावेशो नाम
तन्महते फलय ननु ॥

समागमो लौकिकवैदिकाना
देशोन्नतौ सपति मूलहेतुः ।
सहस्थितीरत्नसुवर्णयोश्च
पद द्वि सर्वादरणीयतायाः ॥ १ ॥

किंच । स्थसप्तमीनाम श्रीमन्महाराजपट्टाभिषेकदिनस्य ज्ञापयित्री
प्रवर्तते । तदत्र राजाशीर्वचनप्रसङ्गो महान् ।

अपिच । श्रीश्री परकालयतीन्द्रपूज्यपादानामध्यक्षताया वार्षिको-
त्सवकार्यक्रमो यथाविधि निर्वर्तनीयः स्यात् । श्रीश्रीयतिवर्याणा
दर्शनमात्रेणैव समस्तदुरितानि दूरीकृतानि स्युः । श्रीमद्गुरुवरचरणार-
विन्दसेवन तद्बदनारविन्दनिरर्गलनिर्गलन्मधुरवचनोपसेवन च नितरा-
ममृतायते ॥

आयि परिचिनु चिरकाल
गुरुमभिनवरङ्गनाथपरकालम् ।
कामान्यभ्युपनोग
विदधाति प्रणतवृन्दमुपनोगः ॥ २ ॥

किंच—

सालोक्यस्य सुखं भवेच्छ्रवणतो वाचां गुरोरादरा-
त्सापीप्यस्य परं सुखं मननतो यस्याविरास्ते नृणाम् ।
सारूप्यस्य सुखं सखे परतरं स्याद्यन्निदिध्यासना
त्सायुज्यस्य भवेत्सुखं परमहो यस्मिन्नि साक्षात्कृते ॥ ३ ॥

अपरच तावत् । देशाभिष्टुद्धिविधौ प्रधानकारणतामापन्नाया
श्रुतभात्रेणैव कर्णयोरमृतरसानिष्यन्दिन्या अवाञ्जनसगोचरमहिमभूषाया
गीर्वाणभाषाया पवित्रतर प्रसङ्ग कस्य न स्यान्महते सुखाय ।

मुरारे' तत्र पाठशालाया विशालाया समुपवेशनावकाशो
नास्तीति न मन्तव्यम् । भूमितलोपवेशनादपि काष्ठासनोपरि समुपवेशन
सर्वप्रकारेण परमानुकूल्याधायकमिति किञ्च मन्यते भवान् ? विद्धि
काष्ठासन कष्टाय । तत्र नाटिकसङ्गीतकादीना नामापि न श्रूयत इति
यदवोच तदत्र श्रूयताम् । तदत्र महोत्सवावसरे गीर्वाणकर्णाटभाषा-
मयानि शब्दार्थहृद्यान्यनवद्यानि पद्यानि सङ्गीतविशारदा मधुरमधुरस्वरा
पठनचातुरीधुरीणा विविधरागरचनोपरञ्जित यथा पठन्ति ।

मुकुन्दः—(मुरारिं प्रति) मुरारे' श्रुत श्रोतव्यम् । मित्रवर्येण
गोपालेन यत्पाधूपन्यस्त तदेव सर्वथा युक्तरूप मे रोचते । मनोविनो-
दनाय एवमिव अतर्कितोपनत कालो न सर्वजनसाधारणो लभ्यते ।
तदावामपि निर्विचारममुमेव प्रियवयस्यमनुसराव ।

मुरारिः—अनतिक्रमणीयवचनो भवान्मे प्रियवयस्य । अयं
महमपि त्वयैव सह महोत्सवावलोकनसुखमनुभावितुमभिलषामि ।
(आकाशे कर्णं दत्त्वा) हन्त मङ्गलतूर्यनिम्बन समुज्जृम्भते । पश्य—

यथायथा मङ्गलतूर्यनिम्बन

सुखश्रुतिर्यत्र सखे प्रवर्तते ।

तथातथा तत्र मनस्तमेव मे

रज्जासमाकृष्टमिवानुधावति ॥ ४ ॥

[सर्वे पाठशालाभिमुखीभवन्ति]

मुकुन्दः—(सकौतुकं) अये गोपाल' कौतुक मे व्यपनय
तावत् । महतो राजाशीर्वचनस्य को हेतुः ?

गोपालः—श्रीमन्महाराजस्य अचिरप्रवृत्तो रजतमहोत्सव
किञ्च ते श्रुतिविषयमायात ' तन्महोत्सवावसरे तत्सभाजनाय कर्णाट-
भूमण्डलस्य नानादिदेशादागता, प्रजावर्गा महान्तमर्थव्यय कृत्वा
स्वामिभक्तिव्यञ्जनाय राजधानिमागतवन्तः । तथाहि—

संप्राप्ते रजतोत्सवे द्विजवरा विश्वंभरानायका,
वैश्याश्शूद्रगणाश्च हूणपतयो विद्यावदग्रेसराः ।
सूता मागधवन्दिनश्च गणिकाः शैलूषका गायका,
पौरा जानपदा परेऽपि बहवो नानास्पदादागता ॥ ५ ॥

ततःपश्—

श्रीमत्कृष्णनृपो नतेन शिरसा सङ्गृह्य विप्राशिष
कारुण्यार्द्रदृशा प्रजास्ततःततोऽपश्यत्पसन्मानन ।
नेमुः प्राञ्जलयोऽस्तुवन्परमया भक्त्या प्रजा स्वामिन
ताभ्योऽदादभयं “करोमि भवता धर्मेण रक्षा” मिति ॥ ६

किञ्च—

यदुवंशनृपालानां सखमेवोद्धराम्यहम् ।
इति गोत्रव्रतं यन्नाल्लोकक्षेमाय पश्यते ॥ ७ ॥
अहो महाराजस्य पितुः पुत्रेष्विव प्रजासु पक्षपातित्वम् ।

यतः ।

ब्राह्मणानर्चयामास तोषयामास भूमिपान् ।
वैश्यानुल्लासयामास नन्दयामास चेतरेण ॥ ८ ॥

प्रजानामीहविधा स्वामिभक्तिमालक्ष्यालक्ष्य महीशूरपुरवास्तव्या,
प्रजा वयमपि परमानन्दभाजोऽभूम् ।

अस्मिन्दिने तावत्कृतज्ञतानिवेदनपूर्वक श्रीमन्महाराजाधिराजस्य

श्रीमन्नाल्वडिकृष्णराजसार्वभौमः य बहुधाभिनन्दन कुर्वन्ति सर्वे विद्व-
द्वरेण्या वैदिकमहाशया विनयावनता विद्यार्थिनश्च ।

मुरारि — वयस्य ! श्रीमन्महाराजस्य चैतन्या पाठशालायाश्च
कोनाम सबन्ध ?

गोविन्दः — मुरारे ! अत्रास्ति न किमपि वक्तव्यम् । तदव-
धानदानेन प्रसाद कुरु । विस्तीर्णस्स वृत्तान्त न शक्यते साकल्येन
वर्णयितुम् । तथापि सक्षिप्य कथयामि । श्रीमन्महाराजोऽस्माक
वर्षेभ्यश्चतुर्थ्य प्रागेतत्पाठशालायाः पारितोषिकमहोत्सवावसरे सभा-
ध्यक्षपदमध्यमध्यामीनो निजेनामूल्यभाषणेन सम्स्कृतभाषाया यावानभि-
मानस्तस्य तावन्तमप्याधारत्वेन स्वीकृत्य स्वाभिप्रायप्रकाशनमकार्षीत् ।
किंच परुत्प्रवृत्ते पाठशालाया पञ्चाशसवत्सरमहोत्सवावसरेऽपि प्रभुरे-
षोऽस्माक अनर्घ्येणाध्यक्षभाषणेन सर्वानपि सामाजिकान् चित्रार्पिता
रमानिवाततान् ।

शृणु सखे ! अपरमपि च पाठशालायामिदप्रथमानुभूतमाश्चर्यम् ।
यन्महाराजोऽस्माक सम्स्कृतभाषायामनन्यमामान्याभिमानप्रकाशनाय वैदि-
कजनानुरागप्रकटितामन्दानन्दसन्दोहसन्दर्पिनाय च विद्वन्मण्डलीमध्य-
गतस्सन् भावचित्रार्पितमात्मानमकार्षीत् । तत्रापीदमेव परमाद्भुतम् ।
यत —

राज्ञा तेन लसद्दयातरलितापाङ्गैर्यदालोकितां

पूज्यान्वीक्ष्य मुहुस्सुषामधुरया वाचा यदामन्त्रितम् ।

कुत्रापीदमभूत्पूर्वविभवं तद्भावचित्रं प्रभोः

कालेनापि जनस्य चित्तफलकान्नोन्मार्जनीयं भवेत् ॥ ९ ॥

मुकुन्दः — विद्यमानेष्वपि नानाधिकारस्थानेषु एतत्पाठशाला
विषये महीपतेरनन्यसामान्याभिमानस्य केन हेतुना भवितव्यम् । वद
मे यदि जानासि ।

गोपालः— तदेवमिव । अस्मन्महाराजस्य पितामहेन श्रीमन्मु-
म्मडि कृष्णराज महाराजेन पाठशालेय स्थापिताभूत् । ततोऽस्मन्महा-
राजस्य पित्रा श्रीमच्चामराजमहाराजेन मात्रा च श्रीवाणीविलासमहा-
सन्निधानाभिधानया पाठशालेय क्रमक्रमादभिवृद्धिदशामनीयत । गुरु-
जनप्रसादादभिवर्धितेत्यस्या स्वत्वाभिमानेन हेतुना शाश्वतकालगोचरत्वं
सूचकै रनवरतरक्षणवेक्षणै रूढमूल प्रकल्पिता सती श्रीमन्नाल्वडि-
कृष्णराजप्रभोरिदानीं कृपाकटाक्षस्य पूर्णपात्रीभवति ।

भरारिः—सखे मित्रस्नेहात्पृच्छामि । किमनया पाठशालया
प्रयोजन कि चास्या वैशिष्ट्यम् ?

गोविन्द — यद्येव श्रोतुमिच्छा बलवती शृणोतु मे प्रियवयस्य
सावधानेन मनसा ।

इय हि महती पाठशाला इहपरश्रेयस्साधनीभूताया गीर्वा-
णभाषाया स्थान । आस्थान विद्वदग्रेसराणा वैदिकवरेण्याना ।
सनातनार्यधर्मस्य स्थिरायतिसाधनाय प्रकल्पितो महासारस्वतप्रासाद ।
वेदवेदान्तादिसकलशास्त्राणा माकरो महान् । भरतखण्डगोचराणा मखि-
लगीर्वाणविद्यास्थानानामादर्श । कुलभवनमखिलविद्याविशारदाना वैदि-
कविद्वदग्रेसराणा मुपाध्यायाना । प्रसूतिसदन नानादिदेशादागताना
विनयवता मखिलविद्यार्थिजनानाम् ।

किं बुहुना वाग्विलासितेन । श्री श्री परकालयतिवर्यौणा श्रीश्री
शृङ्गागिरियतीन्द्राणा तथाचान्येषा महामहिमवता महाशयानामादराति-
शयस्य महानाश्रय । श्रीविद्यागणपातिस्वामिना निरन्तराराधनाय
महदेकायतनम् ।

मुकुन्दः— सखे ! सर्वमिदमादितो ज्ञात ज्ञातव्यमिदानीम् ।
अथ च महाराजस्य स्वत्वाभिमानविशेषः कयाहि विषया सूचितो
भवतीति विज्ञातुमीहते मे चेत् ।

गोपालः—अवश्यज्ञातव्योऽयं विषयः प्रष्टव्य एव । श्रीमन्महाराजमभिरुम्माकं यावन्मात्रेण पाठशालायां आयव्ययकार्यनिर्वाहस्माभ्येत तावन्तमपि प्रत्यब्दमथोत्सर्गं विदधाति ।

मुरारिः—प्रतिपन्नवस्तुषु निर्वाहम्मता गोत्रव्रतं हि । ततस्तत् ।

गोपाल — उपाध्यायानां विद्यार्थिनां च वेतनादिकं राजकोशागारादेव वितीर्यते ।

मुकुन्द — परोपकारायैव सना विभूतयः खलु । ततस्तत् ।

गोपाल — अये अपरमपि च शृणु तावत् । सस्कृतपण्डितोत्तमा काले काले राजमकाशादनितरसाधारणानि पारितोषिकादीनि विरुदादीनि योग्यतानुगुणमभ्यर्हणां च लभमाना कृतकृत्यमात्मानमन्यन्तेतराम् ।

मुरारिः—अहो अम्मन्महाराजस्य सर्वममताप्रतिपत्तिं प्रजावर्गेषु । तथाहि—

चण्डालोऽस्तु स तु द्विजोऽस्तु तदपि प्राज्ञोऽस्तु मूढोऽस्तु वा
राज्यक्षेमविधामु सर्वममताज्ञानेन कर्णाटराट् ।

सर्वान्प्रापयितुं महोन्नतिगतिं संचिन्तयन्दीव्यानि

त्रैलोक्यं हि कुटुंबकं सुमनसा माश्चर्यचर्याविताम् ॥ १० ॥

गोविन्द — अत एव सर्वत्र सस्तूयते महाराजोऽयमस्माकम् ।
यतः—

आस्थानेषु महीभुजां मतिमतां गोष्ठीमुखेष्वदरा-

दन्योन्याप्रियसंज्ञसङ्गतकथालापेषु मार्गेषु च ।

आरामेषु च मन्दिरेषु च जनस्थानेषु च प्रत्यहं

श्रीमत्कृष्णमहर्षिपद्मलक्षणान्गायन्ति सर्वे जनाः ॥ ११ ॥

मुकुन्द — सखे साध्वभिहित । तद्ब्रूहि

श्रीमत्कृष्णमहीपः

परहितकृतये धृतव्रतो नितराम् ।

प्रत्युपकर्तव्य कथ-

मधुनास्माभिः कृतज्ञताभिमुखै ॥१२॥

गोमाल — वयस्य ! युष्मत्सकाशाद्राजर्षिरस्मन्महाराजः सिद्ध-
वागाशीर्वचनमन्तरा किमन्यदभिकाशते । शृणु —

नेहते प्रत्युपकृतिं महान्परहिते रतः ।

सर्वर्तुफलवद्भक्षस्तत्रोदाहरणं हि न ॥ १३ ॥

[तदिदमस्तु भद्रवाक्यम्]

श्रीमद्विव्याकृती श्रीविरगजवदनश्रीहयग्रीवदेवौ

त्रिद्याधीशौ त्रिधत्ता महिसुरनगराधीशकृष्णक्षितिन्दो ॥

आरोग्यं दीर्घमायुर्निरवधिविभवं देवकर्णाटवाण्यो-

रसन्तासक्तिमुद्यत्प्रकृतिहितमतिं पुत्रपौत्रप्रपौत्रान् ॥ १४ ॥

[सर्वे मिलित्वा गायन्ति]

कर्णाटक्षितिमण्डले विजयतां सद्धर्मकल्पद्रुमः

त्रिद्या तत्प्रतिपादिका विजयता सर्वार्थचिन्तामणि ।

भूयस्तत्प्रविबोधिनी विजयतां संख्यावता मण्डली

ता एताः परिपालयन्विजयता श्रीकृष्णराजपभू ॥ १५ ॥

इति निष्क्रान्ताम्सर्वे

कालिदासोपज्ञरसज्ञता.

[४ स १ सञ्चिका २४ तमपदान्]

यूय प्रामुथ पुष्कल धनचय वाणिज्यत शिल्पत
 मुन्याच्चाधिकृतोऽपि कीर्तिमतुलमाचन्द्रतार स्थिराम् ।
 मोदे तत्र मुहुर्मुहु कुलधन मा सर्वथा श्रेयसा
 हेतु सम्मरथ प्रतिक्षणमसौ (अह) बालादिभि पठ्यताम् ॥ ६
 इति । मातृभाषारूपाया सस्कृतभाषाया असदृक्षशेषुषीविशेषस्य आवि-
 र्भावकाल मनागावेदयामहे । कालिदासो हि शकुन्तले प्रथमेऽङ्के
 शकुन्तलाया क्षत्रजत्वे सदिहान तस्या निरर्गला मानसस्य प्रवृत्ति
 विभावयन् तत एव प्रवृत्ते शकुन्तलाया क्षत्रियत्व—
 असशय क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्याममिलाषि मे मन ।
 सता हि सदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय ॥
 इति निश्चिकाय । तदिद पद्य, श्रीशङ्कराचार्यसमकालिकैः कुमारिल-
 भट्टाचार्यैः कृते तन्त्रवार्तिके सदाचारस्य प्रामाण्यनिरूपणावसरे —
 एवं च विद्वद्वचनाद्विनिर्गत प्रसिद्धरूप कविभिर्निरूपितम् ।
 सता हि सदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय ॥
 इति लिखितम् । अस्य च प्राक्तन पद्य—
 यथा रुमाया लवणाकरेषु मेरौ यथैवोज्ज्वलरत्नभूमौ ।
 यज्जायते तन्मयमेव तत्स्यात् तथा भवेद्वेदविदात्मतुष्टिः ॥
 इति दरीदृश्यते । अस्यच मक्षिसोऽर्थ निरूप्यते—
 श्रुति स्मृतिः सदाचार स्वस्य च प्रियमात्मन ।
 आचारश्चैव साधुनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥

इत्यादिना सतामात्मतुष्टेरपि धर्मे प्रामाण्य मन्वादयोऽङ्गचकार्षु । सा किल आत्मतुष्टि एकान्तसमाहितानामार्याणां वेदविदामेव भवेत् न पुन स्वेच्छाचारिणा अप्रामाण्यशङ्काकलङ्कितानामिति भट्टाचार्यसमतोय पथा । यतस्तेषामार्याणामश्रान्तश्रुतिस्मृतिक्षुण्ण स्वान्त तन्मयतामापन्न न कदाचिदधर्मे प्रवर्तितु प्रभवेत् । यथा लङ्गणनिर्माणस्थलेषु लवणखनिषु, रत्नसानौ वा यद्यद्वस्तु समुत्पद्यते तत्तत्तन्मयतामापद्यते । एवमनवरत श्रुतिस्मृतिपरिशीलिना स्वान्ते योयो विचार स्वरसन प्रादुर्भवेत् सस धर्मपथानुवर्त्ता धर्म एव स्यादिति विद्वाद्भिः प्रतिपादनीयम् । प्रमाण चात्रार्थे — “ कविभिर्निरूपितामिति ” मीमांसकमूर्धन्यः महाकवितल्लज-ममु कालिदास बहुमन्यते । कीदृश गौरव कविप्रकाण्डे कालिदासे शास्त्रप्रवर्तकानामाचार्यपादानाम् । स्मृतितुल्यप्रमाणकाव्यनिर्माणधुरी-णस्य कालिदासस्य प्रसवित्रया भारतीभूमेर्मेहिमा लोकसमातिलघिनीति सपिण्डितोयमर्थः ॥

श्रीमता शङ्कराचार्याणां २६३१ तमे यौधिष्ठिरे शकाब्दे अवती-र्णत्वेन संप्रति च ५०२७ तमस्य यौधिष्ठिरशकाब्दस्य प्रसिद्धत्वात् सुव्यक्तं निर्णयित एव इतः पूर्वं २३९७ वत्सरेभ्यः प्राक्तनत्वं महा-कविकालिदासस्येति ॥

यद्यपि केचन आस्माकाने निर्णये प्रत्यवतिष्ठेरन् । पुरातन कालोपि क्रिस्तसमुत्पत्तिसमयसन्निहितेनेव भवितव्य इति राद्धान्तमुररी-कुर्वाणा, कलियुगारम्भश्च क्रिस्तीयवत्सरारम्भत १५०० वर्षे प्राचीन न तु ततोभ्यधिकै इति काचन वाचोयुक्ति मनुसदधानाः, चतुर्थुगानभ्युपगमेन पुरातनकालिकान्, साधातृ सगर नल नहुष कर्त-वीर्य हरिश्चन्द्र राम ययाति प्रभृतीन् विस्मारयन्त अस्मदीयानपि काश्चित्कदम्बानि प्रवर्तयितुमुत्सहन्ते । न तेभ्यो वयं विभीमः ।

यतो वयं प्रमाणं परतन्त्राः, अप्रतिष्ठितयुक्त्याभासेष्वप्रविष्टान्तःकरण-
प्रवृत्तयः युगादिव्यवस्थया महाकालस्य अखण्डत्वं निर्णयन्तः, तत्कुक्षि-
प्रविष्टानि कानिकान्यपि वसतूनि जीर्णान्येवेति सभावयन्तः, श्रुत्यादीना-
मर्वाचीनविषयविपरिकल्पिताक्रिस्तसमयसन्निहितवार्तित्वमनभ्युपगच्छन्तः
प्रस्थानान्तरमारभामहे । पुरुषमतीना वैश्वरूप्यात् एवमेव भवितव्यमिति
न केनापि नियन्तुं शक्यते । अतः कालिदासस्य क्रिस्तीयषष्ठ-
शताब्द्या, सप्तमशताब्द्या, पञ्चमशताब्द्या वा समुत्पत्त्यपरिकल्पन-
निरस्तप्रायम् । इदानींतना केचित् विचारचतुरा क्रिस्तीयचतु-
श्शताब्द्यामेव कालिदासस्य प्रादुर्भाव इत्यभिप्रयन्ति । रमेशचन्द्रदत्त-
प्रभृतयः विपश्चितः क्रिस्तवत्सरारम्भात्प्राक् द्वितीयशताब्द्या अभिमित्र-
समकालिक कालिदास इति उपन्यास्यन् । इत्येवपाश्चात्यविपश्चित्यारि-
कल्पितपथानुवर्तिषु परस्परवैमत्येन पक्षा समुत्पिप्सास्समीक्ष्यन्ते ।
मूलप्रमाणरहिता युक्ती केवलमाश्रित्य स्वपक्षोपक्षेपे युक्त्यन्तरेण
ऊहदक्षेण पूर्वपक्षो व्युदस्यते । तेन च उत्प्रेक्षिता युक्ती रमणीयाऽपि
ऊहकुशलेनान्येन आभास्यमाना लक्ष्यत इति सम्यक् निश्चयः कदापि
न सम्भवेत् । तदेतदुक्तं हारिणा—

यत्नेनानुमितोऽप्यर्थः कुशलैरनुमातृभिः ।

अभियुक्ततरैरन्यैः अन्यथैवोपपाद्यते ॥

इति । तथा ‘निरागमा पुरुषोत्प्रेक्षामात्रनिबन्धनास्तर्का अप्रतिष्ठिता
भवन्ति, उत्प्रेक्षायां निरकुशत्वात् । तथा हि—कौश्विदभियुक्तैः
यत्नेनोत्प्रेक्षितास्तर्का अभियुक्ततरैरन्यैः आभास्यमाना दृश्यन्ते, तैर-
प्युत्प्रेक्षितामसन्तः ततोऽन्यैराभास्यन्त इति न प्रतिष्ठितत्वं तर्कणा-
शक्यमाश्रयितुं पुरुषमतिवैरूप्यात्’ इति । अतः प्रमाणसंप्रतिपत्त्या युक्ति-
प्रतिष्ठिता प्रभवति । प्रकृते च कालिदासस्य प्रादुर्भावसमयः श्रीशङ्करा-

चार्यात्पाचीन इति निश्चीयते । प्रमाणपरतन्त्राणामस्माक द्वारकामठे
अद्यापि विद्योतमान श्रीशङ्कराचार्येभ्य सुधन्वभूपतिना समर्पित
ताम्रशासन विद्यते । तत्र यौधिष्ठिर शक २६६३ तम समु-
ल्लिखित परिदृश्यते । तत क्रिस्तीयशकारभात्पूर्व पञ्चशताब्द्या
श्रीशङ्कराचार्याण कुमारिलभट्टाचार्याणा च समूति । तत पूर्व
कालिदासस्य आविर्भावस्सुश्चिष्ट इत्यभिप्रेम । कालिदासस्य क्रिस्त-
समयात्पूर्वपक्षोपक्षे च विदेशियमतानुयायिन रमेशचन्द्रदत्तप्रभृतय
अस्माकमनुकूल इति सुधीभिर्न विस्मर्तव्यम् । यद्यप्यर्वाचीनविपश्चितः
क्रिस्तशकात्पूर्व शकान्तर नासीदेव । क्रिस्तशकादनन्तरकालिका
शालिवाहनशकादय प्रमाणप्रतिपन्ना इति नि शङ्क स्वप्रतिभयोत्प्रेक्षन्ते ।
तेषा पक्ष समीक्षादक्षै निर्वास्यत एव इति निश्चिनुम । यत शालि-
वाहनशकवत् शकान्तराणामपि सत्त्वे प्रमाण प्रतीयते ।

युधिष्ठिरो विक्रमशालिवाहनौ धराधिनाथो विजयाभिन्दन* ।

ततस्तु नागार्जुनमेदिनीविभु बलि क्रमात् षट् शककारका कलौ ॥
इति । विक्रमशकस्य दाक्षिणात्येष्वप्रसिद्धत्वेपि औत्तराहैरनुक्षियत एव
विक्रमशक । विक्रमार्कमहीपालः किल पराक्रमेणैव सर्वा महीं युधि-
ष्ठिरवदाचक्रामेति पुरावृत्तविदो वदन्ति । शालिवाहनस्तु नर्मदाया
दक्षिणदेशे विक्रमशक विलोप्य आभिनव स्वीय शक प्रवर्तयामास ।
तावता शालिवाहनस्य विक्रमादिवत् सर्वविजेतृत्व न सिद्धयति, किं तु
क्रिस्तवत् शकप्रवर्तकत्वमेवेति विचक्षणा आचक्षते ॥

“युधिष्ठिरो विक्रमशालि” इत्युपन्तस्त प्रमाण अप्रमाणमिति
वक्तुर्वचने कथं प्रामाण्यं सिद्धयेत् । येन वयं श्रद्धाधीमहि । औत्तराह-
सिद्धविक्रमशकस्य पञ्चाङ्गादिष्वपि समुल्लिखितस्य अपमार्जने प्रवृत्तस्य
पश्यतोहरस्य विप्रलम्भकत्वं सुस्थमिति न प्रत्येकं वदितव्यम् । विष्णु-

पुराणप्रामाण्यादपि अभिमित्रस्य राज्ञ् क्रिस्तसमयात्प्राचीनत्व सप्रतिपन्न-
मवृगम्सते । कालिदास खलु मालविकाभिमित्रे भरतवाक्यमुखेन
आशाम्यमीतिविगमप्रभृति प्रजानाम् ।

सपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाभिमित्रे ।

इति नाटकग्रथनावसरे अभिमित्रस्य स्वसमयवर्तित्व प्राकाशयत् ।
इदानीमभिमित्रो महीं त्रायते । तदवश्यं च प्रजानामाशास्य सपत्स्यत
इति तदीयो गूढाभिप्रायः । विष्णुपुराणे च “पुष्पमित्र सेनापति
स्वामिन हत्वा राज्यं करिष्यति । अस्यात्मजोभिमित्रः तस्मात्सुज्येष्ठ
ततो वसुमित्रः ” इत्यादि । एव च भारतवर्षसम्भूतस्य कालिदासकवि-
कुञ्जरस्य क्रिस्तसमयात्प्राक्कालिकत्वं असैत्सीदिति सप्रमोदमावेदयामहे ॥

तेन च महाकविना निर्मितेषु रघुवश भेददूत कुमारमभवेषु
महाकाव्येषु श्रव्यप्रबन्धेषु, अभिज्ञानशाकुन्तल मालविकाभिमित्रादिषु
दृश्यप्रबन्धेषु च परिकर्मितव्यवहार रसभावालङ्कारादिभ्यः समुल्लनित
वैदग्ध्यप्रावीण्यादिक निपुण निरूपयामो यथामति ॥

अलङ्कारशिरोरत्न सर्वस्व काव्यसपदाम् ।

उपमा कविवशस्य मातेवेति मतिर्मम ॥

इति राजशेखरादिसमत्या सर्वत्र प्रथिता “उपमा कालिदासस्य” इति
प्रथा च सर्वत्र वरीवर्ति । उपमापरिकल्पने च समुचित प्रसिद्धमुपमानादिक
अनायासेनैव उपन्यस्यति महाकविः । यथा रघुवशे वागर्थाविव सप्त-
त्काविति श्लोके पार्वतीपरमेश्वरयोरनाद्यो नित्यसबद्धयोस्समुचितमुपमानं
“वागर्थाविव” इति पदेन समसूचयत् । शब्दार्थावित्युक्ते शब्दशब्दस्य-
पुल्लिङ्गत्वात् पार्वतीनिरूपित उपमानत्वं नल्लिष्टमिति “वागर्थाविवेति”
परिकल्पितम् । वागर्थयो वैयाकरणवत् मीमासकैरपि “औत्पत्तिकस्तु
शब्दस्यार्थेन संबधः ” इत्यादिना नित्यत्वं नित्यसबन्धत्वं व्यवस्थापितम् ।

तत्रैव द्वितीयसर्गे नदिनीधेन्वनुसरणशीलाया सुदक्षिणायास्समुचितमुपमान ' श्रुतेरिवार्थ स्मृतिरन्वगच्छत् " इति अभिहितम् । तत्रैव तृतीयसर्गे " निधानगर्भाभिव सागरान्बराम् , शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्, नदीमिवान्तस्सलिला सरस्वतीम् , नृपस्ससत्वा महिषीममन्यत " इत्यत्र शमीतरौ वह्निस्तत्पिश " शमीगर्भादग्निं मन्थति " इति श्रुतिसिद्ध ' ऋषयो वै सरस्वत्या सत्रमासत " इति ब्राह्मणभागप्रसिद्ध देवनदी सरस्वती म्लेच्छदेशेष्वन्तर्धाय भूय पुण्यप्रदेशेषु द्रवति इति स्मृति-सिद्ध विषय च अक्षुण्णश्रुतिस्मृतिशरणाना ग्रहणधारणपट्टना स्पुट कवि पर्यचाययत् इति सुधियो विभावयन्तु । " तीर्थोदक च वह्निश्च नान्यतश्शुद्धिर्हर्त " इति न्यायेन परमपवित्रवह्निनिरूपितसादृश्य गर्भ-स्थरघो परिकल्प्य अनन्तर " पुपोष वृद्धिं हरिदश्वदीधिते अनुप्रवे-शादिव बालचन्द्रमाः " इत्यत्र

सलिलमये शशिनि रवेर्दीधितयो मूर्छितास्तमो नैशम् ।

क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहिता इव मन्दिरस्यान्त ॥

इत्यादिज्योतिश्शास्त्रसिद्ध सूर्यस्य सुखनाम्न्या अमातकलाया नाडिकाया प्रवेशाच्चन्द्रो वर्धते इत्यश स्फोरयतश्च कवेः बुद्धिर्वैशद्य निरवद्यम् । चतुर्थसर्गे " आदानं हि त्रिसर्गाय सता वारिसुचामिव " इत्यत्र सर्व-स्वदाक्षिणाके विश्वजिन्नामके यज्ञे

पूर्वपुण्यविभवव्ययलब्धा. सपदो विपद एव विमृष्टा ।

पात्रपाणिकमलार्पणमासा तासु शान्तिकविधिर्विधिदृष्ट ॥

इति प्रतिपादितदिशा सत्पात्रविनियोगार्थं सता धनार्जनमित्यत्र समुचित जलदाना समुद्राज्जलप्रलण वृष्टय एवेति पयोदरूपमुपमान " सहस्रगुणमुत्सृष्टमादत्ते हि जल रवि " इति श्रुतिस्मृती अनुरुध्य सूर्योपमानवत् प्रादर्शयत् । तथा

कुलेन कान्त्या वयसा नवेन गुणैश्च तैस्तैर्विनयप्रधानैः ।

त्वमात्मनस्तुल्यममु वृणीष्व रत्न समागच्छतु काञ्चनेन ॥

शशिनमुपगतेय कौमुदी मेघमुक्त

जलनिधिमनुरूप जह्नुकन्यावितीर्णा ॥

परस्परेण स्पृहणीयशोभ नचेदिदं द्वन्द्वनयोजयिष्यत् ।

अस्मिन्द्वये रूपविधानयत्नः पत्युः प्रजानां विफलोऽभविष्यत्

रतिस्मरौ नूनमिमावभूता राजा महत्सेषु तथाहि बाला ।

गतेयमात्मप्रतिरूपमेन मनो हि जन्मान्तरमगतिज्ञम् ॥

इति चतुर्षु श्लोकेषु यथाक्रमं कविनिबद्धसुनदा पौरजन पौरवधूवक्तृ-
केषु अजेन्दुमत्यो परस्परसादृश्ये तिरूपणीये महानुभावम्याऽजस्य सुव-
र्णत्व इदुमत्याश्च रत्नत्व परिकल्प्य रत्नस्य काञ्चनेन योग इव तयोम्ममाग-
मश्लाघ्य इति प्रथमे श्लोके प्रतिवस्तूपमा, शशिनीति द्वितीयश्लोके तयोरेव
दपत्यां शशिकौमुदीभ्यां जलनिधिजह्नुकन्याभ्यां च निरूपित सादृश्यम-
वलम्ब्य निदर्शनाललितसदेहमकर, तदनन्तरश्लोकयोः सोपपत्तिक रति-
स्मरनिरूपितसादृश्यं सुव्यक्तं अभिदधानो महाकवि कीदृशं चमत्कार-
मावहतीति रासिकाम्ब्वान्ते सरस सभावयन्तु । “मनो हि जन्मान्तर-
सगतिज्ञमिति” तुरीयपादार्थः

रम्याणि वीक्ष्य मधुराश्च निशम्य शब्दान्

पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोपि जन्तु ।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं

भावस्थिराणि जननातरसौहृदानि ॥

इति शाकुन्तले सम्यक्सरसं विवृतं । तथा हि लोके तत्तद्वैषयिकसुखम-
नुभवन्मानव रम्याणि वस्तूनि साक्षात्कृत्य मधुरं गानं च श्रुत्वा उत्क-
ण्ठितो भवतीत्येतत् जन्मान्तरानुभूतवस्तुसंस्कारवशात् अबोधपूर्वं स्मरे-

चूनम्, इति दुष्यन्तीर्क्तिं योगशास्त्रमर्यादया दृढीकरोति कवि । तथा हि योगसूत्र (४-४) “ततस्तद्विपाकानुगुणानां अभिव्यक्तिर्वासनानाम्” द्विविधा वासना स्मृतिफला जात्यायुर्भोगफलाश्च । जात्यायुर्भोगफला एकानेकजन्मभवा इति पूर्वमेव कृतानिश्चया । यास्तु स्मृतिमात्रफला ततः कर्मण अन्यादृक्शरीरमारब्ध, देवमनुष्यतिर्यगादिभेद तस्य विपाकस्य या अनुगुणा अनुरूपा वासना तासामेव वासनानां तस्मादभिव्यक्तिः । आसामेव वासनानां कार्यकारणभावानुपपत्तिमाशङ्क्य समर्थयितुमाह—“जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात्” इति । इह मसारे नानायोनिषु भ्रमन्त काचिद्योनिमनुभूय योन्यन्तरसहस्रव्यधानेन यदापुनस्तामेव योनिं प्रपद्यन्ते तदा तस्यां पूर्वानुभूताया योनौ तथाविधशरीरादिव्यजकापेक्षया वासना प्रकटीभूता आसन्, ताश्च वासना • तथाविधव्यजकशरीरादिलाभे प्रकटीभवन्ति । कुत स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् । तथाहि अनुष्ठीयमानात्कर्मण चित्तसत्त्वे वासनारूपास्संस्कारास्समुत्पद्यन्ते । संस्कारात् स्मृतिस्मृतेश्च सुखदुःखभोग तदनुभवाच्च पुन संस्कारस्मृतय इत्यनादित्व तासाम् । कथमनादित्वमिति आशङ्क्याह “तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्” येयमाशीर्महामोहरूपा सदैव सुखसाधना मे भूयात्, तैर्वियोगः कदापि मा भूदिति सकल्पविशेषः स वासनानां कारणमिति तासामनादित्वम्, इति योगशास्त्रप्रासिद्धः दुरुहः विषयः शास्त्राभ्यासविमुक्तानामपि सुकुमारमतीनां बालानां यथासुगम स्यात् तथा रमणीयन्यासेन काव्ये प्रत्याययति कविरित्यहो कालिदासस्य अभिज्ञता लोकातिशायिनी ॥ इति ॥ (क्रमशः)

[संस्कृतभाषया तत्रापि छन्दोनिबद्धयोपलभ्यमानं वाक्यजालं सर्वं निरपेक्षकण्ठरवलक्षणा अगमाभिधानां श्रुतिरित्यास्माकीनानामभिप्राय इति भाति ॥ स]

वर्णाश्रमधर्मः

सर्ववेदान्तसिद्धान्त गोचर तमगोचरम् ।

गोविन्द परमानन्द श्रीपतिं प्रणतोऽस्म्यहम् ॥

भो भो महाशया ! सुविदितमेवैतत् तत्रभवता यत् भारत-
वर्षायाणां वर्णाश्रमधर्मो नाम अनादिपरम्परा समासादित अनितर-
साधारणो महान् दायभूतो निधिरिति । स च अधुनातनै कैश्चित्
तन्महिमानमजानद्भि तत्प्रतिपादकशास्त्रविधुरै केवललौकिक भोगस्पृहा
कर्दमसदूषितमातिभि अन्तिमयुगजनाधिपै नितरामवर्णीय असत्प्राय-
तामापिपादायिष्यत इति च विजानन्त्येव विमर्शकाः । एवमेकत्र मिथ्या-
जनाधिपै अपरत्र क्रैस्तवादि बहिर्जनैश्च सन्दशितोय वर्णाश्रमधर्म
नीतिनिर्माणसभायामपि शर्म अलभमान तत्राधिकृतैरपि तिरस्कृत-
सनातनधर्मसभायामेव अभयमपेक्षते । तस्मादस्माक तद्रक्षणसरभ
प्राप्तकाल एव ॥

अस्थानासूया

अयमप्यचिरनिर्वृत्त कश्चनातिक्रम श्रुतिपथमधिरूढ एव स्यात्त-
त्रभवताम्, यदसूयापरै कैश्चनानाभिज्ञै भगवत्या मनुस्मृते द्वित्राणि
सपुटानि भस्मीकृतानीति, अमु चातिक्रम सहृदयास्सर्वेपि दुस्साहस-
तममेवेति दूषयेयुरेव । अथापि तेषामज्ञानविजृम्भणमवलोक्य अनुकपाद्र-
चित्रास्साधव तादृशाद्गुरुतरात्पाप्मनस्तान् विमोचयितु भगवन्त
प्रार्थयेयुरपि ॥

अयं च मद्रपुर्याम् अखिल भारतवर्षीय वर्णाश्रम धर्ममहा-
मण्डले अग्रासनाधिकृतै श्री ॥ उभय वे० नडादूर् श्रीनिवासाचार्यै.
बि ए बि एल् आग्लभाषाया प्रवर्तितस्य उपन्यासस्य संग्रहः ॥

महाशया' ।

नतावत् केषाचिन्मनुस्मृतिकोशाना विनाशमात्रेण चिरत्नस्य धर्मकल्पतरोर्हानि स्वप्नेपि सभावयितुमर्हतीति मम दृढतरो विश्वास ॥
अथापि—

‘दुर्मुखो दर्पण दृष्ट्वा नासिका कुपितोऽच्छिनत्’ ।

इति न्यायेन असूयापरवशनाम् अकार्यप्रवृत्तिरात्मनि श्रेयसमेव हिनस्तीत्यावेदयितुमेवास्माभिस्तत्प्रसंग आहृत ॥

अत एव च रहस्यान्नाये असूयामूलानामापदा प्रकार बहुधा प्रपचितः, यथा—

“ज्ञान ज्ञापन संप्रेषण कर्मा ब्राह्मण । ज्ञान परित्राण कर्मा-
क्षत्रिय । ज्ञानबीजवर्धनकर्मा वैश्य । ज्ञानपर्युत्थानकर्मा शूद्रः । कृतयु-
गस्यान्ते त्रेतायुगस्यादौ ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रा भिद्यन्ते । तेषां भिन्नानां
दृष्टिः न तथा भवति । पृथग्यारसा न तथा भवन्ति । पुष्पफलमोषाधि-
वनस्पतयो न तथा दधते । तान् दृष्ट्वा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्राणां
असूया प्रादुर्बभूव । शूद्रः प्रथमजातिः न व पर्युत्थास्यामीति । वैश्यो
द्वितीयजातिः न वो बीजानि वर्धयिष्यामीति । क्षत्रियस्तृतीयजातिः न व
परित्रास्य इति । तान् ब्राह्मण इत्याह । आस्थिता यूय न वो वक्ष्या-
मीति ॥ ” (भगवद्गीताभाष्यतात्पर्यचन्द्रिका १८-४४)

एतया च वर्णनया असूयैव केवल अन्योन्यवैरजननद्वारा सर्वा-
सामेवापदा आदिमो हेतुरिति प्रतीयते किल । ईदृशीयमसूयाप्रभवा
दुर्दशा तावत् अधुनाऽसु भारतवर्षमामूलाग्रमाक्रमितुमरभते इति तादृशः,
दुर्देवतामसूया व्यपोहयितुमस्माभिः सर्वैरप्यैकस्येन प्रमथत प्रयाति-
तव्यम् । तद्द्वीकरणे वर्णश्रमधर्मानुकरणमन्तरा न कोप्यर्थः उपकरण-
भाव लभेतेति स एवास्माभिस्सर्वैरपि शरणीकरणीयः ॥

धर्मप्रभावः ॥

एष च वर्णाश्रमधर्म अनादे कालात् अस्मद्देशीय महाजना-
नाम् अनवधिकमानुकूल्य सम्पादयन्नभिर्वर्धित इति एतत्सार्वजनीनम् ।
विशेषतश्चास्मद्देशीयानामय धर्मः अचचलामनुत्तमाचार्थसिद्धिं समर्थयन्
अखिलानपि मानवान् अन्योन्यहितैषणापूरित हृदयानेव वर्तयन् अद्या-
वधि अविच्छिन्नस्वरूप एव दरीदृश्यते । अस्यैव महिम्ना सन्तुष्टमुख-
भरितश्च शूद्रसमुदाय , वार्तया वसुनाच समृद्धो वैश्यसघ , पाराक्रान्तो
गभीरहृदयश्च राजन्यवर्ग सन्यासिनस्सन्मार्गदर्शिनश्च ब्राह्मणा इत्येते
सधीभूय सनातनधर्मस्य साक्षान्मूर्तिरिव अन्योन्यानुकूल्येनाभिवर्धन्ते ।
अमुमेवार्थं प्रशसति सर् जार्ज बर्डुवुड् (Sir George Birdwood)
इत्यभिहितो अस्मद्देशमिमानी कश्चिदागिलमणि । यदाह वर्णाश्रमधर्मा-
नुसारिणा कृषीवलाना प्रस्तावे, सम्भूयसमुत्थानम् तन्मूलफललाम च
प्रशस्य, “अद्यापि ऐरोप्यजनमनोविदूर भारतीय महाजनैकान्तप्रतिष्ठ
व्यवसायिसमूहमनोरथपूरणप्रकार मन्वादयो महर्षय स्वय निर्णीय चिरात्
पूर्वमेव निबन्धयामासु । न तदानीमभिवृद्धजनसमूहेषु ऐरोप्याणा
परिगणनापि सभावनीया आसीत् । नतावत् कृषि केवल जीविका-
मात्रतया तै परिगृहीता । किंतु आत्मनिश्रेयस साधारणसाधनत्वे
नापि । तथाविध च उद्बोधमुत्पादयामासुरुद्बुद्धास्ते ब्राह्मणा महर्षय ।
अत एव च भारतवर्षे प्रभुभृत्य मात्सर्यादि दोष विनैवाद्यावधि
आन्तरालिक क्षात्रवैश्यधर्मवैकल्य दशास्वपि स्वयमप्रतिबद्धैव कृषिरूपा
वृत्तिर्वरीवर्ति । नहि द्वीपान्तरीय विग्रह वाणिज्यादिभि क्षत्रवैश्य-
धर्मयो सप्राप्ता उपहतिरपि कृषिरूपा वृत्तिम् तत्रास्पृशत् । ईदृशीं
भारतीयमहाजनमहानन्दजननीं मन्वादिमहर्षिप्रवर्तित धर्मानुसरणपद्धतिं
अवलोकयतां आगिलमहापुरुषाणा भारतीयमहाजनेषु अनिवार्या

प्रीतिस्वयमेवाभिवर्धते इति अनुश्रूयतेस्माभिः परसुखसुखित्वरूप परम-
पुरुषार्थः” इति ॥

सहृदया ! एता सनातनधर्मानुष्ठानपद्धतिं अभिजानता मेषा
स्वात्मैकप्रयोजनाय केवल जनतापमुपयुजता पाश्चात्यानामनुष्ठानरीति-
मपेक्ष्य सहस्रकृत्व-श्लाघनीयासेत्ययमर्थं सर्वात्मना प्रतिभासेत । पश्यत
किमिदमन्तरमनयोरिति—यत् स्वप्रयोजननिर्वर्तनाय जनतोपरोध
जनतानन्दसन्दोहनाय स्वात्मसमर्पणमिति च । यावता कालेन च नास्पृश-
दय पाश्चात्यजनाचारो भारतवर्षं तावन्त काल शान्तास्तुष्टा परोप-
कारैकनिरताः परमात्मपराधीना तद्गतसकलसतोषाश्च समभवन्नस्मत्
पूर्वपुरुषा । ईदृशीञ्चास्मत्पूर्वपुरुषाणा अभ्यर्हणीया स्थितिम् सार्व-
जनीनामापादायितु अभिलषति ‘सेण्ड् अगस्तैन्’ नामा पाश्चात्यमुनि ,
यदाह—‘ एष एव जनसमूहस्य श्लाघनीया गुणराशि । यत्परमेश्वरेण
स्वानुगुण प्रसाधिता पदवीमासाद्य तस्यामेव स्थैर्यं सम्मान सन्तोषश्च
सर्वे सलभन्ते । यत्समूहावयवात्मा नकश्चिदपि परेषामौन्नत्य तदधीना
मानना तद्गता भोगसमृद्धिं चासहमानः प्रद्विषति । यत्र च सकल-
मपि वस्तुजात सर्वेश्वरावास्त्यमिति तन्मयमेव निखिल प्रपन्न भावयन्ति
भावुकाः । यत्र च परप्रयोजनैकफलैरुद्यमैर्नवनवमेवातन्वन्ति आध्या-
त्मिकाधिग्नौतिकानन्दसमृद्धिं अभिजनवरेण्या ” इति । किं बहुना—
चर्चुवद् प्रोक्ता इयमुक्तिरेकैव वर्णाश्रमधर्ममहिम्न परां काष्ठामावेदयति ।
यथा ।

“ भारतो भारतस्तावद्यावद्वर्णाश्रमस्थिति ।

यदैष त्यज्यते धर्मं तदा त्यक्तास्य हैन्दुता ॥ ” इति ॥

भारतस्वरूपास्थिति

परमर्षिं परिष्कृतेयं सर्वोपद्रवनिवारिणी वर्णाश्रमधर्मसराणि भार-
तीयानामैक्यरूप्य लौकिकाध्यात्मिकवृत्तिं तदनुगुणानात्मगुणान् द्वन्द्व-

सहताम् इत्येतानितरांश्चानितरसाधारणान् धर्मान् वर्धयित्वा परराज
विभ्रहनैष्ठुर्यात् अन्तश्छिद्ररघ्राच्चागमिष्यन्तीमापत्सततिं सन्निवार्य भारत-
स्वरूप समर्थयन्ती समभिवर्धतेस्म । श्रुतचरमेव भवता क्रैस्तवसप्तशत्या-
आरभ्य वर्षाणा यावत्सहस्र कठोरास्तुरूपका अस्मद्भारतभूमिं बहुधा
समुपाद्रवन्निति । यदि च वर्णाश्रमधर्मानुसरणश्रद्धाऽस्मदीयाना ना-
भविष्यत् तदैतावता कालेन मुषितनैजरूप तुरूष्कप्रायमेवेद भारतमहा-
मडल अभविष्यत् । अद्यापि शिथिलावशिष्टाणि तच्छूद्रैवास्मान् सरक्ष-
तीति अत्र नसशय लेशोपि । देशीय वादिभिरालक्ष्यमाण स्वराज्यमपि
समर्थयितु वर्णाश्रमधर्मपद्धतिरेव समर्थेति यत्सत्य वय श्रद्धाम । असूया
मदमान मोहनादीना आमयानामपि इयमेव दिव्यौषधमिति च धीरतर
वदामः । तस्मात् भारतमातुश्शुश्रूषामभिलषद्भि सर्वैरपि मनीषिभि
वर्णाश्रमधर्मं सरणिरिय सर्वात्मनानुसरणीया अनुसारयितव्याचेति
बहुतर प्रार्थयाम । यतश्च वर्णाश्रम धर्मसगता अनितरसाधारणी
शक्ति भारतीयाना तदनुगुणा नैसर्गिकी चित्तवृत्ति 'सत्यमेव
जयति नानृतम्' इति उद्बुध्यमाणा औपनिषदी वाक्प्रवृत्तिश्च
मिलित्वा मतिमारूढा अस्मान्नितरा प्रोत्साहयति । अतो मानवमात्र-
साधारण मदमान मुख विगुण विरोध भिया विरता भवेमेति च
विशेषतो विज्ञापयाम । आतर । सहभवामः । सौमित्र समूहसेवा
च सर्वत्र सहृदय प्रकाशयाम । आर्यया मत्या अनार्याचितान् जनान्
जेप्यामः । अज्ञानाच्चैः परित्यक्त तदीय सनातनधर्मफलदायाश्च तेभ्य-
स्समर्पयाम. ॥

धर्मशब्दार्थ

तदैव खलु धरणार्थं धातुनिष्पन्नस्य धर्मपदस्य याथातथ्येनार्थ-
मभिज्ञायानुष्ठानकृतो भवेम । नखलु ऋते वर्णाश्रमधर्मात् समूह समा-

धानसमुचितहेतु किञ्चन साधन कुत्रापि दृश्यते । सर्गादावेवाय धर्म
सृष्टिकृता जगत्स्थितये विनिर्धारित । प्रवर्तितश्च धनिक दरिद्र प्राज्ञ
पामर बलाढ्यदुर्बलाद्युच्चावच विभेदजुषा मानुषाणा प्रतिनियत
स्वभावमवलोक्य देशकालपुरुषभेदानुगुण विभिन्नरूपत्वेनापि । यदिचाय
धर्मसेतुर निबद्ध स्यात् तर्हि मात्स्यन्यायेन मानव समूहमपि समाक्रम्य
बलवत्कषलितास्सीदेयुरेव दुर्बला इति का कथा समाश्वासस्य ? नीति-
वर्त्मानुवर्तनस्य वा ? ।

अपि च लोकदृष्ट्या उच्चावचनीचोच्चभावबुद्धिसमुत्पादनाहं अपि
चातुर्वर्ण्यधर्मा इमे अनुसहित सर्वान्तर श्रीभगवदाराधन स्वभावास्सन्त
सर्वेष्वपि वर्णेषु साम्य बुद्धि समर्पयन्त नीचक्रियाचरणमूला इतर-
जनावधीरणा आत्मन्यसन्तुष्टिम् वाऽपनयन्तः सर्वानपि मनीषिणस्स-
मरसंक्रिबन्तीति महानयमेतेषा महिमा । नहि अस्मच्छरीरावयवेषु
गच्छतीति चरणोऽवज्ञायते ? आदत्त इति बाहुर्बहुमन्यते वा ? ।
सर्वेष्वपि तेषु तत्तत्स्वरूपानुगुणमेव कर्म समर्प्यते । अत एव च
सत्त्वप्रधान ब्राह्मण प्रवचनार्हमिति कृत्वा परमपुरुषमुखसमुद्भूत,
क्षतिकर्तृच क्षात्र बाहुजात, सवेशनार्ह विश ऊरुजात, परिचरन्त
चतुर्थ श्रीभगवच्चरणारविन्दावतीर्ण च उपवर्णयन्ति श्रुतय ॥

नहि सर्वस्मिन् जगति बृहत्स्वरूपदृष्टेरन्यत् अन्योन्यानुकूल्य-
निधानं विभावयितुं शक्यते । अनादिसिद्धोय वर्णाश्रमधर्मविभाग ।
नैव केन चिद्वर्वाचीन सकेतेन परिकल्पित । ऋग्वेदेऽपि अयमिति
प्राक्तनतया प्रकीर्तितो दृश्यते । तत्रैव च ब्राह्मण्यादिजातिर्जन्मसिद्धै-
वेत्यप्यनिर्धारि । मन्वादयश्च स्मर्तारः जन्मसिद्धामेता चातुरात्मिका
जातिमेव वर्णत्वेन पर्यगणयन् । इतराश्च जातिभेदान् सकीर्णान्
निरदिशन् । भक्तिसारोपि स्वयमवर्णी सन् एतान् चतुरो वर्णानेव

(कुलगलाय वीरिरण्डु) इति कुलशब्देन बहुमेने । महर्षयश्च सर्वेषां वर्णिना मवर्णिना चानुरूपानेव धर्मान् समादिशन् । तथाहि मनु-
स्मृत्युपोद्धाते ॥

देशधर्मान् जातिधर्मान् कुलधर्माश्च शाश्वतान् ।

पाषण्डगणधर्माश्च शास्त्रेस्मिन्नुक्तवान् मनु ॥ इति ॥

एव स्वस्ववर्णाश्रमधर्मनियत धर्मानुष्ठानेभ्यः कर्मयोग इति व्यपदिश्यते । एतस्य कर्मयोगस्य फलनिर्वर्तनप्रकार एव निरणैषि—
अपनेतव्यौच सर्वानर्थं हेतू कामक्रोधरूपौ रिपू । निर्णेतव्य शरीराति-
रिक्तात्मस्वरूपयाथार्थ्यम् । सत्त्वादिगुणत्रयकार्याणि चाकलनीयानि ।
परिहरणीय च विषयोन्मुखाना इन्द्रियाणा पारवश्यम् । भेतव्य च पापा-
चारफलीभवतो रौरवादि नरकपातात् । अभ्याससपादनीया च ओन्नत्य-
दायिनी मनसश्शुद्धा भावना । क्षुद्रफलाभासनिरपेक्षमेवानुष्ठेयानि
स्वरूपानुरूपाणि कर्माणि । अनुष्ठितैरेतैराधनीयश्चाखिलजगदन्तर-
स्थित सुरासुरनरवरहृदयकुहरावासो रमानिवास । अधिगन्तव्य च
तच्चरणारविन्दसेवा समुद्भूत मोक्षाभिलष्य अनवधिकानन्दफलमिति ॥

सर्वसमत्वम्

महाशया । सहृदया । इत्येव विनिर्धारिते वर्णभेदे तत्र का
कथा उत्कर्षनिकर्षादिसर्घस्य ? यतोहि भगवदवयवभूतास्सर्वेपि वर्णा ।
अपिच एतेषु वर्णेषु मुख्यामुख्यविचारोवा कथं प्रसज्येत ? नहि शिर
पाण्यादिषु पुरुषाशेषु अमुक एवाइयक नेतर इति कश्चिद्विचक्षण
आचष्टे । न च पाणिवदादातु पादं प्रभवति । तद्वदभिगतु च पाणि ।
अभ्यर्हणीया एव सर्वेप्यवयवा यदि तत्तदुचितक्रियाकरणकुशलाः ॥

न च कार्यविशेष निर्वाहादि निमित्तमुपधीकृत्य परिकल्पित
नीचोच्चभाव वस्तुषु स्वाभाविकोत्कर्षापकर्षावपि समर्पयितुं प्रभवेत्

नहि सभासु भासमान प्राड्विवाकसमाध्यक्षादि विभेद विहारदेशेषु
तेषां सर्वेषामपि साधारण्यमुपरुणाद्धि ।

समूहात्मकस्य महायन्त्रस्य अवयवभूता एवहि सर्वे वर्णाः । एषु
चान्यतरप्रमोषेषु सुषितप्रवृत्तिरेव भवेदय महायन्त्र इत्यपि किमु वक्तव्यम् ॥

वर्णाश्रमधर्माणां नियमनैकरूपत्वम्

अपिच यथोचित वर्णेषु विभज्य समर्पितास्सर्वेपि वर्णधर्मा
स्वविधिपरवशानेव तानधिष्ठाय सेवकीकुर्वन्ति केवलम् । नहि मात्रयापि
ऐहिकभोगाद्याधिगमे कस्यचित् कोपिवर्णधर्म विशेषतः स्वामिता
मापादयति । यतस्ते भोगाधिकारा धर्मपथविदूराः । परतु एतावदेवात्र
नियम्यते । यत् भोगातुरतयाऽसूयामदमानमोहादिपाशविवशा पशवो
मामूवन्निति । दयादानदमशमादि परिकर्मितान्तरगा स्वच्छन्दा विह-
रेयुरिति च । एव विमज्ज्योपपादितेषु वर्णधर्मेषु समुदाय क्षेमसपादका-
प्रधानतरा प्रयासनिर्वाद्याश्च बहवो धर्मभराः विप्रमूर्धस्वेव सामारो-
पिता । एतदेव परमुपधीकृत्य तेषु किञ्चित् व्यपदेशसपर्या-
दिकमुपदिश्यते । अम्युपगम्यते च सर्वैरपि मनीषिभिस्ताद्विप्रकृत
महोपकृतेस्स्वरूपमेवेत्यपि । आचर्यते च तदद्यावधि विधिनिषेधशास्त्रानु-
सारिणि महनीयजनुषि मूसुरे ॥

अथापि उत्पत्त्यप्रवृत्ते विप्रब्रुवे पर महर्षयः अणुमात्रमपि नकरु-
णामकुर्वन् । प्रायश्चित्तव्यपोद्धानामपि केषाञ्चित् पाप्मना ब्राह्मणगामित्वे
परं निष्कृतिर्नास्तीत्यपि निर्धारयामासु ।

तुरीय वर्णेषु व्रतोपवासादि नियमविशेषनिषेधोपि तत्स्वभाव
प्रापितधर्मोपरोधो मामूदिति सौमनस्येनैव प्रवर्तितः । अतो नतत्रावज्ञा
पक्षपातादि दोषशका अवकाश लभते । नहि स्वभावाननुरूपस्य
कस्यचिदन्यस्य धर्मस्याकरणमात्रेण तेषा ऐहिकस्यासुष्मिकस्य वा

फलस्य लेशतोपि विनाश उत्प्रेक्षितुं शक्यते । स्वानुरूपधर्मानुष्ठानेनैव सर्वार्थसिद्धेः । प्रपञ्चितश्चायमर्थः पुराणरत्ने —

‘ धर्मोत्कर्षमतीवात्र प्राप्नोति पुरुषः कलौ ।

अल्पायासेन धर्मज्ञः तेन तुष्टोऽस्म्यहं कले ’ ॥

इत्यारभ्य —

‘ निजान् जयति वैलोकान् शूद्रो धन्यतरस्ततः ’

इत्यन्तेन । एषेव रीतिः क्षत्रियवैश्ययोः धर्मविशेषविधिनिषेधादिष्वपि समाकलनीया ॥

गुणाधीनजातयः

एषा वर्णपदामिलप्या जन्मसहभूत्राह्वण्यादि जातिस्तावत् आशरीरविमोक्षणादनपायिनी भवेदेव । अथापि अहिंसासत्यास्तेयशमदमाद्यान्तरगुणोपचयाधीना मानसी ब्राह्मण्यादिजातिः परवर्णिनस्सर्वानपि समाक्रमेदित्येतन्मात्रं महर्षयो न व्यस्मार्षुः । यतस्तादृशी च मानसी जातिश्शास्त्रेषु प्रतिपाद्यते बहुश । जनिमात्रेण विप्रतामधिगतो विपरीतवृत्तिः विप्रब्रुवस्तु क्षिप्रमेव विनश्येदित्येतदपि निराटकप्रकटीक्रियते । याच जन्मसिद्धा जातिः याच गुणाधीना अनयोरन्योन्यानुपरोधेनैव स्वस्वानुरूपवृत्तविशेषा प्रयोजनभेदाश्च बहुधा उपवर्णिता दृश्यन्ते । उपलभ्यन्ते चाधुनावधि द्वयमपि वृत्तं तन्निवृत्तं फलच विपुलम् । अभिलषन्ति चैता नियतिं सहृदयास्सर्वेऽपि वर्णिनः । अनतिरुघनीयश्चायमर्थः शास्त्रप्रामाण्यमभ्युपगच्छतामभिज्ञानाम् । अत्रच जातिसिद्धो धर्मः आप्रायणमपरित्याज्य एव । गुणकृतजात्युत्कर्षस्तु जन्मसिद्धधर्ममबाधमान एव प्रामाणिकजनबहुमानं भगवत्प्रसादभूयस्त्वादिषु निदानि भवति ॥

जन्मब्राह्मणगता शमदमादिगुणोपरोधिनी मानसी विपरीतवृत्तिश्च, अधिगम्यच प्रकृष्टगुणमहिष्ठमभिजन्म हन्त प्रच्युतोऽयं प्रचुरफललाभादिति, साधुभिस्सुतरा गर्हणीयतामापादयति । जनित्वाच

जात्यान्तरे यदि विशुद्धवृत्त्यादिगुणोत्तरो भवति, प्रशसन्तिच त
अन्यादृशमेव 'त देवा ब्राह्मण विदु' रिति । अनघजन्मनस्तस्य
जातिसामान्येन वीक्षणमपि निरयगमनायैव भवेदित्यपि मान्यते
तन्महिमा । श्रूयतेच इतिहासनिबन्धेषु अनार्यवृत्तेरार्यस्य आर्यवृत्ते-
रितरस्यच निकर्षोत्कर्षौ । पूज्यन्तेच शठकोपप्रभृतयश्शुद्धसत्त्वा ।
आवधीर्यन्ते चाऽद्यजन्मानोपि व्युत्पथप्रवृत्ताः । यदि तावत् जातिकृतो
गुणकृतोऽवायमपकर्ष स्वाश्रयचेतनेन सम्यगनुसहितः ससार गर्तादुद्धर्तुं
समुचितोपाय विशेषावलबने नियोजयेत् तदा एष एवापकर्ष निरति-
शयपुरुषार्थावाप्तिसाधनता गत उत्कर्षरूपतामेवापद्यते ॥

आर्यमिश्रा । इत्येषा वर्णाश्रमधर्म नियमानां समस्तजननिबह-
सुस्वावहा पारमार्थिकी रीति याथातथ्येन यद्यवगता भवेत् तदा तद्विष-
यिण्य आधुनिकानां असदृश्यशका दूरोत्सारिता भवेयुः । ते किल
तद्विषये एव सशेरते । कोचित् वर्णाश्रमधर्मं पद्धतिं ऐहिकामिवृद्धे
विरोधिनीमेवाभिमन्यते । परेच सर्वत्रापि वैरस्यहेतुमेता मन्यन्ते ।
अन्ये च जातिविशेषस्य अतिशयाधानाय कल्पितामेतामाचक्षते । इतरे
च स्वाराज्यसिद्धिमुपरुणद्धीतीमा उपालभन्ते । आविचारितरमणिया-
नीमानि वचनानि धर्ममर्मानमिजतयैव समुदीर्णानीत्यपि किमुवक्तव्यः ? ।
निपुणं निरूप्यमाणे उच्चृखलवृत्तीनां विधिनिषेधवचस्सु प्रद्वेषातिशय
मूल एव प्रादुर्भूतेय असमीचीनं वाग्विषवल्लरीति कथनमपि नाधि-
कौक्यतामावहेत् । प्रायशः परोत्कर्षसहनमेवात्र निदानमाव मापद्यत
इत्यपि अनलीकमेव । विशेषतश्च यथेच्छाहार विवाह करणकौतुकि-
भिरेवाक्षिप्यतेय वर्णाश्रमधर्मनियम इति प्रात्याक्षिकमेतत् । न ताव-
द्वर्ज्यावर्ज्य विशेषमन्तरा अभ्यवहारादि अन्योन्य सौहार्दाभिवर्धन-
महामन्त्रः स्वाराज्य साधनम् । येन तयोरभिकाक्षयापि तदगी-
कुर्मो वयम् । इत्यलमसमीचीनमार्गसमीकरणायासेन प्रकृतमनुसराम ॥

अस्मत्कर्तव्यम्

एतावदेव वर्णाश्रमधर्मिभि रवश्यकरणीयोऽर्थः । यदनादिसिद्ध वर्णाश्रमधर्म महापथ अधिरुद्ध तत्र सचरणमुपरुन्धानान् कण्टकाना-
लोक्य तेषा समूलोन्मूलनामिति । यद्यपि कात्स्न्येन वर्णाश्रमधर्माणा-
मनुष्ठानमद्यतनैरस्मदादिभिरशक्यसभावनामिति नाविदितमस्माकम् ।
अथापि एतावदेव वयमभिलषाम । यदनादिपरपराप्राप्तस्य धर्मपर्या-
यस्य महतो दायधनस्य सारतमाश समादरणेनापि आत्मान कृतार्थी
कुर्म इति ।

ज्ञानानुष्ठान परिमण्डिता पण्डितवरा बहव अस्मत्प्रार्थ-
नामगीकृत्य एतन्महासभामलकुर्वन्ति । नीतिनिपुणा मेधाविनश्च
बहवोत्र परिदृश्यन्ते । मिलितेनैव वर्गद्वयेन कर्तव्यमखिल सुष्ठुकृत
भवेत् । यथा च वर्णाश्रमधर्मकल्पतरोर्नोल्पमपि मूलमुच्छिद्येत, यथा
च अनितरनिवार्य परिवर्तनस्य कालाख्यस्य महत चक्रस्य गतिरपि
न नितरामुपेक्ष्येत, तथा ताटस्थमवलब्धैव समर्थनीयोऽयमर्थस्स्यात् ।
नैवचाप्तिन् समये श्वमुष्टिनयात् गृहतिग्राहिभि सर्वनियमोल्लघन
कुतूहलिभिस्साहसिकैर्वा स्वल्पमपि साधुकारित म्यात् ॥

यद्यपि परमर्षिप्रणीतासु बह्विषु स्मृतिषु एतेषा वर्णाश्रमधर्माणा
अनुष्ठानप्रकारभेदा बहुधा उपदिश्यन्ते । कासु चिदमुष्ठापनप्रक्रियामु
विरुद्धमतश्च इवापि दृश्यन्ते ते महर्षयः । तथापि तत्रापातत प्रतीय-
मानो विरोधस्तावद्विनाप्यन्यतमबाधमखिलानुगुण वाक्यार्थवर्णनया निर-
सनीयः । कचनानिवार्यतया प्रादुर्भवन्नपि विरोध देशकालाद्यनु-
सरणमूलतया परिहरणीयः । नहि सुदूरान्तारतविभिन्नकालोद्भवाः
स्मृतयः सर्वा अपि धर्मप्रमेयेषु सर्वेष्वपि ऐकरूप्यमवलबितु अर्हन्ति ।
तत्र दैशिककालिक पुरुषशक्तीना विभेदात् । तादृशे चासुलभनिर्णये

धर्मतत्वे अद्यतनैरस्माभिः पूर्वतर शिष्टजनाचार एव शरणीकरणीय । तन्मूलानिच शास्त्राणि समादर्तव्यानि । नतूच्छृखलवृत्त्या सर्वेषामपि प्रमाणवचनानां तावन्त व्याजमवलब्ध परित्यजनम् । आपूर्वपुरुषादद्यावधि अनुष्ठीयमानाचारविरुद्ध प्रमाणानुसरण वा शोभन भवेत् । शास्त्र-प्रामाण्यस्य उन्मूलनमभिलषता हि दुष्कृत तत् । एतेन आचार-परिष्कारकरण व्यपदेशभाजा विजृम्भणमपि व्याख्यातमेव ॥

आर्या ॥ इदंचात्रानुसधेयम्—यद्वर्णाश्रमधर्मानुसारिभिरस्माभिः अधीति बोधाचरण प्रचारणै विरोधनिरसनैश्च अय सनातनो धर्मस्सरक्षणीय इति । एष एव परमोद्देश अस्य सनातनधर्म महामण्डलस्य । नैवचाद्यतन मनोरथान्यनुसृत्य नूतनसिद्धान्तसरणि निर्माणचातुरी ।

महाशया । अद्युनातनाः सात्विक जना बहवस्तावद्वर्णाश्रमधर्मभेदानां निष्ठा स्वरूप अनितरफलबाधेन तदनुष्ठानरीतिं च अजानन्त स्तदभिज्ञानाय धर्मतत्त्व निरूपणपरमुपदेश आचरणस्य मार्गावेदनं चाभिकाक्षन्ते । एत चाभिलाषमय महामण्डलः एतदीया पण्डित परिषच्च मिलित्वा पूरयेतामिति सप्रत्ययमाशास्महे ।

अपि चायमर्थस्सुतरा समर्थनीयः । यत् अस्मत्सनातनधर्मनिर्मूलनपराणां तत्कृते नीतिसमाधिकारकुद्दालमुपकारणीकुर्वता अनुकूलविभ्रमेण परमं प्रतिकूलमेवाचरता सनातनधर्म श्रद्धालुजनमनोव्यथा-मेव जानता आचारपरिष्कार कोलाहलस्सर्वात्मना निर्वापणीय इति ॥

आचारप्राधान्यम्

विशेषतश्चाद्य शास्त्रीयाणां स्नानादीनां सर्वेषामप्याचाराणां यथार्हमाचरणे यथा च सर्वेपि वर्णाश्रमिणस्सादरा भवेयुः तथा प्रत्यय सर्वमानवबुद्धिप्रवृत्तयः सत्पथैकवर्तिन्य करणीयास्समाजेनानेन ॥

नहि मतिःसौष्ठवे तदर्धानमगलोद्यमे च वर्णाश्रमधर्माचारव्यतिरेकेण समर्थं किञ्चन साधनमुपलभामहे ॥

एषुचाचारभेदेषु आहारनियस्तावन्नितरा बहूकरणीय । अनेनैव च बुद्धीन्द्रिय मनासि विमलीभवन्ति । अत एव च धर्ममार्गं प्रकाशकरेषु विप्रेष्वयं धर्मं सर्वात्मना नियम्यते । तेषु तावद्यथाभिमत भोज्यार्थान्निखिलान् भोक्तुं वा अकालनियमं सर्वथा समशितुं वा नास्त्येव स्वातन्त्र्यम् । देशकालभोज्यपङ्क्तिं प्रभृतिषु सर्वत्रापि निर्बन्ध एव कृतं तेषाम् । उचितमेवैतत् । अन्यथाह्यधन्यायं प्रसरेत् । अस्मिन् प्रस्तावे स्मृतिपथमधिरोहति महनीयतमस्य अस्मद्देशे भेषाविनो वचनमेतत् । यत् 'भोजनं जीवनार्थाय न भुक्त्यर्थं तु जीवनं' मिति ॥

आर्यमिश्रा ! अन्यश्चायमर्थः प्रस्तोतव्य एव भवति । यद्वर्ज्यावर्ज्यं विवेचनमन्तरा सर्वैस्सर्वदा सर्वत्र सर्वमपि अशनीयमेव । विवाहविषयेऽपि स्त्रीपुमानित्येतद्व्यतिरिक्तं कोऽपि निर्बन्धो नास्ति । तदाह एव देशीय महाजनानां अन्योन्यं सौहार्दं समुन्मिषेदिति यदस्मदीयेष्वेव केचन भ्रमन्तीति ॥

परिशुद्धात् मानसः प्रादुर्भवितुं हि अर्हमिदं यत् सौहार्दं नाम ! तत् कथं नाम मनःक्षोभकरात् आहारदोषात् द्वेषोदकात् उन्मिषेदिति त एव ब्रुवन्तु । प्रत्युत विपरीतादाहारात् विरुद्धाच्चापि विवाहात् असूयाप्रद्वेषादि दोषा एव समुन्मिषेरन् । दैवी किल सपदि यद्वास्तविकं सौहार्दमिति । तत्तु मानवानां बुद्धिप्रवृत्त्यनुबन्धि गुणप्रकर्षाधीनं प्रादुर्भावभागिति अस्मत्सनातनं धर्मसारं ॥

विवाह

विवाहस्तावद्वर्णाश्रमधर्मानुयायिना सर्वेषामेव धर्मविशेषाधिकारसंपादकं कश्चनानर्धगुणस्सम्कारः । न तु बाह्यानामिव केवलो

अभ्यर्हणीय अनतिक्रमणीयश्चेति । एवविध वधूजनानां विवाहस्य
 और्व्यमनुचिन्त्यैव ता. अप्रादुर्भूत एव विषयभोगलपटतासपादके
 प्राथमिके वयसि समुचिते पात्रे समर्पयेरन्निति पित्रादीनां जापयन्ति
 शास्त्राणि । पाश्चात्यकन्यकानामपि वत्सरे द्वादशे स्वेच्छया नायक-
 वरणमनुजानाति तेषां नीतिः । परंतु आस्माकीनकन्यकास्तु पित्रादीनां
 पात्रान्वेषणादि भारो बहुश समारोपित इति भूयसी क्लृप्ता गुण-
 समृद्धिः । क्वचिद्दृष्टचरेषु विवाहविषये अमर्षणीये पुरुषदोषे अस्मन्महर्षि-
 प्रणीता विवाहपद्धतिः पर सर्वथा सर्वदेशीय संप्रदायानप्यातिशेते
 इत्यत्र न संशयलेशोऽपि । अतश्च दोषभाज एव परिष्करणीया नतु
 क्रियास्वरूप विपरिवर्तयितुमर्हति ।

महाशया ! अस्मिन् सन्दर्भे डिडिमहानीतिसभाया मद्रसभा-
 याच हितैषाभिमानिभिः कैश्चित् प्रवर्तयिषित अस्मत् सनातन विवाह-
 सरणि सचरणोपरोधी नीतिरूपो निर्वन्ध यथाच नाम्मानुपारुन्धेत
 तथा जागरेण प्रयतितव्यमस्माभिः ॥

नीतिसभा

नष्टेते उभेऽपि समे समयाचार परिशोधनाय संशोध्य प्रेषितै-
 र्महाजन प्रतिनिधिभिः परिमण्डिते परिषदौ । परंतु वेषभाषाचारादिभि-
 र्नितरा विरूपता गतै मनान्तर पुरुषै बहुलतर राजकीय समे एव ।
 अपिचात्र नीतिसभायामवयवतामापन्नास्तावत् न वर्णाश्रमधर्मनिर्णायक-
 शास्त्र पारिचयभाजः । किंच तेषु श्रेयस्साधनत्वप्रत्ययहीनाः । प्रत्युत
 तानसमजसव्यापारानित्यवजानन्तोऽपि दृश्यन्ते । सर्वेषामप्येतेषां दोषाणां
 तद्बुद्धीनां पाश्चात्यविद्याधिगममूलप्राकृतभोग लपटतैव हेतुरिति न ते
 वर्णाश्रमधर्म निर्माणविधौ सर्वथा अधिकार लवमपि वा लभेरन् ॥

अन्यदप्येतदत्र चिन्तनीयम् । यथा अद्य नीतिसभाधिकृतैः महा-
 जनप्रतिनिधिभिः यद्विवाहादिरूपसमयाचारस्य परिष्करणाय प्रयत्यते, न

तदशेनापि महाजनमनोरथोऽनुस्रियत इति वक्तुं पार्यते । यतस्ते महाजना सनातनसमयाचारेषु अविकलश्रद्धावन्त वैवाहिकसंस्कारादिक निखिल-
मपि समयाचार अधुनिक विवक्षा तिरस्कृत्य पुरातन रीत्यैव कारयितु-
मीहन्ते । अत एव च ते प्रतिनिधय महाजनानामिमतेपि जनताहितमिति
अभिमते सनातनधर्मसेतु विध्वंसने स्वकीय नीतिनिर्माणाधिकार दुरुपयुज्य
तदुदर्कं फलीभूत दुरितनिवह सात्विकमहाजनोपरि क्षेपुमीहन्ते । अत-
स्तादृश दुरुद्यमः सर्वैरप्यस्माभि मनागपि नोपेक्षणीय ॥

निगमनम्

महाशया । एवविध वर्णाश्रमधर्मव्यवस्थासंस्थापनविधौ शान्तै-
रकलुषितैश्चाम्माभि यतितव्यम् । यद्यप्यस्मासु कोचित् वर्णाश्रमधर्मसेतो-
द्दिशिधिलितसर्वावयवतया इतस्तत्समीकरणायसः सर्वथा विफल एवेति
अभिमन्यन्ते । अथापि अवाशिष्टभाग परिरक्षणेनापि भूयान् फललाभ
म्बजायेतेति पुन कालेनाय धर्मसेतु अविकल एव समुपचितस्सुदृढो
भूत्वा समग्रमप्यानन्द इदानीन्तनानामस्माक आगामिनस्सत्सन्तान-
निवहस्य च दायविधया सादर अर्पयित्वा सफलो भवेदिति च यत्
सत्य वय विश्वसिम । नहिलोके दायक्रमायाते धननिवहे कोप्यश
कालवशात् शीर्ण इति अवाशिष्टोपि भागः सागरे निक्षिप्यते ।
प्राक्तनपूर्तये खलु सर्वात्मना प्रयत्यते । अतश्च अनिर्विण्णहृदया
अवधीरितविरोधाश्च वयम् ऐकरस्येन शान्तिसपत्ना अपरोद्वेगकरा
सहनशीलाः स्थिरस्वभावा सर्वजनविश्वसनीयाश्च सनातनधर्मं प्रचार-
यामः । न हीयते समीचीन वस्तु कुत्रापि केनचित् इति न्यायेनायं
सनातनधर्मस्सर्वथा सर्वतो विजृम्भेतेति सर्वधर्मसमाराध्य सप्रश्रय प्रार्थ-
यामहे । सर्वनेता श्रीपार्थसारथि स्वप्नसादसहस्राकिरणरश्मिमिरस्मदज्ञान
तिमिरजालमपोहतु । वर्णाश्रमधर्मसवर्धन सत्ये जस्मान् नीत्वा अस्म-
न्मनोरथं पूरयत्विति सप्रत्यय सविश्वासचाशास्महे ॥

॥ श्री ॥

श्रीमन्महाराज सस्कृतमहापाठशालावृत्तान्त.

श्रीमन्महाराज सस्कृतमहापाठशालाया विद्यार्थि पारितोषिक सभाया पाठशालाध्यक्षैरावेदितस्य प्रभवसवत्सरीयकार्यकलापवृत्तान्त-
स्याय संग्रह । यथा—

उपाध्याया.

उपनवान् वत्सरान् श्रद्धयोत्साहेन च शिष्यान् अध्यापयन्त
विद्वद्वरेण्याना श्लाघाया विद्यार्थिना कृतज्ञतायाश्च पात्रता गताः
वेदशास्त्रयो पाण्डित्येऽद्वितीया नयविनयादिसद्गुणालकृता महाविद्वास
करपत्तुरु वैकटरामशास्त्रिण , तथा— सप्तदशमवत्सरान् साहित्य धर्म-
शास्त्रादीन् अध्यापयन्त साधव सज्जना इति च प्रथिता श्रीमन्तो
विद्वास ग्राम वैकटाचार्या , तथा —मीमांसाप्रधानोपाध्याया न्याय-
मीमांसादि शास्त्रपारगता कल्याणगुणविभूषिता दूशी नरसिंहाचार्याश्च
दिवगता इति निवेदनं दुनोत्यतीव मानसम् । अनेन च कारणेन
पाठशालाया विनष्टि महतीति नात्युक्ति ॥

अस्मिन् सदर्थे यजुर्वेदमुख्योपाध्याया महाविद्वास श्रीमन्त.
अय्याघनपाठिन वेदभाष्यप्रधानोपाध्यायस्थाने नियोजिता । ततः
यजुर्वेदसहायोपाध्याया महाविद्वास श्रीमन्त. कट्टेमळलवाडि वैकट-
रामावधानिन. प्रधानोपाध्यायस्थाने नियोजिताः ॥

एतेन कारणेन— सलक्षण धनान्तयजुर्वेदे स्मार्तप्रयोगे च दत्त-
परीक्षा श्री ॥ बसवापत्तन श्रीनिवासावधानिन , साहित्यविद्वान् श्री ॥
हेडतले रामानुजाचार्या , व्याकरणवेदान्तविद्वान् श्री ॥ चक्रवर्ति
तिरुमलाचार्याश्च तत्तत्स्थाने च नियोजिताः ॥

एतस्मिन्नेवावसरे—व्याकरणोपाध्या श्री ॥ नेरूरु कृष्णाचार्या-
संस्कृतविद्याव्यासगपरीक्षामहासभापण्डिता श्री ॥ हरियप्पमहाशयाश्च
अभिवृद्धवेतना अभवन् । अपिच वैखानसागमोपाध्याया श्री ॥
कोदण्डरामानुजाचार्या मुजरायिमुख्याधिकारिकार्यालये पण्डितपदे
नियोजिता इति तेषां स्थाने समुचितोपाध्यायनियोजन कार्यनिर्वाहक-
समिति पर्यालोचयति ॥

मीमांसाशास्त्रप्रधानोपाध्ययस्थाने मीमांसार्धमशास्त्रविद्वांसः श्री ॥
देवशिखामणि रामानुजाचार्याः दूशीनरसिंहाचार्याणामशक्तिसमय एव
तात्कालिकनियोजनाविषयीभूता वर्तन्ते । अस्मिन्नप्यशे कार्यनिर्वाहक
समिति समालोचयति ॥

कार्यनिर्वाहकसमिति

अस्या समितावध्यक्षपदवीमधिरूढा पाठशालामिवृद्धौ दत्त-
चित्ता श्रीमन्त एस् पि राजगोपालाचार्यमहाशया अभ्युदय प्राप्ता
इति कोलारनगरे न्यायाधिकारस्थानमलकुर्वाणा. श्रीमन्त ए रामराव-
महाशया. श्रीमन्महाराजान्तरगकार्यवर्गे सहाय कार्यदर्शिस्थाने नियो-
जिता, अत एव समित्यध्यक्षतामपि समवहन् ॥

वर्ग विद्यार्थिनश्च

एतद्वत्सरारम्भे २३५ विद्यार्थिन आसन् । अद्य तु प्रौढ-
शास्त्राया ३५ कौमारवालशिक्षाशास्त्रासु १४३ वेदशास्त्राया ८४
आगमशास्त्राया ८ आहत्य २७० विद्यार्थिनस्सन्ति ॥

विद्यार्थिवेतनम्

प्रतिमास राजशासनवशात् ७५६ रूप्यकाणि लभ्यन्ते । अस्मिन्
वत्सरे प्रकल्पित विशिष्टाद्वैतविद्यार्थिवेतनद्वय २० रूप्यकाणि, कीर्ति-

शेषसचिवशिरोमणीनां टि आनन्दरायमहाशयानां नाम्नाकितात् मही-
शूरविश्वविद्यास्थानस्थद्रव्यात् महापाठशालाप्रयोगविद्यार्थिने लभ्यमानमेक
वेतन १० रूप्याणि । यळदूरुनगरविद्यामूलधनात् लभ्यमान वेतन-
द्वय ८ रूप्यकाणि । कीर्तिशेषैः सि सुब्बरायमहाशयैः परिकल्पितमेक
वेतन २५ रू. आहत्य ८२५ रूप्यकाणि भवन्ति ॥

विद्यार्थिभोजनम्

यथापूर्वं श्रीमन्महाराजधर्मसत्रे ४० स्मार्त माध्व विद्यार्थिन
श्रीश्वेतवराहस्वामिदेवालये १४ श्रीवैष्णव विद्यार्थिन श्रीपरकालस्वामि-
मठे २० विद्यार्थिनश्च भोजनानुकूल्यवन्तो वर्तन्ते । एवमेव अर्किचनेषु
देशान्तरीयविद्यार्थिषु कतिपये वा भोजनाद्यानुकूल्यवन्तस्सत्त्वित्युद्देशेन
पञ्चषसवत्सरेभ्यः प्रागेव प्रतिष्ठापिताया वेदशास्त्रपोषिण्याभिधायस्सभा-
यास्साद्येन केचनानुकूल्यभागिनो भवन्ति । इमापुनस्सभा प्रतिसवत्सरं
श्रीपरकालस्वामिमन्त्रिधिरपि रूप्यशतकेन अनुगृह्णाति । एतावता कालेन
सभाया द्वादशसहस्राणि रूप्याणि सज्जीकृतानि । पचाशीति केदार-
निर्वर्तनानि कृषिकर्मीकृतानि सन्ति । एतत्सभाकार्यदर्शिभ्यः श्री ॥
सदाशिवशास्त्रिभ्यः श्रीमन्महाप्रभवः अस्मिन्नवरात्रमहोत्सवे सुवर्ण-
सेवामरण तदर्थं वस्त्रादिभिस्साक सतोषेण बहुमतिमकुर्वन्नित्येतत्
महतो हर्षस्य स्थानम् ॥

विद्यार्थिवसति

पाठशालाप्रान्ते निर्मितेषु आयतनेष्विदानीं १४० विद्यार्थिनः
निवसन्ति । तेषां खानाद्यानुकूल्यमपि कल्पितमस्ति । तेषां
सदाचारादिपरतामपि परिपालयितुं दृष्टिर्दत्तास्ति ॥

पुस्तकभाण्डागारादिकम्

वर्षादौ २५९१ पुस्तकान्यासन् । इदानीं २७६४ पुस्तकानि

सन्ति । अपिचाद्य श्रीमन्महाराजाः महापाठशालायोगक्षेमैकदीक्षा स्वीयसरस्वतीभाण्डागारीया १६७१ लिखितपुस्तकसहिता २०८४ मुद्रितपुस्तकपरिपूर्णा सरस्वतीप्रतिमा सकलोपकरणसकलिता पाठशालो-पयोगायात्रैव प्रत्यस्थापयन्नित्ययमश संस्कृतविद्याधिदेवतायास्सरस्वत्या एव भागधेयमित्यभिनन्दन्ति सर्वेऽपि ॥

किंचाम्मित्रगारे वारमासिकपत्रिकाभिः संगृह्यमाणामि विद्यार्थिनः कुशला भवितुमर्हन्ति ॥

अपिचात्रैव प्रकटीक्रियमाणाया पाठशालापत्रिकाया वत्सर-त्रयात्मकेनैतावताकालेन १३ सचिका प्रकाशिता । भारतभूमौ सर्वत्र विद्यास्थानेषु परिगृह्यमाणाया अस्या इदानीं ग्राहकाः ५०० सन्ति । राज्याधिकारस्थानसाहायकेनैषा प्रवर्त्यमानाऽपि स्थिरतायै कश्चिन्निधिः परिकल्पनीय इत्याशयेन अद्ययावत् १६०० रूप्यकाणि संगृहीतानि-सन्ति । अस्या लेखकान् अनुग्रहीतृन् ग्राहयितृश्च कृतज्ञतासूचनेन सभावयामः ॥

उपन्यासः

अस्मिन्नब्दे विद्यागणपतिमहोत्सवसमये यथापूर्वं बहवो विद्वांसः समीचीनैरुपन्यासैः सर्वेषामानन्दं प्रकाशं चोपाजनयन् । तथा विद्यार्थिनश्च शुभया गीर्वाणवाण्या व्यवहर्तुं नैपुण्यसंपादनाय प्रतिप्रतिपदमुपन्यासान् कुर्वन्ति । तेषां शिक्षायै प्रौढा बहवः पण्डिता अपि मार्गं दर्शयन्ति ॥

परीक्षा

अतीते नवरात्रमहोत्सवसमये चतुर्दश विद्यार्थिनः विद्वत्परीक्षायामुत्तीर्णाः । वार्षिकपरीक्षायां १५६ विद्यार्थिनः । तेषु ६० विद्यार्थिभिः पारितोषिकाहं आसन् ॥

अयमपरोत्र प्रमोद — श्रीमत्सु सचिववरेषु मिर्जामहाशयेषु शिवमग्नाप्रान्ते मचरत्सु तत्रत्या श्री॥ श्रीनिवासाचार्या श्री। मूगूरु कृष्णाचार्याश्च प्रतिवत्सर प्रवेशपरीक्षायामुत्तीर्णानां विद्यार्थिनामामन्त्र-पचविंशै रूप्यकै प्रोत्साह कुर्वन्तीति निश्चयो जात इति ॥

प्राग्दर्शनम्

दशभ्यो हायनेभ्य प्राक् १५० विद्यार्थिन आसन् । अद्य ३०० सन्ति । अस्मिन् दशके प्राचीनविद्वत्परीक्षायाः पूर्वभागे १३६ विद्यार्थिन उत्तरभागे १८६ विद्यार्थिनश्च उदतारिषु । अपिच नवीन-क्रमे—प्रवेशपरीक्षाया ३१ मध्यमपरीक्षाया ८९ उत्तमपरीक्षाया ३७ विद्यार्थिनस्समुत्तीर्णाः । तेषु ४७९ विद्यार्थिषु १९४ विद्यार्थिन एतत्पाठशालीया ॥

पूर्वं विद्यार्थिवेतनानि ६२४ आसन् । अद्यतु ८२५ कृतानि । विद्यार्थिनामायतनानि निर्मितानि । तेषु वैद्युतो दीपः प्रकाशते । वेदशास्त्रपोषिणासभा काचित् स्थापिता । धर्मशास्त्र मीमांसाशास्त्रयोः मुख्योपाध्यायस्थाने स्थापिते । वेदोपाध्याया अधिक-वेतनेन प्रोत्साहिता । आगम शास्त्रेषु पाठक्रम व्यवस्थापित । विद्यार्थिना लौकिकविज्ञानायाग्लभाषा देशभाषयो परिचय प्रकल्पितः । विद्वत्परीक्षायामुत्तीर्णानां विशेषपारितोषिकाणि पूर्वं चत्वार्यासन् । अद्य विंशतिः स्थापितानि सन्ति इत्ययं सारांश सर्वेषां श्लाघापदम् ॥

प्रेक्षका

अस्मिन् वत्सरे एतज्जनपदसदृशनाय समागतेषु महाशयेषु— श्रीमन्त पण्डितमदनमोहनमालवीया श्रीकृष्णाचार्यसरस्वतीस्वामिनः शर्मण्यदेशीया रुडाप आटोर महा महाशयाश्च इमां शालामलकृत्य उपन्यस्य च निरतिशयमानन्द समुदपादयन् ॥

अभिनन्दनम्

अत्र सर्वेषुपाध्याया श्रद्धयोत्साहेन च कार्याणि निर्वर्तयन्त-
त्सन्ति । तेन पाठशाला सम्यगभिवर्धत इति विश्वासेन ब्रूम ॥

अपिच सनातनधर्मसरक्षणाय बद्धदीक्षा संस्कृतभाषाभिवृद्धये
सकलान्युपकरणानि कल्पयन्त विदुषो विद्यार्थिनश्च बहुधा सभावयन्त-
वर्तन्ते श्रीमत्कृष्णराजेन्द्रसार्वभौमा ॥

ते हि महाराजा रजतमहोत्सवसमये वैदिकविद्वद्वराणामाशी-
र्वचनानि विनयेन म्बीकृत्य गभीरेण सहृदयहृदयाह्लादकेन भाषणेन
सर्वान् आनन्दयामासुरित्येतदेव सहज विद्वत्पक्षपात प्रकटयतीत्यल-
प्रपञ्चेन ॥

एव वेदशास्त्रसंप्रदाय पारिपालयद्वा प्रभुवर्येभ्य तेषा बन्धु-
भ्यश्च भगवान् सर्वेश्वर आयुरारोग्यैश्वर्याणि सन्ततमनुगृह्णात्विति सदा
प्रार्थयाम ॥ इति ॥

॥ श्रीः ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

प्रतिमासत्रय प्रकटीक्रियमाणा.

“ कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः ’

(ईशोपनिषत्)

सपुट-४]

जुलै १९२८

[साञ्चिका-३

श्रीकृष्णनृपोदयप्रबन्धे राज्याभिनन्दनं नाम
द्वितीयो भागः

सीमातीतदयाभिरामचरिता सामादिवेदस्तुता

सोमालकृतचारुखलमकुटा हेमाङ्कचेलोज्ज्वलम् ।

क्षेमायाहमहर्निश कुवलयश्यामाङ्गकान्तिच्छटा

कामारिप्रमदा नमामि सुमनोदामाभिरामां शिमाम् ॥ १

सा किञ्च कुर्यात्प्रतिभा कवीनामुदारनेतारमनामुवन्ती ।

न प्राभविष्यन्मुनिसिंहवाणी रघुप्रविरो यदि नाभविष्यत् ॥ २

आदर्शो राजचक्रस्य कवीना कल्पभूरुहः ।

सागरो गुणरत्नाना श्रीकृष्णो जयताच्चिरम् ॥ ३

युधिष्ठिरेणाध्युषित पुरा यत्ततः सुमालिप्रमुखैराधिष्ठितम् ।

सिंहासन यादववशसभवैरासादित कृष्णनृपोधितिष्ठति ॥ ४

स्थूललक्षैः महोत्साहैः कृतैर्मित्रवत्सलैः ।
 शुचिभिर्धर्मरुचिभिराधिष्ठेयमिदं नृपैः ॥ ५
 यदधिष्ठाय राजेन्द्र श्रीकृष्ण शास्ति मेदिनीम् ।
 अनेनैवास्य महिमा गुणवत्तापि सूचिता ॥ ६
 समग्रशक्तेर्नयकोविदस्य क्रियाविशेषोपचितैः प्रयत्नैः ।
 अनन्यपूर्वेव वसुन्धरेयमभूतपूर्वा श्रियमाबभार ॥ ७
 यशस्त्वधर्मेण नयेन लक्ष्मीं गुणप्रकर्षेण जनानुरागम् ।
 निजैजसा मङ्गलनामिता च लब्ध्वाऽपि तस्योत्तिष्ठेन चित्तम् ॥
 दिनेश्वरे चन्द्रमसि प्रकामविपक्षता कैरविणीनळिन्योः ।
 दृष्ट्वा न चान्यास्ति विपक्षता यत् तयोस्सधर्मा नृपति कथं स्यात् ॥
 यशसा धवळितहरिता नाम्ना कृष्णेन वपुषि गौरेण ।
 धवळरुणेन चक्षुषि चित्रेणैव प्रसाधिता वर्णा ॥ १०
 नानावर्णामोदैस्सुमनोभिस्सगत सुमस्तवकम् ।
 राज्यं च कृष्णनृपते करविधृतं भाति सौमनस्येन ॥ ११
 सूक्वोपान्तप्रसृमरमृदुस्मेरवक्त्रोममेय
 स्फारप्रेमप्रमुखसुगुणैर्विश्वविश्वासभूमि ।
 धर्मन्यायैरुपचितयशा रत्नसिंहासनस्थ
 स्फीतप्रीतिप्रकृतिराशिषद्राज्यमव्याहताञ्च ॥ १२
 इत्थं प्रजानां सुखसपदर्थं नित्यं समुत्साहवतो नृपस्य ।
 पञ्चाधिका सा शरदा दशद्वयी मुदा व्यतीयाय निमेषकल्पा ॥
 श्रियस्समग्रा इव नीतिकोविद सरो मराळा इव फुल्लपङ्कजम् ।
 मधुव्रतौघा इव पुष्पितद्रुम प्रजा प्रजानाथमभिप्रोदिरे ॥ १४
 सौराज्यमुदिता पौरा पञ्चविंशतिवत्सरे ।
 पूर्णे नृपतिमामन्नं चक्रिरे रजतोत्सवम् ॥ १५

तदित्थमनुभूतमनुश्रूयने च — एवमाराज्यभारवहनमापञ्चविंशति
 सवत्सर महताध्यवसायेन प्रसाधितराज्यमण्डल गुणानुरक्तनिखिलजन
 जेगीयमाननिजापदान दुष्प्रमहेन तेजसा त्रयम सकलतेजस्विना
 कुवलयाल्हादकसुवृत्तमण्डलतया द्वितीय राकाचन्द्रमस लोकसवनन
 रूपसपदा तृतीयमाश्विनो जन्मनाऽभिधेयेन च चतुर्थ यदुराजकुल
 सभवाना अतिमानुषशक्तिमत्तया पञ्चम चतुर्दिगीशाना परार्थसाधक
 सकलगुणतया षष्ठ पञ्चमहाभूताना आज्ञाविधेयनिजचक्रतया सप्तम
 मगरादिषट्चक्रवर्तिना विशुद्धनिजचरितमहिम्ना अष्टम मसर्षाणां
 पुण्यश्लोकतया नवममष्टवसूना धनदम्पृहणीयविभवतया दशम
 नवनिधीना शत सुकृतकर्मभि सहस्रमायुषा अमल्येयमपि गुणग्रामै-
 रग्रगण्य निखिलोर्वीपतीना माननीय महात्मना शरण्य सकलजनाना
 वसुधराधुरधरमेन अगस्त्यप्रमुखा महर्षयो लक्ष्मणानुचर श्रीरामचन्द्रमिव
 सकलगुणगणाभरणेन प्रत्याक्षितनिखिलदेशराज्यतन्त्रेण नैसर्गिकवात्सल्य-
 विहितदेशान्नतिकार्यसचिवेन श्रीमता विख्यातयशसा श्रीमत्कण्ठीरव
 नरसिंहराजाभिधानेन युवराजपदाङ्कितेन निजानुजन्मना समुपास्यामान
 श्रीमन्त महाराजाधिराज श्रीकृष्णरोजन्द्रमुपश्लोकयितु सभूय निखिलपौर
 जानपद देशीया महाजना रजतमहांसव व्यपदेशेन विहितानेक
 महीरुहारोपण शक्रध्वजोन्नमनादि चिरम्यास्तुसौराज्यप्रत्यभिज्ञाननिदानै
 क्रियाविशेषैरापूर्थ सकलदेशावकाश मोपायना विहिताञ्जलया विनीतवेषाः
 प्रतीक्षाचक्रिरे ॥

साष्टिकोदकफलप्रदाभिराशीर्भिराज्ञायपदोदिताभि ।

सवर्धयन्तो नृपतिं द्विजाग्रया नवोदय सूर्यभिवोपतस्थिरे ॥ १६

भक्त्या गृहीत्वाऽऽक्षनशेषमाला सम्कारवत्या स गिरा जगाद ।

विप्राशिषा पात्राभिद कुल नस्तेनास्मि धन्योहामिति द्विजाग्रयान् ॥

आमन्नय विप्रान् विनयेन हेमपादाङ्कसिंहासनमारुरुक्षुः ।

राजेन्द्रनैपथ्यसमिद्धनेजास्सभामयासीदनुयायिवर्गे ॥ १८

रत्नप्रभाकर्बुरिते मृगेन्द्रपीठे निषण्ण सुरराजकल्पम् ।

प्रणम्य बद्धाञ्जलयः प्रजास्ता व्यजिज्ञिपन्निथमुदारवाग्भि ॥ १९

श्रीमन्महाराज राजपरमेश्वर प्रौढप्रतापाप्रतिमवीराद्यनेक बिरुदा-
ङ्कित निखिलराज्यतन्त्रप्रवीणसस्तूयमाननिजचरित निर्व्याजवत्सल
श्रीमन्नाल्वडीत्युपपदभूषिताभिषेय श्रीमन्महाराजेन्द्रतनूभव श्रीमन्
श्रीकृष्णराजेन्द्र महास्वामिन् । एकोनपञ्चाशदुपस्कृताष्टशताधिकसहस्रव-
त्सरपरिमिते शालिवाहनशके प्रभवनाम्नि सवत्सरे मासि श्रावणे तिथौ च
दशम्या सेन्दुवासराया श्रीमत्कृपापरिपोषितै सौराज्यसौख्यानुभवप्रमुदितै
नानाजातिमतप्रजामण्डलप्रतिनिधिभिस्साविनय साञ्जालिबन्ध सभक्त्युन्मेष
समर्पिता कृतज्ञताप्रदर्शकरजतमहोत्सवाभिनन्दनव्यञ्जिका विज्ञापन-
पत्रिका संप्राभृताचेय श्रीमतो महाराजस्य दिव्यचित्तावधानविषयिणी
भूयादिति सप्रार्थयाम ॥

महाराजाधिराज दिव्यानुभावचरित । तत्रभवत श्रीमतः कुलपरं
परागतदिव्यमहिमान्वितरत्नसिंहासनसमारोहणसुमुहूर्तमारभ्य दुर्मरराज्य-
भारीनैवेहणनिस्तन्द्रस्य भूयिष्ठकल्याणपरपरोपचिता पञ्चविंशतिवत्सराः
अद्यतनसुमुहूर्तस्य समतीता । भूयस्यास्मिन् समयान्तराले निखिलप्रजा
क्षेमाभ्युदयैकप्रवणमानसेन महास्वामिना प्रसाधितानि ग्रामनगरजनपदानि
समुत्तेजितानि सपदभिवृद्धिसाधनकर्माणि । प्रजाश्च विनयनभरणादिभि-
स्सवर्धिता समप्रविता विबुधाः समानिताः महाजनाः ससेविता महात्मानः
व्यपनीतव्यालदस्युभयानि कृतान्युपवनानीव महाकाननान्यपि सेतुबन्धा-
दिभिः गृहदीर्घिकीकृतानि दुष्प्रतराण्यपि जलदुर्गाणि निरीतिबाध
प्रवर्तितो बणिक्पथः पूर्तकर्मभि पूरितेय वसुधरा प्रवर्तितस्सकलश्रेयस्करो

धर्मपथ' नीतेय वसुधा राजन्वर्ताति श्लाघापद महीतत्वाधिष्ठित विष्टपमिव
परिष्कृत राजधानीपद समुपदाशित दैवदोर्बल्य पुरुषकोरेण सत्यानु-
षंगसमार्जितानि दिव्याद्भुतानि निजचरितानि धराफलके सुवर्णाक्षर
लेख्यानि सवृत्तानि समार्जित कल्पान्तम्यायि विशुद्धिविशद यश ।
एवमादिभिरानन्तरमुल्लभै क्रियाविशेषोपचितैः भूरिफलोदकैः प्रभुशक्ति
सभृतैस्सुकर्मभिः संप्रीणिताः निखिला प्रजा निखिलानन्दानामुपरि
वर्तन्त इति सानन्द व सावष्टम्भ च सानुर्नय च सभक्तिप्रकर्ष च
विनिवेदयाम ॥

निखिलराजचक्रचूडामणे महाप्रभाव' भवद्गुणग्रामानुरञ्जितहृ-
दय श्रीमान् सार्वभौमोपि क्लृप्तोऽप्यादीयमाने करे सार्धदशलक्षपरिमित
द्रव्याणां प्रत्यर्पणेन श्रीमन्त तत्रभवन्त सभावयामामेति महदिदं
प्रहर्षस्थानमस्माकम् । क वा न वशयन्ति भवद्गुणग्रामा स्वभावपेशला

राज्यतन्त्रधुरधरमहाजनोपचीयमानविभवानां निखिलराज्यानामि-
दमेवाददर्शभूत राज्यमिति विबुधजनजोषुष्यमाणश्लाघापदस्य भवदीय
राज्यतन्त्रकौशलमेव निदानमिति महदवष्टम्भपदमस्माकम् । किञ्च निरति-
शयोद्गारप्रकृतिना महास्वामिना प्रजाकार्येषु प्रजा एव स्वतन्त्रयितु
प्रतिष्ठापितासु प्रजाप्रतिनिधि राज्यशासनाविधान पौरसामाजिककार्य
निर्वहण सपदभिवृद्धि प्रमुखामु समिनिषु नियुक्तानां सर्वतोऽप्युपचीय-
मानबुद्धिकौशलानां प्रजानां स्वकतेव्यतापरिज्ञान देशसेवासक्ति-
राजनीतिविज्ञान सर्वभूतमन्त्री परोपकृतिरूपशक्तिरुत्साहस्सचतिरात्मसयम
सतोष इत्यादयो महापौरुषिका गुणात्सम्पन्ते । तेन सर्वत्र सुखसप्तफला-
न्यमृतकल्पान्यनुभूयन्ते सर्वभिः प्रकृतिभिः । यच्च राजधर्मप्रजाधर्मयोर-
विनाभावस्सबन्धः परम्परमभिन्नार्थत्वं च प्रतिपादित पूर्वाचार्यैः तदिदं

राज्यतन्त्रनिष्णातमतिना महास्वामिना समुपदिष्टमन्येषामपि सर्वेषां भूभृताम् ।

महाराजाधिराज स्फीतकीर्ति ! सविभागशील पुरुषविशेषाभिज्ञ न्याय धर्मानुवर्तिन दीनानुकम्पिन महासत्त्वनिकेतन वशिन वसिष्ठमिव निस्पृह जनकमिव सर्वधर्मज्ञ मनुमिव भृतलोक भरतमिव सर्वलोकप्रिय राममिव तत्रभवन्त भवन्त पालयितारमामाद्य फलितमस्मद्भागधेयेनेति नितरा प्रमोदामहे । अपत्यानिर्विशेष परिपोषिता निरीतिबाध सर्वाधिता वयमिह कृतमहोपकृतये सर्वसत्त्वदयावते निर्व्याजवत्सलाय श्रीमते सानुषगाणि कल्याणान्याशासाना भाविसुवर्णरत्नोत्सवादिषु सेवावसर प्रतीक्षमाणाः सपरिच्छदस्य श्रीमतो महाराजस्य दीर्घायुरारोग्यसप्तसुखसमृद्धिमभिम-
तार्थसिद्धिं च निरन्तरमनुगृह्णातु निखिलशक्तिधर पराशक्तिमित्र परमेश्वर इति सभक्तिप्रकर्षं प्रार्थयाम ॥

सतर्पमाविष्कृताराजभक्तिप्रकर्षहर्षाश्रुपिण्डकण्ठा ।

विज्ञाप्य तस्मै नृपपुगवाय समर्पयामासुरुपायनानि ॥ २०

तदनुराजाधिराज श्रीमान् कृष्णराजेन्द्रोऽपि नैसर्गिकराजभक्ति समार्वाजितान् निखिलनैगमान् प्रसादमधुरया दृशा समभिवीक्ष्य प्रसन्नमुखरागानुमेयसहजवात्सल्य नवजलधरारावगम्भरिणे सुधीरेण स्वरेणानन्दयन् विबुधजनसभावनीया प्रसन्नगभीरार्थामिमा वाणीम-
भाषीत् ॥

अस्मदत्यन्तप्रिया महाशया महाजना, सविशेषमुपदर्शित राजभक्तिभि, तत्रभवद्वि, समर्पितामिमामस्मद्विषयकप्रीतिगौरवाद्यभि-
व्यञ्जिकामभिनन्दन विज्ञापनपत्रिकामभिनन्द्य नितरा प्रमोदामहे । अस्या सादरमुपदर्शिता भवदीया भक्ति श्रद्धा च महान्तमानन्दमुपजनयत्य-

स्माकम् । भक्तानुकम्पिना भगवता यथेद सर्वसपन्निकेतन महीश्वराज्य-
मस्मदर्थे प्रतिपादितम्, तथैवानुकूला शुचयो दक्षिणा दक्षाश्च प्रजा
अस्मत्सहोत्थायिन्य प्रतिपादिता । यदिदमस्मत्पालित राज्य निखिल
राज्यानामादर्शभूतमिति, यद्वैव समग्रशक्तिभि परमवत्सलै सार्व-
भौमैरुपदर्शित परम पुरस्कार इति च तस्यार्थस्य सकलस्यापि
युष्मदीय राजभक्तिपूर्वक साहाय्यकरणमेव निदानम् । एवमेव पुरस्तादपि
परम्परमभिन्नाभिसधिभिरस्माभिरुपक्रान्तेषु वार्तादण्डनित्यादिजनजविन
सुखहेतुषु कर्मसु सौकर्याभिवृद्धये प्रयतमानै समूयैव सकलप्रजा
समानभोग्यमिद राज्यमभिनवक्रमसमुपचीयमान सकलराज्यानुकारि च
यथा मपत्यते तथाऽस्माभि प्रभुमन्त्रोत्साहशक्तिनिर्व्यूढकार्यारम्भैरप्रमादेन
वर्तितव्यम् । महत्यस्मिन् कार्यभियोगे निखिला प्रजा विभिन्नवर्णाभि-
रुचयोपि नियतैकजन्मभूमयस्सहस्रवर्धिता सोदरा इव सुखसविभागार्हा
इत्यनुसधाय विन्यातैरभिजातैर्महाजनेन समुचितसहायदानेन दुर्बला
सर्वर्धनीया इत्ययमभिसधिरस्माकम् । वर्षेष्णवो भविष्यत्प्रजाप्रधाना
युवानोपि सर्वत्र सहोदरसौहृद प्रजाधर्म च सम्यग्विजानाना सकल
विसम्भभाजनेन सकल प्रजामण्डलेन सहैककार्यारम्भा अस्मदत्यन्ताभि-
मतजन्मभूमिश्रेयस्साधनाय प्रयत्नरत्नित्याशामहे ॥

माननीया महाशया ' अन्यदिदमस्माकमत्यन्ताभिमतमावेदनीय-
मिदानीम्—सकलप्रजाना नित्योपकृतिसाधनेषु स्वाश्रयप्रीतिमत्सु निज-
व्यथानिवेदनाक्षमेषु प्राणिषु सर्वदा दयालुभिर्भाव्य सर्वैरिति ॥ आर्सेहा-
सनारोहणमद्यावधि सततमस्मत्प्रियतमप्रजामु सर्वेपि सुखेन समेषन्तामिति
प्रवर्तितेस्मिन् राज्याभारे यावदायुस्तदेकलक्ष्यसाधनाय स्थिरोत्साह सकल्प
विवेक सहायमपदुपबृहिता शक्तिमस्माकमनुगृह्णातु दयामयो भगवा
निति सतत प्रार्थयामः । इति सदिश्य सर्वान् सबहुमानमानन्दयामास ॥

- अस्मद्राज्ये सुखेनैव समेधन्ता प्रजा इति ।
 शासन घोषयामास राजा मुमुदिरे प्रजा ॥ २१
 गवामदोह शुक्वन्धमोक्ष सदानितानामपि मोचन च ।
 विश्राममुक्ष्णा भृतिमाश्रिताना समादिशत्कृष्णनृप प्रमोदात् ॥
 द्वीपादिगन्तादपि सागरान्तात् क्षितीन्द्रकल्पा' क्षितिपालकाश्च ।
 गुणानुरक्ता नृपतेरमुष्य चक्रुर्महार्घाण्यभिनन्दनानि ॥ २३
 सौराज्यप्रत्यभिज्ञानजैत्रशक्रध्वजोन्नते ।
 चक्रे मूलशिलारोप स्वाभ्युत्थानमिव स्थिरम् ॥ २४
 आनन्दादिह ननृतु प्रजास्समग्रा'
 समोदात्करितुरगा अपि व्यनृत्यन् ।
 तच्चित्र मरुदवधूतशास्त्रिबाहा
 प्रानृत्यद्धरणिरपि प्रहर्षिणीव ॥ २५
 तस्मिन्नेव दिने सर्वराष्ट्रभागे नृपोत्सवः ।
 प्रमोदनिर्भरै पैरैर्निर्ममे विभवोत्तर ॥ २६
 कल्याणनगरे सर्वसपत्केन्द्रे सुखाकरे ।
 अन्वाज्ञासीदुत्सव स्व प्रजाभिरनुनाथित ॥ २७
 अभ्यर्थितः पुरजनैर्नगरोत्सवाय
 भक्तिप्रकर्षविवशैरुररीचकार ।
 नित्यानुरक्तजनताहृदयानुवृत्ति
 नैसर्गिकी खलु महत्सु दयामयेषु ॥ २८
 अत्रान्तरे कविवचोविभववतिवृत्त
 सपत्समृद्धनृपवर्यपरिच्छदानाम् ।
 प्रास्थानिकस्समभवत्पटहप्रणाद
 व्यामिश्रनालिकरव' प्रतिबोधनाय ॥ २९

तत्र प्रस्थानभेरीरसितनिशमनोत्सिक्तपादातवर्गे
 राक्रान्तोदात्तवल्गुत्तुरगनियमनायस्तसादिप्रकाण्डै ।
 माद्यत्कुम्भीन्द्रकुम्भाक्रमणपटुतराधोरणाग्र्यैस्समन्तात्
 आक्रान्ते राजमार्गे समजानि जनतासभ्रमोत्थ प्रमोदः॥ ३०
 नृत्यतुरङ्गमुखराहतिदीर्यमाणसर्वसहातलसमुत्थितपासुजालैः ।
 व्योम्निप्रभाकरकराहतिवारणायव्यानद्धपाण्डुरविताननिभैर्व्यराजि॥
 तुरङ्गमातङ्गशताङ्गसघसघट्टितोर्वीतलरेणुजालै ।
 आक्रम्य मूलान्याधिरुह्य सालानारुह्य शैलान् दिवमाललम्बे ॥
 पट्टोपधानतपनीयकुथाभिराममावद्धरत्नसवितानसुवर्णडोलम् ।
 आस्थाय भद्रगजमूर्जितवैभवेन प्रावीविशत्पुरवर पुरुहूतकल्प ॥
 महोदयाद्रिप्रतिमे गजेन्द्रे निजानुजामात्ययुतो नरेन्द्र ।
 अन्वासितो व्योम्नि पुनर्वसुभ्या शशीव नेत्रोत्सवकृच्चकाशे॥ ३४
 पुरन्ध्रश्च पौरवर्गाश्च पूर्णकुम्भफलादिकम् ।
 पुरत पार्थिवेन्द्रस्य प्रगृह्य प्रययुर्मुदा ॥ ३५
 छत्रद्वन्द्वं शशधरानिभ चामरे रत्नदण्डे
 हेमच्छायाशबलविरुदाः काहळीशङ्खयुग्मम् ।
 वीणावशीपटहसुरजा वन्दिनो मागधाश्च
 श्रेणीभूता नृपतिपुरतो दर्शनीया विरेजु ॥ ३६
 सक्रायमान प्रचलद्वितान सकेतुमाल चितपुष्पमालम् ।
 स राजमार्गे विहतोपसर्गं विवेश राजा सुरराजतेजा ॥ ३७
 श्रुतिमिळितसमभ्रातोद्यसभिन्नसप्त
 स्वरसमुदितषड्जग्रामगम्भीरघोषैः ।
 ललितमधुरगीतैर्वदिना ताररावैः
 भुवनमिदमशेष नादभूयिष्ठमासीत् ॥ ३८

| | |
|--|----|
| उद्दीपकश्चसनवेगविवृद्धशक्ति सधुक्षितै स्फटिकभाजनविस्फुराद्भिः । दीपैश्शशाङ्कशतसुन्दररश्मिमालै ज्योतिष्मतीव वसुधा नितरा रराज ॥ | ३० |
| आग्नेयचूर्णपरिपूरितचक्रनिर्य ज्ज्वालाजटालघुटिकास्फुटनोज्जिहानैः । हरिप्रवालहारिनीलसुवर्णकल्पै कीर्णै स्फुलिङ्गनिकरैर्गगन दिदीपे ॥ | ४० |
| प्रत्यूषमारुतदरोच्छ्वसितप्रसून जालाभिरामशुभलाजचयै कुमार्यै । अभ्यर्चयन्नुपवर मृदुमुग्धहास व्यामिश्रणद्विगुणसमृतकान्तिरम्यै ॥ | ४१ |
| नीराजनाविधिषु राजतहेमपात्र मध्याल्लसद्गुचिरदीपशिखा स्फुरन्ती । शुभ्राग्रपङ्क्तिषु कनकलघौतैरम्य सौदामिनीव वसुधेन्द्रपुरश्चकाशे ॥ | ४२ |
| मयि प्रसन्नो नृपतिर्मयीति ननन्द सर्वोपि जनस्तदानाम् । रत्नाकरस्येव नदीशतेषु विमाननाम्न हि गोमुरस्य ॥ | ४३ |
| इत्थं समग्रविभवैः पुरवीथिकासु सोषायनैः प्रणतपौरजनैर्नरेन्द्रः । अभ्यर्चितः पृथुयशा विचचारसर्वा नानन्दयन् मधुरहासविलोकनाद्यैः ॥ | ४४ |
| इदमसुलभमन्यैर्भूमिपालैर्धराया नृपतिककुदमेष प्राप्तवान् यन्महत्त्वम् । | |

| | |
|--|----|
| निजचरितविशुद्धि सत्यधर्मानुरक्ति । | |
| प्रभवति जनतासु प्रीतये गौरवाय ॥ | ४५ |
| नात्राधिकोक्तिर्नोत्प्रेक्षा नेय हि कविकल्पना । | |
| गुणैकदेशकथन गुणिनोस्य महीपते ॥ | ४६ |
| लभ्येत कोपि रसिको नवकाव्यलक्ष्मी | |
| लीलासु चेत्कवयितुर्ननु लाभ एष । | |
| एक स एव मधुकृन्मधुसारवेदी | |
| त्याविष्करोति कुसुमानि महीरुहोऽपि ॥ | ४७ |
| इद श्रीकृष्णराजेन्द्राचित्रचारित्र्यवस्तुकम् । | |
| मुब्रह्मण्यन्य कृतिषु जीयाद्राज्याभिनन्दनम् ॥ | ४८ |
| कनकमणिकिरीटोद्भासिनीलालकान्ता | |
| शशिरुचिरदुकूल फुलकल्हारहस्ता । | |
| स्मितरुचिरमुखेन्दुर्हन्तिहस्ताग्रविभ्र | |
| त्सुराभिकुसुमदामा सा रमा सन्निवत्ताम् ॥ | ४९ |
| निरीतिबाध यत्कर्म कुर्महे श्रुतिचोदितम् । | |
| तस्य षष्ठाशभोक्ता म्याद्भोक्ता श्रीकृष्णभूपतिः ॥ | ५० |

इति श्रीकृष्णनृपोदयस्समाप्तः ॥

कालिदासोपज्ञरसज्ञता.

४-१-४६ तमपुटात्

अन्यच्च त्रयोदशे सर्गे

गर्भे दधत्यर्कमरीचयोस्माद्विवृद्धिमन्त्राश्रुवते वसूनि ।

अविधन वहिरसौ विमर्ति प्रह्लादन ज्योतिरजन्येन ॥

इति श्लोकस्यार्थं निगूढशास्त्रार्थप्रसन्नगम्भीर एवाभाति । यथा—रावण-
वचनान्तरं पुष्पकविमानमारूढवता रामेण सीतामुद्दिष्य सेतुनिर्माणवि-
हितशोभाशालिसागर प्रदर्शयता प्रतिपादित सागरस्य स्ववश्यमहत्तरसगर
पुत्रस्ननाद्गाम्भीर्यं, स्वकृतसेतुसबन्धाच्च लोकोत्तरत्व, सर्वलोकोपकार-
कवृष्ट्यर्थं सूर्यरश्मीनां अम्भयगर्भाधाने उपादानत्व सागरस्यैव नान्य-
स्येति “याभिरातित्यस्तपति ताभिर्पर्जन्यो वर्षति, आदित्याज्जायते
वृष्टि वृष्टेरन्न ततः प्रजा ” इति च श्रुतिस्मृतिसिद्धस्य सूर्यरश्मिगत-
महामहिम्न उपोद्भूतक सामुद्रमम्भ इत्यादिदुरूहोपि विषय कविना-
न्यरूपि ॥

अयमेव विषयः दशमसर्गेऽपि समुचितसरसदृष्टान्तानुगुण्येन प्रत्य-
पादि । कथम्—

ताभिर्गर्भं प्रजामूत्यै दध्रे देवाशसभव ।

सौरीभिरिव नाडीमिरमृताख्याभिरम्भयः ॥

इति । अत्रसौरीणां दीप्तिना सहस्रसख्याकानां मध्येकाश्चन अमृताख्या
नाम्न काश्चन वृष्टिसर्जनार्थाः काश्चन मुक्तानां ब्रह्मलोकप्रापका
काश्चन यजमानदीयमानपुरोडाशपय प्रमृत्याहुतिपापका सर्वाश्च पवित्रा
स्वावरजगमात्मकलोकोपकारशीलाः, इत्यादि. शास्त्रैकगम्यो विषय
वेदभागे प्रसिद्धः ॥

तासा शतानि चत्वारि रश्मीना वृष्टिसर्जने ।
 शतत्रय हिमोत्सर्गे तावद्गर्भस्य सर्जने ॥
 आनन्दाश्च हि मेध्याश्च नूतना पूतना इति ।
 चतुश्शत वृतिवाहा तास्सर्वा अमृता स्त्रिय ॥
 इति प्रमाणान्तरेणापि अयमर्थस्ससिद्धो भवति ॥
 अत्रैवसर्गे—प्रयागे गङ्गायमुनासङ्गमवर्णनावसरे —
 क्वचित्प्रभालेपिभिरिन्द्रनीलै मुक्तामयी यष्टिरिवानुविद्धा ।
 अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिदीवरैरुत्खाचितान्तरेव ॥

इत्यारभ्य—

कचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
 पद्यानवद्याङ्गि विभाति गङ्गा भिन्नप्रवाहा यमुनातरङ्गै ॥
 इत्यन्तेन श्यामलयमुनाप्रवाहसभिन्नशुद्धगङ्गाप्रवाह क्वचित्प्रदेशे
 इन्द्रनीलमणिसाचितमुक्ताहार इव, क्वचिदिन्दीवरपुष्पगुभितसितपङ्कज-
 मालेव, क्वचिच्चकादम्बकदम्बककरम्बितराजहसानिवह इव, क्वचित्तम
 कर्बुरितचान्द्रकलेव, क्वचिच्च कृष्णोरगभूषितभस्माच्छन्नमहेश्वरायितनुरिव
 च चित्रविचित्रा राराजतीति कविर्वर्णयामास ।

तथा—

समुद्रपङ्क्तयोर्जलसन्निपाते पूतात्मनामत्र किल्बिषिक्रतु ।
 तत्त्वावबोधेन विनापि भूय. तनुत्यजा नान्ति शरीरबन्ध. ॥

इति पद्येन—

सितासिते सरितो यत्रसंगथे तत्राप्लुतासो दिवमुत्पतन्ति ।
 एवैतन्वाअविमृजन्ति धीरास्ते जनासो अमृतत्व भजन्ते ॥
 इति बहुचमन्त्रार्थोपि सगृहीत । “ब्रह्मविदामोति पर,
 तरतिशोकमात्मवित्, ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति,” “तमेव विद्वानमृतइह

भवति ” इत्यादिश्रुत्यनुसारात् ब्रह्मात्मकतत्त्वज्ञानेनैव मुक्तिरिति वैया-
सिकसिद्धान्त सत्वेऽपि—

बहूना जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मा प्रपद्यते ।

वासुदेवस्सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ ॥

इत्यादि गीतापर्यालोचनयाऽपि, अनेकजन्मसाध्यमुक्ते गङ्गा यमुना
सगमस्नानमात्रादभिव्यक्तत्वकथनेन सद्यो मुक्तिस्तनुत्यजा सभवतीत्यादि
श्रौतोऽप्यर्थ सुगमतया प्रदृष्टे महाकविना ॥

तथा—महेश्वरपुरुषोत्तमादि शब्दा विष्णुशिवादिसाधारणा वा
नवा इति सिद्धिहानाना केषाचिदज्ञाननिवृत्त्यर्थ

हरिर्यथैक पुरुषोत्तम स्मृतः

महेश्वरस्त्रयम्बक एव नापर ।

इत्यादिना पौराणिकलोकसम्मतः हरिरेव पुरुषोत्तम, त्रयम्बक एव
महेश्वरो नान्य इत्यादिक रूढार्थ औचित्येन श्लोके न्यभान्सीन्महाकवि ॥

तथाषोडशे सर्गे—स्वदु खनिवेदनार्थ स्वप्ने आगतामयोध्याभि-
मानिनी स्त्रीवेषधारिणी देवतामुद्दिश्य कुशम्य उक्तिरूपे

का त्व शुभे कस्य परिग्रहो वा किं वा मदभ्यागमकारण ते ।

आचक्ष्व मत्वा वशिना रघूणा मन परस्त्रीविमुखप्रवृत्ति ॥

इति श्लोके रघुवश्याना राजन्याना “ स्वप्नेप्यन्यवधूकथाम् ” इति
न्यायानुसारेण परस्त्रीपरिग्रहवैमुख्य प्रथमतः प्रतिश्रुत्य ततो वदितव्य
वदेत्युक्त्या रघुवशस्थाना राज्ञा स्वाभाविक वशित्व सार्वजनीनमित्यभि-
व्यञ्जितम् ।

तथा अष्टादशेसर्गे—

पितुस्समाराधनतत्परेण पुत्रेण पुत्री स यथैव तेन ।

पुत्रस्तथैवाधिकवत्सलेन स तेन पित्रा पितृमान्बभूव ॥

इतिश्लोकार्थं , तत्रत्योऽलकारश्च चमत्कारितामुद्गिरति । तथाहि, लोके यः पितृशुश्रूषातत्परस्स एव पुत्रः , यश्चात्मजे अतिशयप्रीतिमान्सः पिता, इति व्यवस्थास्वारसिकी । प्रकृते क्षेमधन्वदेवानीकयोः पिता-पुत्रयोरनयोरेव पितृत्वपुत्रत्वफलं प्रशस्तमिति श्लोकस्य सर्पिडितोऽर्थः । अत्रच पितापुत्रयोः कर्तव्यं लोकमर्यादामाश्रित्य सम्यक् निरूपितम् ॥

अलकारस्त्वर्ताव रमणीयः । तथाहि—अत्रत्या उपमा व्यत्यस्त-धर्मिर्बिंबप्रतिबिंबिका, अस्या च पुत्रः पिता चेत्युभौ उपमेयोपमानभूतौ धर्मिणौ पुत्रपित्रोस्तावेव व्यत्यासेन पितृमत्वं पुत्रित्वमिति साधारणधर्मकोटिप्रविष्टतया उपात्तौ । तयोश्च बिंबप्रतिबिंबरूपसाधारण्यापादको धर्मः प्रशसाबोधकाभ्यां मनुविनिभ्यां समर्पितः प्राशंस्य पुत्रस्य प्रशस्तपितृमत्वं पितुश्च प्रशस्तपुत्रवत्त्वं च बिंबप्रतिबिंबभावकरवितवन्तु-प्रतिवस्तुभावेन साधारणधर्मो भवति । एवञ्च धर्म्युपमायां यः पितापुत्रस्योपमानः स एव पिता तस्य तदुपपादके बिंबप्रतिबिंबनिर्देशे उपमेयस्सम्पद्यते इति लक्षणस्य सगमनं सुश्चिष्टम् । यद्यपि पितापुत्रयोः परस्परनिरूपितसादृश्यस्य भानादुपमेयोपमेति संशयितुं शक्यते । यथा पुत्रः पितृभक्त्या प्रशस्तः , तथापितापि पुत्रवात्सल्येन प्रशस्तः इत्यर्थस्य लाभेऽपि तृतीयसदृशव्यवच्छेदरूपस्य मुख्यफलस्याभावाच्चोपमेयोपमा । तृतीयसदृशव्यवच्छेदफलकवर्णनाविषयीभूतं परस्परसादृश्यमुपमेयोपमा इति तल्लक्षणादिति संक्षेपः ।

एवं ‘ वागर्थविबं सपृक्ता ’ इतिश्लोके पूर्णोपमेति प्रास्त्विति । तत्र साधारणधर्मश्चानुगामी, नित्यसंबधित्वरूपः इति चित्रमीमांसायां वागर्थविति श्लोके औत्पत्तिकस्तु शब्दस्याथेन संबध इति वागर्थयोः नित्यसंबधित्वं प्रसिद्धम् । उमामहेश्वरयोरप्यनयोः न पृथग्भावश्चन्द्र

चन्द्रिकयोरिवेति तत्प्रसिद्धम् । तथाच नित्यसबधित्वरूपोऽत्र अनुगामितया निर्दिष्ट इति च प्रतिपादित दीक्षितवर्यैः ।

अत्र किंचिद्विचार्यते । अत्र नित्यसबधित्वरूपस्य धर्मस्य एकरूपेणोभयान्वयाभावात् कथमनुगामित्व धर्मस्य ? यतोऽब्रवागर्थयो-
वाच्यवाचकभावरूपसबध, पार्वतीपरमेश्वरयोस्तु सयोगरूप इति सबधभेदात् । नच सबधतावच्छेदकभेदेन अनुगामित्वस्य दौर्लभ्यात् सबधत्वेन रूपेण अनुगामित्व विवक्षणाच्च दौष इति वाच्यम् । येन रूपेण यस्य धर्मस्य उपमानगामित्व तेनैव रूपेण तस्य धर्मस्य उपमेयगामित्वमिति अवश्यमनुगामित्वलक्षण निर्वक्तव्यम् । अन्यथा उपचारस्य विधान्तरत्वकथनमसमजस स्यात् । तथाहि —

उद्भवन्तमुदिताचिष ततो भानुमन्तामिव हेमभूभृत ।

पकजैरिव कुमारमीक्षणे विस्मयेन विकचैः पपुर्जना ॥

इत्यत्र विकासरूपो पुष्पधर्म ईक्षणेष्पचारित इति हि वक्तव्यम् । तच्च न श्लिष्यति मुख्यलक्ष्योभयसाधारणविकचत्वस्योभयत्रापि सत्वात् । उपचारसंभवार्थं पुष्पेषु विकचत्व विजातीयपत्रविभागवत्वरूप नेत्रेषु-
चोपचाराग्निमेषाहित्य तत् इत्यभ्युपगतव्यम् । एव च एकेन रूपेण विकचत्वस्याभावात् उपचारस्य विधान्तरत्व आलंकारिकैरुरीकृतम् । प्रकृते वागर्थविवेति श्लोके संपूक्तावित्यत्र येन रूपेण सबधस्य वागर्थयोर्बोध न तद्रूपेण पार्वतीपरमेश्वरयोरिति कथमनुगामित्वमत्र वक्तुं युक्तम् ॥

ननु सबधत्व प्रकृते सबद्धाविति धीसाक्षिकः सयोगादिसाधारणो धर्मविशेष । एवच पर्यवसितधर्मयोर्यत्र एकधर्मावच्छिन्नत्व स एव अनुगामिभ्यर्थः । प्रकृते वाच्यवाचकभावसंयोगसंबधयोरेपि

सबधत्वावच्छिन्नत्व वर्तत इति यद्यभ्युपगच्छसि तर्हि विस्मयेनविकचै-
रित्यत्रापि मिथ सयोगजनकक्रियाराहित्य उभयत्रापि साधारणमिति
तद्दोषतादवस्थ्यम् ॥

किंचात्र अनुगामिधर्मस्य कीदृशेन उभयसाधारणधर्मेणावच्छिन्न-
त्वममिलषित, न तावद्येनकेनचिद्धर्मेण, प्रमेयत्वेन रूपेण सर्वधर्माणां
साजात्यात् उपचार विबप्रतिविबभावादीना प्रकारान्तराणां प्रविल्या-
पत्ते । नापि द्रव्यत्वादिना तत्तद्धर्मेण, विबप्रतिविबभावस्थलेपि “पां-
ब्ध्योयमसर्पितलबहार ” इत्यादौ द्रव्यत्वरूपधर्मस्य हारनिर्झरोभयवृत्ति-
त्वेन अनुगामित्वापत्ति । नापि स्वजन्यशाब्दबोधप्रकारीभूतधर्मेण-
सभवति । “यान्त्या मुहुर्वलितकधरमानन तदा, वृत्तवृन्तशतपत्रनिभ
वहत्या ” इत्यादि वस्तुप्रतिवस्तु भावस्थलेपि अनुगामित्वापत्तेः ।
उदाहृतश्लोके वलनोद्धर्तनयोरभेदेन स्वजन्यशाब्दबोधप्रकारीभूतधर्मा-
वच्छिन्नत्वात् । नापि एकपदजन्यबोधप्रकारीभूतधर्मेणेतिवक्तुं शक्यते ।
वलनस्य एकपदजन्यबोधप्रकारत्वसत्वात्तद्दोषाऽनपसरणात् । नच भिन्न-
वृत्त्येकपदजन्यबोधप्रकारीभूतधर्मेण सभवति । उक्तस्थले वलनोद्धर्तनयो-
रवलितोद्धृतपदाभ्यां विबप्रतिविबभावापन्नकधरावृतोभय विशेषणत्वेन एक
स्यैव पदार्थस्योपस्थापनाद्वलनस्य न भिन्नवृत्तित्व । भिन्नत्व च स्वाव-
च्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्व । “वागर्थाविवे”ति श्लोके तु वाच्य-
वाचकभावसयोगयोर्भेदः । तदुभयत्र च सबधत्वमिति च वाच्यम् ।
सयोगादेरपि सबधत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकपरस्परप्रतियोगिकभेदविरहात्
भेदप्रतियोगितावच्छेदकसयोगत्वादेश्च एकपदजन्यबोधप्रकारत्वाभावाच्च ।
एवच वागर्थाविवेसपृक्तावित्यत्र अनुगामित्वनिर्वचन दुःशकम्, इति
चेदत्राहुः ॥

धर्मवृत्तिसामान्योपस्थापक पदैक्य एवानुगामित्व इति ज्ववस्था

धर्मत्व च तत्पदनिर्वाहधर्मतावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्व । अतो बहूना मिश्रणस्थले नानुपपत्ति । विवप्रतिविबभाववारणाय एकेति सामान्यविशेषण देयम् । श्लेषस्याप्यनेनैव वारणं सम्भवति । ऐक्येति वस्तुप्रतिवस्तुभावनिरासार्थं दत्तम् । तत्र धर्मैक्येऽपि पदभेदाद्वारण । अत्र धर्मस्यैकत्वे एकस्यैव धर्मतापर्याप्त्यधिकरणत्व, अनेकत्वे द्वयोरेव-
इत्यादिदुरूहशास्त्रार्थसमुल्लासयोग्य अनवद्यपदद्वयपद्यनिर्माणचातुरी लो-
कातिशायिनी महाकवेरिति सुधियो विभावयन्तु ॥ एव—

क सूर्यप्रभवो वशः क्वचाल्पविषया भतिः ।

तितीर्षुर्दुस्तर मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥

इति श्लोकेऽपि पूर्वार्धे महत्तरगुणगणनयिसूर्यवशवर्णनस्य परिमितयत्कि-
चित्पदार्थविषयकबुद्धिवैभवस्य च कद्वेयनानानुरूप्यं प्रदर्शितमिति विष-
मालकारः स्पष्टः । उत्तरार्धे तु अल्पया मत्या महत्तरसूर्यवशं वर्णयितुं
प्रवृत्तोऽस्मीति प्रकृतवाक्यार्थमनुपन्यस्य तद्धर्मिणि अल्पसाधनीभूतोडुप-
करणकमोहहेतुकदुस्तरसागरतरणेच्छावत्वरूपस्य तत्प्रतिविबभूतस्य वा-
क्यार्थस्य वर्णनाल्ललितम्, इति केचिद्वर्णयन्ति ॥

अपरे तु अत्र वाक्यार्थनिदर्शनैवेति सगिरन्ते । तथाहि इह-
तावदलङ्कारः श्रौता आर्थाश्च प्रायेण सम्भवन्ति । तत्र श्रौतेभ्य
आर्थाः पृथगलङ्कारत्वेन न सख्यायन्ते, किंतु पृथग्भेदतयैव । यत्र
व्यवहारद्वयवद्भर्त्यभेदप्रतिपादनाक्षिप्तः व्यवहारद्वयाभेदः तत्र व्यवहार-
द्वयवद्भर्त्यभेदप्रतिपादनं श्रौतमेवापेक्षितमिति न नियमः । किंतु प्रति-
पादनमात्रम् । तेन “आददानं परद्रव्यं गिलति क्ष्वेलसचयमि” तत्र
व्यवहारद्वयवद्भर्त्यभेदस्य श्रुत्या प्रतिपादने इव “विषयस्त्व
तथाप्येषः विषयमपि सुदुर्मतिः” इत्यत्र आर्थप्रकृतव्यवहारवद्भर्त्य

श्रौताप्रकृतव्यवहारवद्धर्मिणो आर्थाभेदस्य प्रतिपादनेपि वाक्यार्थनिदर्शनात्त्वमक्षतमेव । एकत्र श्रौतीत्व, अन्यत्रार्थीत्वमिति विशेष परवर्तत इत्याहुः ॥ मतद्वयस्यास्य सारतरो विचार रसगङ्गाधरादिषु प्रतायत इति नेहप्रयत्यते । एवमादयोलङ्कारा' अनवधय' अत्र कालिदासग्रन्थे विस्तृता इति कालिदासीयकाव्य सामान्यस्य रसालङ्कारभरितत्वं सुस्पष्टम् ॥

अंबास्तुति

ब्रह्मादयो बहुमुखा विबुधेश्वरास्ते स्तोतु न ते गुणगणान् प्रभवो भवन्ति ।
 मातर्वदैकवदनस्य ममाल्पबुद्धे स्यादीषदप्यवसर किमु तादृशस्ते ॥ १
 मूक कविर्भवति शकरि किंकरस्ते राकानिशाकरमुखि प्रमुखे सुराणाम् ।
 वाचामधीश्वरि महेश्वरपत्नि गौरि त्व मे विधेहि ललितानि वचोऽमृतानि ॥
 कादम्बिनीव तृषिताय च चातकाय दीनाय मे वितर जीवनमव नित्यम् ।
 त्वामन्तरेण शरण न च देवमन्य मन्ये मदिष्टपरिपूरण मद्विकन्ये ॥ ३
 चेत् कपिर्मम सदा विनयादेपेत तृष्णाकुलो विषयवृक्षवन प्रयाति ।
 मातस्त्वमेव तदिम कुरु भक्तिदाम्ना बद्ध न चेदयमसारफलानि मुक्ते ॥ ४
 ससारसागरमपारमिम गभीर प्राप्तस्य तत्र च दुरीहितनक्रजालै ।
 दृष्टस्य शैलतनये चरण त्वदीय सत्य वदामि तराणि शरणायमानम् ॥ ५
 विद्यार्जनं छलमवाप्य मया दयालो नाराधिता त्वमसि मुग्धधिया तथापि ।
 त्वं मा विलोकयासि वत्समिम हसन्ती माता भवेन्नाहि कदापि कठोरचेता ॥
 रोगो दहत्यविरत मम गौरि देह भोगाभिलाषनिचयश्च मनश्च देवि ।
 कष्ट मदीयमिदमव दयापथोधे त्वामन्तरा कमधुना विनिवेदयेयम् ॥ ७
 कारुण्यपुष्परसपूर्णमुमे त्वदीय पादारविन्दमतिखुन्दरमायताक्षि ।
 भृंगस्य मे भवमरुभ्रमतापितस्य शीताद्रिपुत्रि तनुगात्रि शरण्यमस्तु ॥ ८

केशवभट्टः—विद्यार्थी.

पाठशालावृत्तान्तः.

17—5--1928

इदमिदानीमवधारणीयम्— श्रीमन्त. चक्रवर्ति रामानुजय्यगार्य महाशया श्रीमन्महाराज सस्कृत महापाठशालाध्यक्षपदवीं 11-10-1919 समये समारुह्य महापाठशालाकार्यं सम्यक् निरूह्य इदानीं राजकीय-विद्याशाखा विभूषयन्ति । तेषां विद्याशाखायामनल्प अभ्युदयादिक भूयादित्याशास्महे । महाशयानामेतेषामेवाधिकारसमये लब्धजनिरिय पत्रिका सहृदयानामतीवानन्दमावहतीति विदितचरमेव विश्वेषा वाचकमहाशयानाम् ॥

इदानीं पुन महर्शरीय विश्वविद्यानिलये सस्कृतभागे शास्त्र-विषये च ए ए. उपाधिं लब्ध्वा देशीय सस्कृतपाठशाला निरूपक-पदमलकृतवन्त. श्रीमन्त योगनरसिंहार्यमहाशया तामेव महापाठशालाध्यक्षपदवीमलकुर्वन्ति । महापाठशालामिवृद्धौ दत्तचित्तानामेतेषामपि काले परमा ऋद्धिमीयादिय महापाठशाला इय पत्रिकाचेत्यनुगृह्यन्तु महान्त इति ॥

30—5—1928

अस्या श्रीमन्महाराज सस्कृतमहापाठशालाया ज्येष्ठशुक्लैकादश्या बुधवासरे श्रीमन्महाराजस्य चतुश्चत्वारिंश. जन्मदिवसमहोत्सवः श्रीविद्यागणपति पूजा राजाशीर्वादप्रमुखश्रेयस्करकार्यकलोपेन सस्कृत. । तदनन्तरदिवसे मध्याह्नात्पर सर्वैरधिकारिभि. सर्वैश्च विद्वान्भिः सम्पूर्णे पाठशालाप्रासादे श्री ॥ महामहोपाध्याय पण्डितरत्न लक्ष्मीपुरं श्रीनिवासाचार्या श्री ॥ धर्माधिकारि पेरियकोळ रामचन्द्राचार्या श्री ॥ महामहोपाध्याय विद्यानिधि विरूपाक्षशास्त्रिणः श्री ॥ महाविद्वांस. अ-

य्याघनपाठिनश्च नीतिविषयकेण राजभक्तिविषयकेण विद्याविषयकेण श्रीमन्महाराजगुणविषयकेणचोपन्यास्येन सर्वानानन्दयामाप्सुरिति त्रिवेदन केवल स्वभावोक्तिः ॥

9—7—1928

अयमपरो वृत्तान्तस्सर्वेषां विदुषां तोषावहः समुचितः श्रोतुम् ।
य एष श्रीमन्महाराजास्थानं मुजरायिभाक्षिपदवीमलकुर्वाणः, इदानीमेव विश्रान्तिं लभमानः पुरुषधौरेयः राजकविभूषणः बिरुदालङ्कृतः एच्च लिङ्गराजप्रभुमहाशयः आस्थानविद्वन्मण्डल्याः आशीर्वादसत्कारमहोत्सवेन केन चिदभूतपूर्णेण अस्यामाषाढ कृष्णसप्तम्या सोमवासरे साय श्रीमन्महाराजः संस्कृतपाठशालाप्रासादे लौकिकवैदिकमहाशयसमलङ्कृते सम्भावितः ॥

स एष महाशयः उदारेण धर्मप्रवणेन हृदयेन पाठशालाविद्यार्थिसाहाय्यसहस्ररूप्याणि मूलधनं दास्यामीति प्रत्यश्रुणोत् । तदानीं तत्रत्यसभ्यः महाशयहृदयानन्दं पुनः व्यञ्जयितुं न खलु वयःप्रभवामः । एवमेतादृशमहाशयसराणि प्रायेण पुरुषप्रवरा बहवोऽनुसरेयुरिति इति बाह्यं विश्वसिमः ॥

॥ श्री. ॥

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिका.

प्रतिमासत्रय प्रकटीक्रियमाणा



“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतः समाः”

(ईशोपनिषद्)

संपुट-४]

अक्टोबर् १९२८

[सञ्चिका-४

लक्ष्मीकौस्तुभवक्षस मुररिपु शङ्खासिकौमोदकी

हस्त पद्मपलाशताम्रनयन पीताम्बर शार्ङ्गिणम् ।

मेघश्याममुदारपीवरचतुर्बाहु प्रधानात्पर

श्रीवत्साङ्गमनाथनाथममृत वन्दे मुकुन्द मुदा ॥

कुन्दमालाविमर्श

लोकोत्तरवर्णनानैपुणीप्रकाशितमधुरिमधुरीणेषु सुकुमार मतीना-
मपि अमन्दानन्दसन्दोहतुन्दलीकरणधुरन्धरेषु काव्येषु सारम्येन सह-
दयाना प्रवृत्ति समुचितेति सर्वप्राज्ञक्षुण्णेय सरणि । तत्रापि यशो-
द्रव्यव्यवहारशिवेतरक्षत्यादिप्रयोजन काव्यसाधारणमपि श्रव्यकाव्या-

पेक्षया दृश्यकाव्यस्य महत्तरत्वं प्रतिश्रुतं सहृदयवृन्दारकैः । तथा-
चोक्तं भारतीये —

त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्य भावानुकीर्तनम् ।

धर्मो धर्मप्रवृत्तानां काम कामोपसेविनाम् ॥

अर्थेपजांविनामर्थं घृतिरुद्विग्नचेतसाम् ।

नानाभावोपसपन्नं नानावस्थान्तरात्मकम् ॥

लोकवृत्तानुकरणं नाट्यमेतन्मया कृतम् ।

एतद्भ्रमेषु भावेषु सर्वकर्मक्रियासु च ॥

सर्वोपदेशजननं नाट्यमेतद्भविष्यति ।

न तत् ज्ञानं न तच्छिल्पं नासौ विद्या न सा कला ।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येस्मिन्नयं दर्श्यते ॥ इति ।

महाकविकुलतिलकं कालिदासोप्याह “कामं खलु सर्वस्यापि कुल-
विद्या बहुमता, न पुनरस्माकं नाट्यं प्रति मिथ्यागौरवम् । तथाहि—

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं

रुद्रेणैदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्गे विभक्तं त्रिधा ।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते

नाट्यं भिन्नरुचेर्जन्यस्य बहुधाऽप्येकं समाराधकम् ॥ इति ।

“काव्येषु नाटकं रम्यम्” इति लौकिकानामामाणकश्च ।

एवं च सहृदयं हृदयावर्जकनाट्यप्रधानप्रबन्धनिर्मातृषु भासः कालि-
दासः भवन्मृतिं प्रमृतयः पञ्चषा एव महाकवयः महाजनपरिग्रह-
निश्रेणिका मारुक्षन् ॥

प्रकृते च कुन्दमालाख्यनाटकस्य रचयिता दिङ्नागाचार्यः
हेतुचक्रादिशास्त्रनिर्माणसमुदाश्रितबुद्धिवैभवप्रकाशितसर्वतन्त्रस्वतन्त्रतागुण-
गारिष्ठोऽपि समुचितललितसन्निवेशचारुसरसकाव्यनिर्माणनदीष्णताभासे-

दिवानिति हेम्न परमामोद । अनेन रचिता कुन्दमाला च भास-
प्रणीतनाटककदम्बकोटीमाटीकत इति आधुनिकास्सकरताल प्रमोदन्ते ॥

आदिमहाकविश्रीवाल्मीकिमुनिप्रकाशितश्रीरामायणप्रबन्धोपजी-
विषु श्रीरामपट्टाभिषेकान्तकथाप्रबन्धार बहव कवय समुपलभ्यन्ते ।
श्रीरामसबन्ध्युत्तरकथाप्रबन्धरचयितृषु द्वित्रा एव भवभूत्यादय कवि-
पुङ्गवा अर्वातिषतेति लोकप्रथितोयमशः । प्रकृते च कुन्दमालारचयिता
दिङ्नागाचार्यः श्रीरामस्योत्तरचरित भवभूतिवदारचयितुमयातिष्ठेति कुन्द
मालानिरीक्षणात् ज्ञायते । यद्यपि—

काव्येषु नाटक रम्य तत्रापि च शकुन्तला ।

उत्तरे रामचरिते भवभूतिर्विशिष्यते ॥

इति केचित्प्राचीना मुकुळितलोचना नरीनृतति । तथापि दिङ्नागा-
चार्यप्रणीता कुन्दमाला उत्तररामचरितात् नावरीणा इत्याधुनिक-
अभिप्रयन्ति । अत उत्तररामचरितकुन्दमालयो इतिवृत्तपात्रपरिग्रह-
वर्णनाशैल्यादिषु सालक्ष्यवैलक्ष्ये मूलानुसारेण यथामति सक्षेपतो
निरूपयाम ॥

अयं च दिङ्नागाचार्यं क्रिस्तीयपञ्चमशतकस्यादिमे भागे अवर्त-
तेत्याधुनिका विपश्चितो निश्चिन्वन्ति । केचित् क्रिस्तीयचतुर्थशतकस्यो-
त्तरभागे अजनीनि निर्णयन्ति । अमुं च दिङ्नागाचार्यं कालिदास-
कृतप्रन्थसामान्यदूषक, मेघसंदेशीयचतुर्दशश्लोकस्थकोलचलमल्लिनाथ-
सूरिविरचितव्याख्याप्रामाण्यत कालिदासकालिकमिति बहवो मा-
षन्ते । स च दिङ्नागाचार्यः कालिदासप्रबन्धगतान् विषयान् “अय-
मन्यत्रोक्तः, अन्यत्रोक्तोयमर्थः” इति स्थूलहस्ताभिनयैः अदृष्ट-
त्सल्लु । तादृशस्याद्रिकल्पम्य दिङ्नागाचार्यस्य प्राधान्यं परिहर्तुं
स्वप्रबन्धस्य अदृष्टचरसारस्वतसाराभिधायित्वमाश्रित्य मेघोपदेशव्या-

जेन कविपुङ्गवस्तमुपालमत । तत्सहाध्यायी सरसो निचुलश्च परा-
पादितानां कालिदासप्रबन्धदृषणानां परिहर्ता आसीदिति तदीय
श्लोकाभिप्राय अभिदधति च ॥

क्रिस्तचतुर्दशशतकस्था मल्लिनाथसूरिण स्वापेक्षया शतकानां
नवकात्प्राक् विद्यमान दिङ्नागाचार्य कथं कालिदासग्रन्थान्दूषयन्त
आज्ञासिषु । तत्र प्रमाणं न किञ्चिदपि लिखितयिति केचन सशेरते ॥

वस्तुतस्तु-दिङ्नागाचार्यः कालिदाससमकालिक इति आधुनि-
कानामुद्घोष मिथ्यैव । यतः कालिदासापेक्षया अर्वाचीनत्व दिङ्-
नागाचार्यस्य कैश्चिल्लिङ्गैः अव्यवसीयते । क्रिस्तीयप्रथमशतकस्थाश्व-
घोषप्रणीतबुद्धचरिताख्ये काव्ये कालिदासप्रणीतमहाकाव्यशैलीनामनु-
वर्तनात् क्रिस्तशकात्प्राचीनेन श्रीपतञ्जलिमहर्षिणा विरचिते महा-
भाष्ये “इह पुण्यमित्र याजयामः” इति प्रयोगेन च पुण्यमित्रपुत्राभि-
मित्रसमकालिकत्वात्कालिदासस्य ‘दिङ्नागसमसमयवर्तित्वकल्पनं दुःश-
कमेवेत्यभिप्रेम’ । नच “दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूलहस्तावलेपान्”
इतिश्लोकस्थमल्लिनाथसूरिवचनं प्रमाणमितिवाच्यम् । तत्र श्लोके
दिङ्नागानामिति बहुवचनस्य स्थूलहस्तावलेपस्य च नातीवसाम-
जस्य कल्पते । क्रिस्तीयद्वादश शतकस्थेन दाक्षिणावर्तनाथेन रचिताया
मेघसंदेशव्याख्यायां लिखितमनुसृत्यैव मल्लिनाथसूरिणोऽन्वधादिषु । न
तु तत्रस्थं यत्किञ्चित्प्रमाणवचनमप्युदाहार्यम् । क्रिस्तीयचतुर्थशतके
स्थितं वसुबन्धुशिष्यः सवृत्तिकप्रमाणसमुच्चय-आलम्बनपरीक्षा त्रिकाल-
परीक्षा हेतुचक्रप्रभृतीनां ग्रन्थानां रचयिता बौद्धमतावलम्बी दिङ्-
नागाचार्यः अन्यः, कुन्दमालाख्यनाटककर्ता अन्यः । कुन्दमालाप्रणेतार
वीरनाग इति अररालपुरेत्यत्र अनुराधपुरमिति (इदं च सिलोनदेशवर्ति)
महीशूरप्राच्यकोशागारस्थलिखितपुस्तके पाठोपलम्भात् दिङ्नाग इति

सभावना मात्रमेवेति तत्त्वतो वेत्तु पार्यते । कुन्दमालाप्रणेतुः धीरनागस्य (दिङ्नागस्य वा) बौद्धत्व ग्रन्थतो निश्चेतुं न शक्यते । अतः कालिदासदिङ्नागयोः विभिन्नकालिकत्व वक्तुं युक्तमित्युत्पश्याम ॥

कुन्दमालास्थश्लोकानां दाण्डिवामनाचार्यप्रभृतिभिः स्वग्रन्थेषु अनुदाहरणात् ग्रन्थशैल्या प्राकृतशैल्याश्च प्राचीनतमत्वसदेहात् नव्यत्वकल्पनमेव न्याय्यमिति केचिदुत्प्रेक्षन्ते । ऊहकुशलानां बुद्धिः नैकविधेत्यल पल्लवितेन ॥

श्रीमान् भवभूतिमहाकविस्तु क्रिस्तीयसप्तमशतकम्यान्तिमे भागे यशोवर्मणः सभायामासीत् । अयं च अष्टमशतकम्यकाव्यालंकारसूत्रकर्तृवामनाचार्यात्प्राचीन इति स्वरसतो ज्ञायते । यतोयं वामनाचार्यः उत्तररामचरितस्थ ‘ इयं गेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिनयनयो ’ इति श्लोकः “दोर्दण्डाञ्चितचन्द्रशेखरधनुः” इतिमहावीरचरिततीयश्लोकं चोदाहर्षीत् । एष च भवभूतिकविः स्वदेशस्वर्कायगोत्रादिकस्वस्य च पाण्डित्यमालतीमाधवादिग्रन्थेषु स्फुटमेवाभ्यधात् । यथा ‘ अस्ति-दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम् । तत्र ब्राह्मणाः केचित्पङ्क्तिपावनाः पञ्चाभयचरणगुरवः काश्यपाः सोमपीथिनः धृतव्रता उदुम्बरनामानः प्रतिवसन्ति । तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तिः नीलकण्ठस्य पुत्रः कविर्भवभूतिर्नाम जातूकर्णापुत्रः श्रीकण्ठपदलाञ्छनः पदवाक्यप्रमाणज्ञाननिर्घेर्गुरोः अधीतवेदवेदान्तसांख्ययोगादिशास्त्रश्च ” इति ॥

दक्षिणापथश्च विदर्भदेशमारभ्य नन्दिदुर्गावसानो भूमिभागः । यत्सवधाद्वैदर्भीरिति । दक्षिणात्यरीतिरिति काव्यादर्शदौ जोष्यते । पद्मपुरमपि पद्मावतीत्यपि व्यवहारीत्युच्यते । यतो मालतीमाधवे प्रथमाङ्के “कुण्डिनपुरादिमा पद्मावतीं प्रहिण्वता सुविहितम्” इति नवमे

“पद्मावती विमलवारिविशालसिंधुपारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति”
इति च कविरेवाचकथत् । “वासवदत्ता च पित्रा सजयाय राज्ञे दत्त-
आत्मानमुदयनाय प्रायच्छत्” इत्यमुना ग्रन्थसदर्भेण सुबन्धुरचितवासव-
दत्ताया परामर्शनात् सुबन्धोरर्वाचीन इति केचिद्विपश्चितो निश्चिन्वते ।
षष्ठशतकस्थममु च भवभूतिमहाकविं राजशेखरमहाकविः स्वकृते बाल-
रामायणनाटके—

बभूव वरुमीकभव कवि पुरा तत प्रपेदे भुवि भर्तृमेष्ठताम् ।
स्थित पुनर्यो भवभूतिरेखया स वर्तते सप्रति राजशेखरः ॥
इत्यमु महाकविं राजशेखरमहाकविः महता गौरवेण प्रशशस । येन
स्वत्मान भवभूत्यवतारान्तरत्वसभावनया पर भूमानमारोपयति—

तपस्वी का गतोवस्थामिति स्मेराननाविव ।
गिरिजाया स्तनौ वन्दे भवभूतिसिताननौ ॥
इति पद्यप्रणयनात् श्रीकण्ठपदलाञ्छनस्याप्यस्य कवेर्भवभूतिरित्या-
ख्याबिरुदोपलब्धेत्यैतिह्यविदो जल्पन्ति । साधयन्ति च ईदृग्विध-
ताम् । यथा कालिदासग्रन्थमूषयितु तत्सहाध्यायिनः कस्य चित्कवेः—
ससर्गजा दोषगुणा भवन्त्यितन्मृषा येन जलाश्रयोपि ।
स्थित्वानुकूल निचुलश्चलन्तमात्मानमारक्षति सिन्धुवेगात् ॥
इति श्लोकग्रथनेन निचुलसज्ञा समजनि तद्वदिति । नवीनकविशेखरो
नीलकण्ठदीक्षितोपि एन महाकविं—

प्राचेतसेन यानीता पालिता भवभूतिना ।
सर्वतश्चर्यते वाणी सैवाद्य कविमानिभिः ॥
इत्यादिना बहुमेने ।

भवभूतिकवेवाचः स्वदन्ते रसरञ्जिताः ।
सुमनोभ्य सुधास्यदिबन्धमाधुर्यबन्धुराः ॥

भवभूतिवचोगुम्भरसास्वादनचातुरी ।
 यदि विद्येत केषा चिद्विरलाना विपश्चिताम् ॥
 इत्यादिनाऽप्यन्ये रासिका बाढ प्रशशसु । भवभूतिरेव—
 उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
 कालो ह्यय निरबाधिर्विपुला च पृथ्वी ॥
 इति ।

यद्वेदाध्ययन तथोपनिषदा सांख्यस्य योगस्य च
 ज्ञान तत्कथनेन किं न हि तत्. कश्चिद्गुणो नाटके ।
 यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसा यच्चार्यतो गौरव
 तच्चेदस्ति ततस्तदेव गमक पाण्डित्यवैदग्ध्ययो ॥
 इति च नैषधकर्तृश्रीहर्षवत् स्वात्मानमद्वा प्राप्तौदिति महाकवेरस्य
 पाण्डित्य लोकातिशायीत्यध्यवसातु शक्यते । इत्थ स्वस्य कुलस्य
 स्वाश्रयस्य राज्ञ स्वस्य देशस्य च कथनेन कविविषयक सर्वं वृत्त अस-
 देहेनैव ज्ञातु शक्यत इति इय पद्या अनवद्येतिकेचिद्वेषज्ञा आख्यान्ति ।
 कालिदामभासप्रभृतय स्वदेशकुलपाण्डित्यादिक नावेदयन् । केवल स्व-
 स्वग्रन्थगौरवगुणेनैव पर माहात्म्यमापेदिरे । कुन्दमालाकर्ता दिङ्नागा-
 चार्योपि (धीरनागः) भासनाटकचकरीतिमनुकुर्वाण ग्रन्थम्यविषयगौरवा-
 न्वयव्यतिरेकि स्वगौरवमेव बहुमनुते । प्रस्तावनाया कथंचिदपि “ तत्र-
 भवतोऽरालपुरवास्तव्यस्य कवेर्दिङ्नागस्य (धीरनागस्य) कृति कुन्द-
 मालानाम ” इत्यादिना किंचित्स्वनामदेशादिक अभिव्यनक्ति स्म ।
 यथा भासनाटकचक्रे प्राचीनताप्रकाशिका प्रसन्नोदारगम्भीरा सरस-
 हृदयगमा भाषाशैली अनन्यसामान्या, यथा च प्रस्तावनापदस्य स्थाने
 स्थापनापदस्य प्रयोग, यथा च “ नान्द्यन्ते तत् प्रविशति सूत्रधार ”
 इति आदावुपक्रम्य ततो मङ्गलपद्यलेखन, तथैवात्रापि कुन्दमालार्या

नप्रतीक्षस्वेति लक्ष्मण नियोज्य श्रद्धधानाय तस्मै नृगनिमिप्रभृतीना
पौरकार्यमननुयुजानाना कथा रामेण विस्तरेणार्वाणि ॥

60—72 सर्गपर्यन्त ऋषीणा मुखात् मधुपुत्रेण लवणामुरेण
क्रियमाणा प्रजापीडा श्रुत्वा तद्वधार्थं ससैन्यस्य शत्रुघ्नस्य प्रतिगृहीत
लवणामुरहननोपयोगि सरहस्य मन्त्रास्त्रस्य नियोजनम् ॥

हत्वा च त तत्रैव राज्यं कुर्विति पट्टाभिषिक्तस्य शत्रुघ्नस्य
प्रयाणे निवृत्ते मध्येमार्गे वाल्मीक्याश्रमप्रवेशः । तस्मिन्नेव समये
रात्रौ सीता प्राप्तुं दारकद्वयम् । जातयोस्तयो रक्षोविनाशार्थं कुश-
मुष्ट्यग्रधोभागाभ्यां प्रमार्जनस्य वाल्मीकिमहर्षिणा कृतत्वात् वृद्धाभि-
स्तापसीभिः तौ कुशलवावित्याख्यातौ । (लूनकुशमुष्टेरग्रभागं कुश
इति अधोभागो लव इति च आख्यायते) ततः शत्रुघ्नः तं हत्वा
यमुनातीरवासिमुनीनां आशीं परम्परां प्रतिगृह्णान् तत्रैव राज्यं
शादिति ॥

73—82 सर्गपर्यन्तं शबूकनामकशूद्रकृततपोज्वालया विप्रबा-
लक मृतं श्रुत्वा तद्वधार्थं पुष्यकमारुह्य अन्विष्य च तं वने जघान
रामः । इन्द्रादिदेवताप्रसादेन मृतं बालं पुनरुज्जीवय्य देवैस्सह अग-
स्त्याश्रमं प्रविश्य तदनुग्रहात् दिव्याभरणानि प्रतिगृह्य अयोध्यां
प्रत्याजगामचेति कथा प्रास्तावि ॥

83—90 सर्गपर्यन्तं अश्वमेधक्रत्वनुष्ठानार्थं सर्वेऽपि ससैन्या
पार्थिवा साकेतवासिनो मुनयः सानुचरा विभीषण सुग्रीव प्रभृतयः
आकारिताः । आहूतानामेषां सर्वतः परितोषणार्थं भरतनियोजनं, यज्ञी-
याश्वरक्षणार्थं लक्ष्मणस्य गमनम् । यज्ञे निर्वर्त्यमाने वाल्मीकिशिष्ययोः
कुशलवचनौ तदाज्ञया तत्र रामायणकथागानं, तथा रामस्याग्रेऽपि
तस्मिन्नीलसमन्वितं लवकुशकृतं मधुरङ्गानं, ततः वाल्मीकिमहर्षिवचना-

त्सीता समागत्य सर्वस्या परिषदोऽग्रे श्रीरामप्रत्ययार्थ—

यथाह राघवादन्य मनसापि नचिन्तये ।

तथा मे माधवी देवी विवर दातुमर्हति ॥

इति सप्रार्थ्य पुष्पवर्षसमकालमेव पातालादुत्स्थिते सिंहासन उपविश्य प्रविवेशरसातलम् । 97—102 पर्यन्तसर्गेषु तत सीता-दर्शनेनोद्विग्नमना रामो नान्या, पत्नीमवृणोत् । ईजे च बहुभिर्यज्ञैः, यज्ञेयज्ञे च पत्न्यर्थं जानकी काञ्चन्यभवच्च । तत स्वर्गताना मातृ-णामोर्ध्वदैहिक कृत्वा युधाजित्प्रार्थनया सपुत्र भरत प्रस्थाप्य तेन च सर्वतनामक गन्धर्व प्रमापय्य गान्धर्वदेशे गन्धारे तक्षशिलया तक्षनामक भरतपुत्र अन्य च तत्पुत्र पुष्कल पुष्कलावर्ते च पट्टा-मिषिक्त भरतेनैव कारयित्वा लक्ष्मणपुत्रयोरङ्गदचन्द्रकेत्वोश्च अङ्गदी-यचन्द्रकान्तापुर्यो अभिषेचन च कारयामास ॥

103—111 सर्गपर्यन्त ब्रह्मप्रेरितकालप्रार्थनया स्वर्गगमनोद्योगः मध्ये लक्ष्मणस्य निरुच्छ्वासतया देहत्याग । ततो रामाज्ञया सुबाहुशत्रु-घातिनो स्वाम्मजयो राज्यार्थं प्रविभज्य प्रदाय प्रस्थाय शत्रुघ्न-रामसमीपमागमत् । तत दक्षिणोत्तरकोसलयो कुशावतीश्रावस्त्यो-कुशलवयो-पट्टाभिषेचन, तत सर्वपौरप्रार्थनया तै सह विमानान्यरुह्य ब्रह्मलोकगमनमिति च कथा ॥

एव स्थित उभाभ्यामेताभ्या कनिभ्या आदित. प्रभूति सप्तचत्वारिंशत्सर्गगता सपुत्रसानुजरावणकथा सुग्रीवादिकथा च अविशेष-णेवत्यक्ता । भवभूति पर तदनन्तरसर्गपञ्चकस्था सुग्रीवजनकमहाराजादि प्रस्थानकथा किञ्चित्प्रतिगृह्य प्रस्तावनाया “प्रेषिता हि स्वगृहान्महा-राजेन लङ्कासमरसुहृदो महात्मान. लुवङ्गराक्षसा सभाजनोपस्थायिनो

नानादिगन्तवासिनो ब्रह्मर्षयो राजर्षयश्च, यत्नमाराधनाय इयतो दिव-
सानुत्सव आसीत्” इत्युपचिक्षेप । मय्ये च मातृणा पुरत
सीतात्यागो न सभवतीत्यालोच्य—

वसिष्ठाधिष्ठिता दंध्य गता रामस्य मातर ।

अरुन्धतीं पुरस्कृत्य यज्ञे जामातुराश्रमम् ॥

इत्यादिकथा स्वय सयोजयामास । जनकराजादयो यद्यपि चिरमयोभ्या
मध्यतिष्ठन् । तथापि तदैव मीना आपन्नसत्त्वा न जाता, किंतु—

तथा तयोर्विहरतोस्मीतागधवयोश्चिरम् ।

दशवर्षसहस्राणि गतानि मुमहात्मनो ॥

प्राप्तयो विविधान् भोगान् अतीता शिशिरागमा ।

इतिवचनात् बहुकालादनन्तर प्राप्तम्यमीतागर्भस्य अव्यवधानेन कथन,
गर्भिणीं ता त्यक्त्वा केवल मातृणामेव गमनस्य कथन तथा -

देव्या अपि हि वेदेह्या सापवादो यतो जन ।

रक्षोगृहस्थितिर्मूल अग्निगुह्यैतानिश्चयः ॥

इत्यादिकथायोजन प्रस्तावनाया रुचिर न स्यादिति मत्वा कृन्द
मालाया दिङ्नागाचार्येण स्थापनाया—

लङ्केश्वरस्य भवने सुचिर स्थितेति

रामेण लोकपरिवादभयाकुलेन ।

निर्वासिता जनपदादपि गर्भगुर्वी

सीता वनाय परिकर्षति लक्ष्मणायाम् ॥

इति सीतात्यागकथैवादावारब्धा ॥

भवभूतिस्तु राज्ञा प्रजानुरजन परम श्रेय इति वसिष्ठमदेश
मध्ये परिरूप्य—

खेट दया च सोम्य च यदि वा जानकीमति ।

आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा ॥

इत्याकस्मिकवचनद्वारा रघूणा प्रजारञ्जनमेव श्रेय इत्यादि रामप्रतिश्रव च सिद्धवत्कृत्य सीताविनोदनार्थं आलेख्यदर्शन तेन च पूर्वकथा-स्मरण, तदानीमेव दोहदत्वेन सीतामिलषित भागीरथीदर्शन निर्व, र्तीयितु रथमानयेति लक्ष्मण समादिश्य मध्ये दुर्मुखमुखात्पुरजननिष्ठ सीताविषयक वचनीय श्रुत्वा निर्विण्णसीता रामस्तत्याजेति कथा रामायणानुक्ता स्वेच्छया प्रथमाङ्के कल्पयामास ॥

दिङ्नागस्तु गम्भीरस्वभावोक्तिमधुराया अधुनातनाशिक्षणस-
स्कृतसुमनोमनोरञ्जिन्या मालतीमालाकल्पाया कुन्दमालाया “ सीता—
वत्स लक्ष्मण अतिप्रवृत्ततुरङ्गमवेगकम्पितदेहा न पारयामि स
स्थातु, किं पुनरवतरीतु, वत्स लक्ष्मण अतिशयितगर्भभरोद्बहन
परिश्रान्ता न प्रभवतो मे चरणौ, तदग्रतो भूत्वा निवेदय किय-
दूरे भगवती भागीरथी वर्तत इति ॥

लक्ष्मण—निर्दिश्य अत्यन्त विश्रान्त मनुष्य सचारतया दुरवतारा-
स्तटप्रदेशा, तस्मात्प्रसदमास्थाय सम्यक्—

वामेन नीवारलता करेण जानु समालम्ब्य च दक्षिणेन ।

पदेपदे मे पदमादधाना शनैश्शनैरेतु मुहूर्तमार्या ॥

सीता—वत्स सुष्ठु परिश्रान्तास्मि, एतस्या पादपच्छायाया मुहूर्त-
मुपविश्य विश्रमिष्यामीति लौकिकव्यवहारानुगुण्येन ४५—४८ सर्गगतान्
वाल्मीकिप्रोक्तान् विषयान् अनुसृत्य प्रथमाङ्ककथा निबबन्ध । तथाहि
वाल्मीकिरामायणे उत्तरभागे ४५ सर्गे—

अहं किल कुले जातः इक्ष्वाकूणा महात्मनाम् ।

सीताऽपि सत्कुले जाता जनकाना महात्मनाम् ॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना जनकस्य सुता प्रति ।
 अत्रोषितामिमां सीतामानयेय कथं पुरीम् ॥
 प्रत्ययार्थं ततस्सीता निवेशं ज्वलनं तदा ।
 प्रत्यक्षं तव सौमित्रे देवानां हव्यवाहन ॥
 अपापामैथिलीं प्राह वायुश्चाकाशगोचर ।
 चन्द्रादित्यौ च शसेते सुराणां सन्निधौ पुरा ॥
 ऋषिणा चैव सर्वेषामपापा जनकात्मजास् ॥

इत्यादि वाल्मीकीय विषयजात मनस्याकलय्य दिङ्नागाचाय

तुल्यान्वयेत्यनुगुणेति गुणोन्नेतेति
 दुःखे सुखे च सुचिरं सहवामिनीति ।
 जानामि केवलमहं जनवादभीत्या
 सीते त्यजामि भवती न तु भावदोषात् ॥
 ऋषीणां लोकपालानामार्यस्य मम जाग्रत ।
 अग्नौ शुद्धिं गता देवी किं तु लोको निरङ्कुश ॥

सीता “अग्निशुद्धिसंकीर्तनेन प्रतिबोधितामिह । रावणभवनं वृत्तात्
 पुनरप्युद्धासयति, सीताया अपि नाम एव ममाव्यय इति सर्वथाऽऽ
 महिलात्वेन” इति वाल्मीकिमेवानुससार । तथा —

न खल्वद्यैव सौमित्रे जीवितं जाह्नवीतले ।
 त्यजेयं राजवशस्तु भर्तुर्मे परिहाम्यते ॥

इति वाल्मीकीयं श्लोकार्थं — “सीता किं न खलु युक्तं मम
 आर्यपुत्रपरित्यक्तमात्मानं परित्यक्तुं किं न खलु तम्यैव निरनुक्रोशस्स
 समान एष प्रसव प्रेक्षितव्य इति वचनीयं कण्टकोपहितं जीवितं
 परिरक्षामीति” कयापि वाचोयुक्ता परिगृहीत ।

तथा—

श्वश्रूणामविशेषेण प्राञ्जलिप्रग्रहेण च ।
 शिरसा वन्द्य चरणौ कुशल ब्रूहि पार्थिवम् ॥
 जानासि च यथा शुद्धा सीता तत्त्वेन राघव ।
 भक्त्या च परया युक्ता हिता च तव नित्यश ॥
 अह त्यक्ता त्वया वीर अयशोभरणा जने ।
 यच्च ते वचनीय स्यादपवादसमुत्थितम् ।
 मया हि परिहर्तव्य त्व हि मे परमा गति ॥
 यथा भ्रातृषु वर्तेथा तथा पौरेषु नित्यदा ।
 परमो ह्येष धर्मस्ते तस्मात्कीर्तिरनुत्तमा ॥

इत्यादि वाल्मीकिमहर्षिहृदयगमो भाव दिङ्नागाचार्येण “सीता—
 श्वश्रूणा पुन मम वचनात् पादवन्दन कृत्वा विज्ञापय, एवमह नीरक्षा
 श्वापदसमाकीर्णे वने प्रतिवसती सर्वथा हृदयेन आर्याभिरनुगृहीतव्येति ।
 मम वचनात् जन विज्ञापय मन्दभागिनीमनुशोचन् वर्णाश्रमपरिपाल-
 नमभिन्नन्, आत्मान न बाधय । सद्धर्मे स्वशरीरे सावधानो भव ।
 एवमपि त जन विज्ञापय, नयुक्त तव निरपराध इम जन सपदि
 हृदयतो निर्वासयितु किंपुनर्विषयत इति । एवमपि विज्ञापयितव्य
 सा तपोवनवासिनी सर्वथा सीमन्तनिहितेनाञ्जलिना विज्ञापयति यद्यह
 निर्गुणा चिरपारिचितेति वा अनाथेति वा सीतेति वा स्मरणमात्रकेणानु-
 गृहीतव्या” इति सीतामुखेन समस्तसह्यहृदयाह्लादक वचनजात
 कीदृश परिपोषितमिति रसिका स्वान्ते जानन्तु ॥

भवभूतिमहाकविस्तु वाल्मीकीया रीतिं त्यजन्नपि राममुखेन
 सीतात्यागकाले अनिर्वचनीय रसिकजनोल्लासक श्रोतृजनलोचननिरर्गल-
 निर्यद्वाप्पसधुक्षितमनोवृत्तिशून्यतादेशक वचनजात—“रामः कष्ट-

मतिर्भीमत्सकर्म नृशस सवृत्त , योह—

शेषवात्मभूतिपोषिता प्रिया सौहृदादपृथगाशयामिमाम् ।

छद्मना परिददामि मृत्यवे सौनिके गृहशकुन्तिकामिव ॥

नत्कि अम्पर्शनीयपातकी देवीं दूषयामि । सीताया शिरः स्वरमुन्नमय्य
बाहुमाकर्षन्—

अपूर्वकर्मचण्डाल अयि मुग्धे विमुञ्च माम् ।

श्रितासि चन्दनभ्रान्त्या दुर्विपाक विपद्गमम् ॥

‘हन्त विपर्यस्तस्मप्रति जीवलोक , पर्यवसित जीवनप्रयोजन रामभ्य,
शून्यमवुना जीर्णारण्य जगत् असारम्मसार रुष्टप्राय शरीर, अश-
रणोऽस्मि किं करेमि क यामि, का गति , अथवा -

दुःखमेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम् ।

ममोपघातिभिः प्राणैः वज्रकर्णालायित हृदि ॥

हा अम्ब अरुन्धति हा भगवन्तौ वसिष्ठविश्वामित्रौ, हा भगवन्
पावक, हा देवि भूतधात्रि. हा तात जनक हा तात हा मातर हा
परमोपकारिन् लङ्कापते विभीषण हा प्रियसख, हा सौम्य हनूमन्,
हा साखि त्रिजटे, मुषिता म्थ, परिभूता म्थ रामहतकेन, अथवा
कश्च तेषामहमिदानीमाह्वाने—

ते हि मन्ये महात्मानः कृतघ्नेन दुरात्मना ।

मया गृहीतनामानः स्पृश्यन्त इव पाप्मना ॥

योऽह—

विस्मभादुरसि निपत्य लब्ध निद्रामुन्मुच्य प्रियगृहिणीं विशांच्यमान ।

आतङ्कस्फुरितकठोरगर्भगुर्वी कव्याद्भयो बलिमिह दारुण क्षिपामि ॥

इत्यतः कादवरीशैली मनुसृत्य किमपि समुल्लासयामास ॥

दिङ्नागस्तु वार्ष्णीकिना व्याख्यातं कमपि विषय सहृदयहृदया-

नदसदोहदायिन स्वग्रन्धे न्यभास्तीत् । यथा-सीता त्यक्त्वा निर्गमनसमये
लक्ष्मण दिशोऽवलोक्य भोभो लोकपाला शृण्वन्तु भवतः—

ये कोचिदत्र मुनयो निवसन्त्यरण्ये
विज्ञापयामि शिरसा प्रणिपत्य तेभ्य ।
स्त्रीत्युज्झितेत्यशरणेति कुलागतेति
देवी सदा भगवतीत्यनुकम्पनीया ॥

एषोऽञ्जलिर्विरचितो वनदेवताना विज्ञापना क्षणमिमामवधारयन्तु ।
सुप्ता प्रमादवशगा विषमस्थिता वा यत्नादिय भगवतीभिरवेक्षणीया ॥
सरूयो नद्य भ्वाभिनो लोकपाला. मातर्गङ्गे आतर' शैलराजा ।
भूयोभूयो याचते लक्ष्मणोऽय यत्नाद्रक्ष्या राजपुत्री गतोऽहम् ॥

इति ॥ तथा प्रथमाङ्कान्ते—

सीता रुदन्तीं दृष्ट्वा ता तत्र वै मुनिदारका ।
प्राद्रवन् यत्र भगवानास्ते वाल्मीकिरुग्रधी ॥
अभिवाद्य मुने पादौ मुनिपुत्रा यर्हर्षये ।
सर्वं निवेदयामासु तस्यास्तु रुदितस्वनम् ॥

इत्याद्येकोनपञ्चाशसर्गस्थितविषयानुगुण्येनैव, वाल्मीकि ससभ्रमम्—
आकर्ष्यजहुतनया समुपागतेभ्य मध्याभिषेकविधये मुनिदारकेभ्य ।
एकाकिनीमशरणा रुदतीमरण्ये गर्भातुरा स्त्रियमातित्वरयागतोऽस्मि ॥
इत्यादि वाक्यजात समग्रध्नात् । अङ्कान्ते च—वाल्मीकि अत्यन्तदुःख-
सचारोऽय मार्गं विशेषत त्वा प्रति तद्यथायथा मार्गमुपदिशामि
तथातथा समागन्तव्यम्—

एतस्मिन् कुशकटके लघुतया पादौ निघट्स्वाग्रत
शास्त्रेय विनता नमस्व शनकै. गर्तो महान् वामत ।

हस्तेनामृश तेन दक्षिणगन स्थाणु नम माप्रत

पुण्येस्मिन् कमलाकर चरणयोनिर्वर्त्यता क्षालनम् ॥

इत्यादिना विषमगहनसचारमबाधस्फोरक परमकारुणिकवृद्धतापसजनो-
चितव्यवहारानुकूल गर्भिणीजनस्वान्तरङ्गक रसिकजनस्वान्तनितान्त-
सतोषावह पद्य लोकोत्तर निरमामीदिति सुधीयो विभावयन्ति ॥

स्वाश्रम प्रति वाल्मीकिमुनिना नीता सीता 'यद्यह सुखेन
गर्भमभिनिर्वर्तयामि तदा तत्र दिनेदिने कुन्दमालाया उपहार करोमि'
इति गङ्गा प्रार्थयमाना प्रसवानन्तरं तथैव कुर्वत्याम् । कदाचिल्लक्ष्मण-
सहिते रामे भगवतो वाल्मीके राश्रम प्राप्य गङ्गाया स्नाति मति
सीतयोपहारीकृता कुन्दमाला रामपादममीपमुपागमत् । रामस्तु ता दृष्ट्वा
“ वत्स लक्ष्मण दृष्टपूर्वमिदं कुमुमरचनाचिन्यासकौशलम्, लक्ष्मण,
क दृष्टम्, राम, क वा अन्यत्र ईदृशस्यावस्थान, ल—किं देव्या
रा—अथ किम्, ल—गच्छत्वार्थ इदमेव गोमतीतीरं प्रति स्रोतोऽनुस-
राव ” इति तृतीयाङ्कस्थकथासदृशेन कुन्दमाला सीतारचिता
सतीं राम प्रत्यभिजानादिति मृच्छकटिकावत कुन्दमालेति अत्यनाटक-
स्थभिधानमकारि कविना दिङ्नागाचायण ॥

भवभूतिस्तु उत्तररामचरितमित्येव प्रसिद्ध नामधेयमन्वसार्थत् ।
अथ च भवभूतिकविः श्रीवाल्मीकिकथितप्रजानुरजन सोदाहरण प्रदर्शित
प्राधान्येनागृह्यात्, ऋषिगणप्रार्थनया लवणसुरवधार्थं शत्रुप्रेषण
वाल्मीक्यभिहित प्रथमाङ्के समसूचत् । एतदुभय दिङ्नागकवये
नारोचतेति प्रथमाङ्कविमर्शं संक्षेपतो व्यधायीति शम् ॥

जीवनमुक्तिपूजा *

सार्वज्ञिकामाय सर्गकथाभेदमकरोत्पिशाच अध्ययनागारे —
गन्धर्ववृन्दानामनवरतप्रशस्तिः भगवत क्लान्तिजनककल्पाऽ-
भूत् । न तेषां नुति योग्यो भगवान् ? उत न स तेभ्यः प्रददावत्यन्त-
सुखप्रबन्धम् ? तिष्ठतु स विचारः । अस्थानस्तुतिलाभस्य हिंसित-
शरीरकृतनमस्यादिकं चमत्कारितरं भवेदिति सतर्क्यं स्वगतं विहस्य
स देवः सञ्चकृषे तदेतन्महानाटकं प्रयोक्तव्यमिति ॥

‘अगणितकल्ककालं मुधा तप्तोष्मगगनाङ्गणे बभ्राम । अन्ते
आकृतिं प्राप । मध्यवर्तिद्रव्यं नवग्रहान् विचिक्षेप । ग्रहास्तु शीतली
बभूवुः । सन्तप्यमानाः समुद्राश्चक्षुभिरे । ददह्यमानाः भूधराश्चकम्पिरे ।
अञ्जनपर्वताकारभरेभ्योऽग्नेभ्यस्तसधारासपातं नि सृत्य घनीभवद्भूरूपोष्म
पिदधे । अथ चैतन्यस्यादिमाङ्कुरं अध्याब्धिं सजातं । अथ सत्वरं
खगोलपाके पक्कं वनस्पतिरूपेण पर्णमयगुल्मात्मना तथा अदनकदन-
सवनादिक्रियापटुजलजन्तुरूपेण च परिणतं । एतच्चाटकसन्ताने क्रमशः
एतेभ्यो जन्तुभ्य उदपादि मनुष्यं ज्ञानशक्तिविशिष्टं धर्माधर्मविवे-

लेखोऽयं बग्टेडरमल्लनामकादग्लयण्डितरचितं प्रबन्धस्य संस्कृतानुवादः ।
महाशयोय १८७० तमेवन्सरे जातः क्रैमिज्जन्गरे कृताविद्यं गणिततत्त्वज्ञो दार्शनिक-
निकश्लाभवान् । शर्मण्यमहायुद्धात्पूर्वं क्रैमिज्ज् विश्वविद्यालयिलये दर्शनशास्त्राध्यापकोऽ-
भूत् । आरब्धे महायुद्धे राजशासनानुरोधेन प्रसभं पुरजनसङ्ग्रहेण दिनेदिने चोप-
चिताया आग्लमहासिनाया अथ शान्तिरुक्ते राजशासनविरोधां भवन् दशोत्तरशतैः
यातितः, क्रैमिज्ज् विश्वकलाशालया अपि निष्क्रामितः ॥

अनेन दग्लनामकादग्लयण्डितरचितं ग्रन्थं रचिताः ।
आधुनिकेष्व्वाटग्लयण्डितरचनानिपुणेषु अभावग्रन्थ इति बहुमन्यते ॥

चनपटु तत्रितराराधनकामश्च । एषचावजगाम यदस्मिन्नुन्मत्तपैशाच-
प्रणञ्चे सर्व क्षणिक सर्व सर्वात्मना यतने अप्रतिहतशामनम्य कालम्य
सकाशात् क्षणकतिपयपरिमित अवस्थान सपादयितुमिति । एष उवाच—
'अस्तेव लोकायात्राया गूढार्थ अस्माभिर्दुराधिगमोऽपि । स च सदर्थ
एव । यस्य कस्यचिदाराधनीयस्यावश्यकत्वात्, प्रत्यक्षकलिते प्रपञ्चे
आराधनयोग्यस्य चासत्त्वात्' इति । एव पुरुषकारेण अक्रमात्म-
स्सपादनीय इत्येश्वरसकल्प इति मत्वा मनुष्य प्रवाहान्निर्गत्य तट-
स्थोऽभूत् । यद्यन्निर्मगसुलभेन पशुधर्मानुगोधेन अकरोत् तत्तत्पापकर्मति
व्यपदिश्य क्षन्तव्यो मेऽपराध इति ईश्वर प्रार्थयाचकार । क्षान्तिप्रार्थना-
साफलयाय च ईश्वरकोपाश्वासनप्रकार कश्चन भगवादिच्छानियमित
कल्पयितव्य आसीत् । वर्तमानकाल दुष्ट विलोक्य त दुष्टतरम-
भावयत् आगामी काल उत्तमो भवतीतिमत्या । ससारसुलभमुखानिर-
पेक्षस्सन् ववन्दे देव तादृशसुखनैरपेक्ष्यशक्तिदम् । देवोऽपाहसत् ।
वैराग्येण सेवया च शोधितपाप्मान नरमवेक्ष्य भगवान् प्रतिनव
प्रचण्डसूर्य विष्णुपदे प्रस्थाप्य नरलोकगोचर सूर्य नाशयाचकार । तत-
स्सर्वमिदं जगत् पुनरुष्मदशा जगाम । अथजनान्तिकमुवाचेश्वर —
'ओं' एतन्नाटकमतीव चमत्कारि' पुन पुन प्रयोक्तव्यम् '-इति" ॥

युष्मदस्मदभ्युपगमाय आधुनिकविज्ञानशास्त्रेण प्रतिपादितो
लोकोऽपि उपरिसूचितपुराणप्रतिपादितलोकवदेव अर्थाविधुर । ततोऽ-
प्यनर्थभूत । एवभूते लोके आम्माकीनाम्सकल्पा वर्धेरन् । उदर्क-
ज्ञानशून्यै कारणैराबन्धा मनुष्यजातिरिति यत् तस्या जनिवृद्धिभया-
शयप्रणयप्रतिपत्त्यादय केवलमकम्मादुद्धूतपरमाणुपुञ्जजनिता इति यत्,
निरतिशयोत्साहिशौर्यज्ञानेच्छादिप्रकर्षाऽपि पुरुष मृत्युभयात्तारयितु न
पारयतीति यत्, कल्पशतकलितनरकुलकार्यकलापा प्रकृष्टा प्रपत्ति.

अशेषा सिद्धि मध्याह्नमार्ताण्डम्येव मानवमानसस्य प्रभाव सर्वमेतद्विली-
येत ब्रह्माण्डमहाविनाशे इति यत्, अशेषमानुषानि श्रेयसमण्डप अवश्य
भग्नब्रह्माण्डश्मशानभूमौ तिरोहित भाविष्यतीति च यत्—सर्वमेतत्सशय-
कोटिनिविष्टमपि प्रायेणैकान्तिकमेव येनैतत्प्रमेयपरीक्षणरहित दर्शनशास्त्र
नार्हत्यवस्थातुम् । एतत्तत्त्वेन्द्रकोषानुरोधेनैव नैराश्यादृढभूमावेव इत
प्रभृति आत्महर्म्यस्य इष्टकान्यास कार्य । एवमुतरामस्त्रिंशे प्रतिकूले
जगति कथं वा साधयेन्मनुष्य तपस्वी परतन्त्र जन्तुविशेष आत्मनी-
नानभिलाषविशेषान्? परमगहन खलु एतद्वत्प्रकृति सर्वशक्तप्यन्वा
आकाशदरीषु निजससभ्रमभ्रमणमध्ये प्रासूत सुत स्ववशमपि सचेतन
सदसद्विवेकिन अज्ञमातृचेष्टाविमर्शननिपुणम् । सत्यपि मरणे मातृ-
प्रभावलिङ्गे अल्पेऽपि जीवितकाले मनुष्य स्वतन्त्र एव परीक्षणे
विमर्शने प्रज्ञाने, स्वभावनया अन्यथाकल्पनाया च । परिचितप्रपञ्चे
तस्यैवैतादृशी स्वतन्त्रता । एतस्यामेव तस्योत्कर्ष बाह्यप्रपञ्चनियन्त्रीणा
शक्तीनामपेक्षया ॥

क्रव्यादपि वयमिव प्रकृतिशक्तिवशवदता मनुभवत्येव । शक्ति-
व्यतिरेकेण आराधनीय यत्किंचिदप्यपश्यन् एता पूजार्हा न वेति
अविमृशन्नेव स्वमनीषाकल्पितदेवताना पुरत दण्डवत्प्रणमति । मर्म-
मेदिनी भीकरा च कथा देवताराधनाधिया कृताना नरयागप्राणिर्हिंसा-
द्यकीर्तिकराक्रियाणाम् । स भयाद्वेपमान प्रपन्न समाधत्ते—अनर्घतमं
वस्तु मया निवेदितमादरेण, शान्तरुधिराकांक्षा नकाक्षन्त्यपर किञ्चि-
दपीति । परमार्थतस्तु एतन्मत आराधितदेवस्य आराधनीयताविमर्श-
नाध्यवसायलेशमप्यसहमान दास्यदौर्भाग्यम् । धर्मस्वातन्त्र्यं नाभ्युपगत
क्रव्यादा । शक्तिः स्वैर पूजनीया । अकारणदुःखदायिन्यापि अनवरत-
सम्भावनीया ॥

तथापि क्रमशः प्राप्ताया धर्मधीरतया धर्मगरीयस्ता प्रज्ञायते । अथावश्यकरणीयाराधनं वर्चरकल्पितदेवताभिन्नानां देवतानामेव क्रियते । केचन धर्मोत्कर्षं जानन्तोऽपि तमुपेक्ष्य केवलशक्तेरेव पूज्यतां वदन्ति । भगवच्छक्तिं भगवज्ज्ञानं च तेन प्रकटीक्रियते भगवत्सुगुणादिकं न स्तूयते । आधुनिकेष्वपि एके यतो जयस्ततो धर्मे इति कृत्वा अभ्युदयं लिङ्गेन धर्ममनुमिमते । अपरे धर्मपरायणानामरुचिरे एतन्मते अरुचिं प्रदर्श्य पारमार्थिकव्यावहारिकलोकयोः कचित्सूक्ष्मनराविरोधं वदन्तः । अस्मदाश्रुतं धर्मपरायणपक्षं जिवृक्षन्ते । एव नरो बुद्ध्या कल्पयतीश्वरं सर्वशक्तमपि सर्वधर्माधारं भवद्भूतव्यनिर्गूढैकरसताश्रयिभूतम् । तत्त्वतः व्यावहारिको लोकः न धर्माय । लोकानुगुणाया बुद्ध्या अस्ति निरसनयोग्या काचन दाम्यवासना । कुत इति चेत् प्रायः सर्वात्मना मनुष्यजनुष उत्कर्षवचनं वरम् । अमानुषशक्तिविवशता तु न स्मारयितव्या । शक्तिं प्रायेणाधर्म्येति धर्माधर्मज्ञानवान्मनुष्यं तज्ज्ञानशून्ये जगति परवगपरमाणूपमं इति च जाते अनुभवरस उदेत्येष द्वापरं किं शक्तिं पूजयाम ? उत धर्मम् ? किमीश्वरोऽस्ति धर्मविरुद्धः, आहोस्विदस्मद्धर्मबुद्ध्युत्प्रेक्षितः ? इति ॥

प्रश्नस्यास्य प्रतिवचनं अतीव मुख्यं समग्रामप्यनुष्ठानसरणिं विपरिणामयति । कार्लैल्नीजेत्यादिमहाशयकृतनक्षात्रतेजःप्रशस्तिः शक्तिपूजा च निष्ठुरे जगति सत्सकल्पपूरणासामर्थ्यस्य फलम् । शक्त्याराधनमधर्मघट्टास्य सत्त्वप्रचयावनं च । यदि शक्तिरवश्यं सभाव्येत तर्हि व्यवहारं प्रायेणाधर्म्यं इति ज्ञानस्य या विलक्षणा शक्तिः ता शक्तिं बहुमन्यामहे । अभ्युपगच्छामस्तावद्यज्ज्ञातप्रपञ्चे सन्ति बहवः पदार्था असमीचीनाः । अभीप्सितसदृशा अपि लोके दुःसाधा एव चेति । सर्वध्यामस्तावदस्मत्समाजनं परमार्थाय सौन्दर्याय मसारासुखमपूर्णदशायै

च । परमार्थादिषु मध्ये एकैकमपि मायामयप्रपञ्चस्यानभिमतमेव । हृद-
याक्षिप्कासयामस्तावद्बलमधर्मेकप्रवणम् । अत्र वै मानुषस्वातन्त्र्यम्—
स्वधर्माभिमानपरिकल्पितधर्मेश्वराराधनाविधौ केवलकैवल्योपकारकसद्देव-
ताप्रपत्तौ । कार्यं कामना च बाह्यशक्तिपरवशफलके स्त । भावना
सकल्पादिषु वै स्वतन्त्रा वयः शत्रुमित्रोदासीनावशवदा अबलकले-
बरनाट्यरङ्गभूतभूग्रहाणुकानधीना यावज्जीवितममरणवशगाश्च । शिक्षा-
महे तावत्तत्प्रत्ययद्रढिमान यः अस्मान् सततं धर्मागणगोचरान्
विधत्ते । मततः प्रत्यक्षधर्माणस्सन्तः कार्याङ्गणमवतराम । प्रथमं यदा
बाह्याभ्यन्तरयोर्विरोधः स्वान्ते प्रतिभाति तदा स्वान्तस्वातन्त्र्यस्थापनाय
कश्चन दुराग्रहः कश्चन प्रबलो देवताविद्वेषश्च जायते । मुमुक्षूणां
सर्वेषां कर्तव्यमिदं—यत् विमुखीभूतविधेरवज्ञानं, अधर्मस्यानवरतं
विद्वेषणम्, समत्सरप्रबलशक्तिप्रहितदुःखसहनं च । वस्तुतस्तु अव-
ज्ञानादिकमपि बन्ध एव, यतस्तदधर्मसबलितं प्रपञ्चज्ञानस्य विषयं
करोति । प्रपञ्चविरोधसरभे अस्ति कापि प्रवृत्तिः मुमुक्षुर्जेया । क्रोधो
ज्ञानस्य पराभवः न त्विच्छाया । कर्मयोगिना सुखबीजं स्वातन्त्र्यं
इच्छास्कन्दनजनितं न तु भावनापराभवजनितम् । इच्छास्कन्दनेन
जन्यते विरक्तिः, भावनाजयेन जन्यते कलाविलासदर्शनविन्यास-
रसास्वादश्च येनान्ते अजय्यं जगज्जयाम् । रसास्वादाऽपि साध्य-
अकामहृतस्य प्रतिभाशालिन एव नेतरस्य । एवमिह तेषामेव स्वातन्त्र्यं
ये ससारे क्षणिकानां कतिपयभोगसामग्रीणां अनर्थिनः ॥

विरक्तेरावश्यकता यद्यप्यधर्मशक्त्यस्तित्वलिङ्गं तथापि किंस्त-
मतः विरक्त्युपदेशे अधर्मविद्वेषणापेक्षया किञ्चित् पाण्डित्यं व्यनक्ति ।
ऊर्ध्वकर्तव्यमेवैतद्वदस्मदभीष्मितपदार्थानां केचनानवाप्या अपि धर्मो-
पकारकाः । इतरेषु नर्ततथा अपूर्वोपकारिणः । परित्याज्यं यत्तदधर्म्य-

मेवेति मतिर्जातुचिदप्रमापि अशृङ्खलरागिमतानुरोधेन न सर्वदा केवल
भ्रम एव । किंच न कदाप्येव भ्रम इति साधयन्ती आस्तिकता विविध-
निगूढतत्त्वप्रकाशनद्वारा चित्तशुद्धयै कल्पते ॥

अमृत्यन्योऽपि शोभनाश विरक्तौ । अपूवोपकार्यपि वस्तु
दु साध चेन्नातीव काक्षितव्यम् । जायते हि नैष्ठिकविरागः सर्वस्मिन्नपि
जने आशु वा मन्द वा । बालकानां न किंचिदप्राप्य प्रतिभाति ।
सयत्नमपेक्षितमप्यनवाप्य वस्तु अगोचरमेव तेषाम् । अथापि देहपा-
तात्, रोगात् दारिद्र्यात् प्रभुसम्मितविधिशासनाच्चात्माकमेकैकोऽपि
अवगच्छेन्न हीद विश्रमम्मदर्थं विनिर्मित, अम्मत्समीहितवस्तूनि सर्वथा
समीचीनान्यपि दैवेन प्रतियुज्येरन्निति । प्राप्तायामापदि अचलितचेतसा
आशानाशसहन, निरर्थकानुशयाच्चित्तप्रत्यायन च धीराणां लक्षणम् ।
एतावन्मात्रवशवर्तिता विधे न केवल न्याय्या अपि तु विज्ञान-
स्यातिपन्था ॥

केवल विरक्ति न पर्याप्ता सामग्री पुरुषार्थसाधने । केवल-
विरक्त्या न मोक्षमण्डप निर्मातुं शक्यते । अस्ति मोक्षमूचना भावना-
प्रपञ्चे, सगीतशिल्पयो, शान्ते दर्शनप्रपञ्चे, उज्ज्वलकविताया च
यत्र रस प्रकाशते दूरे दु खत्रयाभिघातात्, दूरे परिणामभयात्, दूरे
ससारशोकमोहादिभ्यः । एतत्प्रमेयचिन्ताया मानसे आनन्द आविर्भूय
ससारस्वरूपविमर्शनपटिमान मुक्त्युपकारिसामग्रीसंग्रहसामर्थ्यं च जन-
यति ॥

प्राङ्मुक्तिमण्डपप्रवेशात् अन्धतमस तरेत् नित्यशुद्धपुरुषानन्तरा
पापविद्धपुरुषास्सर्वे । निर्वेदोऽन्धतमसस्य द्वारम् । भ्रमाशोपलनिबद्धं
तस्य कुट्टिमम् । अहकारस्तत्रहीयेत । अनियततृष्णावेगस्तत्र शाम्येत ।
एव हि पुरुष विधिसाम्राज्यतो मुच्येन । ततोविरक्तिद्वारेणान्धतमसा-

हृदिर्नीयते पुरुष । अन्ते स प्रविशति ज्ञानप्रभाकरविभ्राजमानमुद्देश
यत्र काचन प्रतिनवप्रज्ञा कश्चननूतनानन्द किंचन नवीन वात्सल्य
च मुमुक्षुहृदय विकासयति ॥

ससारविद्वेषवैफल्यजनितनिर्वेदमन्तरेण विधिसाम्राज्यवशे वर्त-
माना अपि अचेतनप्रपञ्चमनाराधनीय यदा मन्यामहे तदा शक्त्याम
बुद्धौ अविद्यामय विश्व तथा विपरिणामयितुं यथा मृन्मय जगत्
हिरण्यमिव भासते । बहुविधवस्तुपदे लोके—भूधरजलधरद्रुमाकृतिषु
मानुषजीवितचारितेषु, कालस्य अप्रतिहतशक्तौ च पश्यत्येव समग्र
सौन्दर्यं प्रौढभावनासरणि । एव प्रकृतेरन्धकविलासोल्लासे पुरुष
निगूढ किंच न स्वाम्य तनुत एव । विषयो यथायथा अधर्म्यतर
अनियतेच्छाप्रतीपश्च तथातथा अधिकतरो विजयस्तस्य तथाभावित-
चेतनस्य सिकताभिरिव तैल लभमानस्य निर्जितप्रतीपशक्तिविवर्धित-
निजबलौघस्य ॥

सर्वकलासु नायकवघान्त रूपक (Tragedy) प्रौढतम विज-
यते । तत्रहि पुरुष भाम्बर स्वशिविर अरिराज्यमध्ये शिखरीशिखर
मधिरुद्ध निर्माति । तस्य दुर्गमे प्रेक्षणस्थाने अरे कटका आयुध-
शाला श्रेणी दुर्गाणि च प्रत्यक्षाभवन्ति । शिखरप्राकारेषु स्वतन्त्र-
जीवित प्रसरत्येव । दुःस्वमरणनिर्वेदादिचमू. विधिचक्रवर्त्युपजीविसेना-
न्यश्च अमीतशिविरवासिनामभिनवमनोहरदर्शनीया भवन्ति । धन्य
तच्छिविर धन्यतमास्ते शिविरवासिन उच्चैश्शैलशिखराश्रयाः । यश्चस्तेषा
मटानां ये कल्पशतसमरान्ते अमोघ स्वातन्त्र्यरत्न ररक्षु । वैरिजना-
दूषित च चक्रुःस्वतन्त्रपूरुषपरमधाम ॥

दुःस्वान्तरूपक लोके यावत्तावन्मात्रेण सदा सर्वत्र सन्तमेव गुण
स्फुटयति । मृतदर्शने, दुःसहदुःखानुभवे, गतस्यापुनरावृत्तौ च अस्ति

काचन पवित्रता, भयानकता, जगद्मेयमायानुभवश्च । तत्र अनु-
भूयते कश्चन दुःखपाणिपीडनमहोत्सव । मसरी शोकबन्धैर्लंकेन सह
निबद्धयते । एवभूतममाधिकाले क्षणिकमुखाशा क्षीयते । अवसीयते
अल्पप्रयोजनाप्रवृत्ति । हीयते परामर्श प्रतिदिनजीविन पर्वतीकुर्वता
तृणतुलितवस्तुजातानाम् । परम्परप्रीतिप्रदीपिकर्दीपितजीवितपोत समन्तात्
कालसागरो दृश्यते यम्योत्पतद्भङ्गमये क्षणद्वयमितस्ततो विकीर्यामहे
वयम् । अस्मदुडुपे वाति शनिप्रवात कालिमाद्भूत । अतिघोरबल
मध्यप्रक्षिप्तस्य मनुष्यजातस्य विवशता एकस्या ममुपचीयते व्यक्ता
असहायामपि यावद्धैर्यं यनमानाया शत्रुप्रपञ्चमध्ये अवस्थानुम् । धर्मा-
रिभि महायोधने विजय यश कायाना मुक्तचेतमा सगाय कल्पते,
जीवितमोन्दयाय च ॥

आत्मजगतोर्युद्धेन वैराग्य विज्ञान, दाक्षिण्य च जायते ।
जातेष्वेतेषु प्रारभ्यते पुरुषस्य द्वितीय जन्म । एष जय यत्र
लीलासामग्रीकृतपुरुषा अप्रतिहतप्रकृतिशक्तय—जननमरणे भूतस्या-
पुनरावृत्तिता, शून्याच्छून्यधावति जगति पुरुषस्यातन्त्रता इत्यादय—
विज्ञायन्ते स्वीक्रियन्ते च ॥

अनृणातीत अतिमनोरमम् । निश्चलनरिवा अनीतचित्रलेखा
शोभेत तुलिता शरच्चित्रवनपर्णेन अनुत्कटफूत्कारादपि पतनशीलेन
दशदिशोऽपि चामीकरमयीरिव कुर्वता । अनीतो न विक्रियते ।
अतीतो न पुन प्रवर्तते । नीरोग पुरुष इव सम्यक् स्वपिति
भूतकाल । अतीतविषये विलीनौ कामलोभा । लघु क्षणिक च
यत्तत्तिरोहितम् । यत्तु श्रीमत् शाश्वत च नदेव आजते तारकमिवरज-
न्याम् । अनीतस्य मौन्दर्यममस्कृतचेतनस्य दुःसहम् । निर्जितविषेस्तु
तद्धर्मद्वारम् ॥

आपातत अल्पीयास एव पुरुषप्राणा मध्ये प्रकृतिशक्ती-
नाम् । काल विधिं अन्तक च दासवदनवर्गमाराधयेत्स । तस्य-
शक्त्यपेक्षया पटीयासि तानि । तस्य चिन्तितव्या विषया सर्वे
अपि तदुपहतिविषया एव । यद्यपि महत्य शक्त्य तासा महत्वग्रहण
तासामन्धवैभवनिर्वर्णन महत्तरम् । तादृश निर्वर्णन मोचयत्यस्मान् ।
मा तावदित पर प्राच्यपारतन्त्रयानुरोधेन विधे पुरत दण्डवत्प्रणमाम ।
किन्तु विधिं सुसभाव्य अङ्गीकरवाम । मात्स्यन्यायपारित्याग , क्षणिक
सुखकामनानिरसन, निरन्तरनिरन्तरायलिप्सा—एषा वै मुक्तिः ।
एतन्मुक्तकृताराधनम् । विधिनिध्यानेन लब्धेय मुक्तिः । जितो हि
विधि कालपरिपाकमन्तरा यत्नपूतेन चेतनेन ॥

मर्त्यलोकेन सह समाननिधनरूपपटुतरपाशपिन्दोऽपि मुक्त
पुरुष वेत्ति प्रतिनवा सिद्धिः, सदापार्श्ववर्तिनी आर्द्रयन्ती च दैनिक-
कार्यजातमनुकम्पारसेन । पुरुषायुषमन्धतमसे दूराध्वगमनम् । परोक्ष-
शत्रुभिरास्कन्दितम् । अव्यसेदेन भग्नम् । गम्यस्थान न सर्वेषा
सुलभम् । न तत्र कोऽपि चिरायाटितुमलम् । मध्येमार्गमैकैकशो
नो मित्राणि तिरोधीयन्ते कृतान्तरह शासनगृहीतानि । क्षण एव
तेषा सुख दुःख वा निश्चीयत । कुतस्तेषा साहाय्यम् । तथापि
विज्ञानदीपदानेन तेषा पन्थान आलोकयाम । अनुकम्पारसपायनेन
तेषा क्लेश लघूकरवाम । अविरतवात्सल्येन तान् मोदयाम । उपहते
धैर्ये तानुद्धराम । उदिते निर्वेदे तान् सान्त्वयाम । मा तोलयाम
मात्सर्येण तेषा गुणदोषौ पुण्यपापे वा । किन्तु विमृशाम तेषा-
मनुपपत्ती तेषामनन्तदुःख हेतुभूतमज्ञान च । सदास्मर्तव्यमस्माभिर्यत्ते
समाने अन्धतमसे वयमिव दुःखिनः वयमिव कुशीलवा दुःखदुर-
न्तनाटके । एवमवमितेऽवधौ विरतयोरपि कालचित्रार्पितत्वान्नित्यता

गतयो पुण्यपापयो तेषां विषये प्रभवेन वक्तुं यत्—नतावद्वयमेषां दुःखेषु कारणमभूत् किन्तु यदा यदा एषा हृदयकमल भगवत्प्रकाशेन विचकास तदा तदा मम सहाया प्रोत्साहनेन स्थिरधीरवचन-पुरस्सर महानुभूतिप्रदर्शनेन ॥

क्षणिक परतन्त्रं च पुरुषायुषम् । काले सन्निहिते संवेषामपि गले पतत्येव कालधर्मपाश । धर्माधर्मज्ञानशून्यं प्रध्वंसलील ऊर्जस्वलं कालं निर्घृणं त्वरयति अद्य बन्धुमित्रकलत्राणि पञ्च-तार्मियासु । श्व आत्मैवान्धतामिह प्रविशेत् । एव स्थिते प्राक्प्राणा-पायात् उद्दामविज्ञानमेव वरम् । नियतिभयं विधूय निजनिर्मितमुक्ति-मण्डपे आत्मारोधनं वरम् । दलित्वा मायामात्राज्यं व्यवहारपा-वश्यदुःखात् न्वान्तमरक्षणं वरम् । पुरुषः स्वतः स्वखण्डनमण्डनादिकं सह-माना प्रबलशक्तीस्तृणीकृत्य वरं स्वमनोविप्रबन्धं शेषवद्धारणं माया-सेनाप्यविरामेण ॥

योगनरसिंहार्यः.

अस्मिन् विभवसवत्सरे श्रावणभाद्रपदमासयो श्रीमन्महाराज-
संस्कृतमहापाठशालया मैसूरु सस्थानविद्वत्परीक्षामहासभानिर्णयानुसारेण
मकलशास्त्रविद्वत्परीक्षा प्रावर्तत । तदनुबन्धी संस्कृतपाठशालाविद्या-
गणपति महोत्सव समादरेण महाजनाना उपन्यासेन विदुषा वाक्यार्थेन
विद्यार्थिना संगीतेन च रसिकाना महता सभ्रमेण निर्वर्तित ॥

तत्रान्तरे यैर्महाशये विद्वद्भिरै उदारेण मानसेन विरचिता
उपन्यासा तादात्विकसहृदयसतोषप्रदा तेषा साराश क्रमशः पत्रिका-
यामस्या कालदेशविप्रकर्षवता महतामपि प्रमोदाय प्रदर्श्यन्ते—

उपनिषत्सारार्थ

जन्तूना नरजन्म दुर्लभमत पुस्त्व ततो विप्रता
तस्माद्वैदिकधर्ममार्गपरता विद्वत्त्वमस्मात् परम् ।
आत्मानात्मविवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना सस्थिति
मुक्तिर्नो शतकोटिजन्मसु कृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते ॥
चतुरधिकाशीतिलक्षमितेषु जन्मसु मानवजन्मैव ।
मान्यं यत्र किल बुद्धिरनन्यसाधारणी प्रचकास्ति ॥

अन्यत्रापि जन्मसु शरीरमात्रावनप्रयोजनिका बुद्धिर्वैविध्यत एव
तथापि उत्कृष्टजनुरत्तरप्राप्तिसाधनावलम्बिनी बुद्धिर्मानवजन्मन्येवेत्ययं
विशेषः । मानवजन्मन्यपि पुजन्म प्रशस्यते स्त्रियस्तु रागद्वेषेर्ष्याकलु-
षिता इत्येतद्विदितचरमेव सर्वेषां ससारव्यापृतानाम् । दुर्लभं मानुष-
जन्म लब्ध्वा अत्रैव संपादनीयं आत्मानात्मविवेचनं कुर्यात् ॥

किमिदं आत्मानात्मविवेकं कर्तव्यं इत्यपूर्वतया उपन्यस्यते
विज्ञानात्येव सर्वो लोकः पश्यन् तिष्ठन् व्यवहरमाणोऽहमहमिति

यस्तु अहमिति व्यवहियते स आत्मा यस्तु इदतया व्यवहियते
 अन्मात्मा स इति निश्चितं किं विचारणायमित्याशका ममुन्मिषति यद्यपि।
 भवेदेतदेव यद्येकमेव वस्तु अहमिति निश्चिनुयान् न तु तथा यत
 चक्षु श्रोत्रादीनि परम्परागृहीतग्राहीणि स्फुटतर पृथक्त्वेन निश्चीयमानानि
 अह पश्यामि अह शृणोमि अह स्पृशामि इति एकवाचिना अह-
 शब्देनाभिदधाति। यस्तु त्वदालय कुत्रेति पृष्ठ सकलानपि आल-
 यान् मदीयानाचष्टे न स प्रामाणिकपदवर्गमव्यारोहति अपितु नियत
 य कचिदाचक्षाण एव अनोविचार्य एवाहपदाथ आत्मा तत्र परिदृश्य-
 मानस्य स्थूलवपुषोऽहमर्थत्वे स्वप्ने यत्किञ्चिच्छोणे शयान एवास्मिन्
 शरीरे काश्यादिक गतमिव जानात्यहमर्थम्। इन्द्रियाणा तथात्वे सकलाना
 मिलितानामेव तथात्वे उत एकैकम्येति विवेक्तव्य मिलितानामेव
 तथात्वे एकम्येन्द्रियस्य नाशे आत्मनोऽपि नाशप्रसंग तादृशमेल-
 नस्य तदानीमभावात् एकैकम्य तथात्वे चक्षुषा दृष्ट चक्षुरपगमे
 नानुस्मरेत् द्रष्टुरभावात् अनेकेषा भिन्नाभिप्रायाणा इन्द्रियाणा नियतृत्वे
 नियम्य शरीरमुन्मथ्येताऽपि। मनस आत्मत्वे सुषुप्तौ मनसो लयेना-
 त्सनोऽपि लयप्रसंगेन सुखमस्वाप्समिति कोनुमदर्शित। प्राणस्यात्मत्वे
 आबाल प्रसिद्ध प्राणवायोरहमर्थधायत्व विरुध्येत। अपि च
 स एव शरीरोन्द्रियमनमामधिपतिरिति अधिपतिकार्यं यत् भृत्यान्कार्यं
 विनियुज्य स्वयं तूष्णीमवस्थानं तत् विरुध्येत, यत स्वपत्स्वपि
 इन्द्रियेषु प्राणवायुर्भृत्यवत् मतन पर्यटति। एव अहन्त्वेन व्यवहिय-
 माणेषु आत्मा कोऽपि नेति निश्चिते दृश्येभ्य एतेभ्योऽतिरिच्यमान
 यत् दृष्टृस्वरूप विभानि तदेव आत्मा। तादृश वस्तु अवश्यमभ्युपेय
 देहेन्द्रियमन प्राणा दृश्या एव मम देह मम चक्षु मम मन
 मम प्राणा इति वेद्यतयाऽनुभूयमानत्वात्।

अत्रार्थे श्लोक —

दृश्य यद्रूपमेतद्भवति च विशद नीलपीताद्यनेक
सर्वस्यैतन्मय दृग्वै स्फुरदनुभवतो लोचन चैकरूपम् ।
तद्दृश्य मानस दृक्परिणतविषयाकारधीवृत्तयोऽपि
दृश्या दृग्भू एव प्रभुरिह स तथा दृश्यते नैव साक्षी ॥

इति । लोके उष्ण जल दग्ध दाह्य च भवति । एव सूक्ष्मेधनरूपागारा
अपि अन्यत् दहनि दह्यते च वह्निना । वह्निस्तु दग्धैव न दाह्य
कदापि केनचिदपि तद्वत् चक्षुर्नीलपीतादिद्रष्टृ मनसा दृश्यते
मनोऽपि बुद्धिवृत्तिभिः दृश्यते बुद्धिवृत्तीनामपि द्रष्टा साक्षी एक । स
नान्येन केनचिदपि दृश्यते तादृश द्रष्टृवस्तूनामवधिभूत अर्गीकरणीय
तदेव आत्मा तदेव ब्रह्म । तच्च सच्चिदानन्दरूप एतस्यैवानन्दस्य
लवा ससारसुखानि एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवति ”
इति श्रुति वक्ष्यमाणयुक्तयश्च एतमर्थमुपोद्बलयति ॥

तथाहि-लोके सर्वैरनुभूयमान आनन्दो विषयैरभिव्यज्यते वा जन्यते
वा इति विमर्शनीय, तत्र विषयैर्जन्यते इत्यत्रगच्छाम यत् आ पडितेभ्य
आच पामरेभ्यो जना सुखानुबुभूषया सकूचदनवनितादीन् विषया
नेवोपाददत । स्वमेव सुख यदिम्यात् किमिति अनेकक्लेशसकुलान्
विषयान् अभिलष्येयुः । अभिव्यक्त्यर्थं विषयापेक्षेत्यपि वक्तुं न शक्यते
नित्यस्य स्वरूपसुखस्याभिव्यक्तौ प्रतिबधकाभावात् इत्याशकाया
स्वरूपसुखमेव विषयैरभिव्यज्यते इत्यमुमेव पक्ष सुष्ठु साधयाम
स्वरूपसुखस्याप्यनभिव्यक्तौ माया तत्कृता तृष्णा च निदान
अत एव तैत्तिरीयश्रुति सार्वभौमादिहिरण्यगर्भावाधिशतशतगुणा-
नानदानभिदधाना प्रतिपर्याय अकामहतानुभाव्यमानदमतर्भावयति ।
आनन्दा विषयैरेव ज्ञायेरश्चत् अकामहतस्य सार्वभौमादेरिव

सकूचदनादिविषयाभावेन कथं तादृशसुखानुभवः श्रूयते । लोकेऽपि
विषयलाभो विषयावलम्बिनीं तृष्णां शमयन् स्वरूपसुखमेवाविष्कुरुते
एतन्मित्रार्थे श्लोका ॥

आत्माऽकपः सुखात्मा स्फुरति तदपरा त्वन्यथैव स्फुरती
स्थैर्यं वा चञ्चलत्वं मनसि परिणतिं यति तत्रत्यमस्मिन् ।
चाचल्यं तु खहेतुर्मनस इदमहं यावदिष्टार्थलब्धि
तस्या यावत् स्थिरत्वं मनसि विषयजं व्याप्तुं तव देव ॥
यद्वत्सङ्गं रताते निमिषमिह मनस्येकताने रमे म्यात
स्थैर्यं यावत्सुप्तो सुखमनतिशयं तव देवाय मुक्तो ।
नित्यानन्दं प्रशाते हृदि तदिह सुखमर्धेयं माहर्च्यं
नित्यानन्दस्य मात्राविषयमुन्मिदं युज्येत तेन वक्तुम् ॥
विषयपत्रपि लब्धेषु तदिच्छोपरमे मनि ।
आत्माभिमुखवर्धवृत्तावानन्दं प्रतिविवति ॥

इति । विषयैरानन्दो जायते तमेवानुबुभूषतीति वदन् प्रष्टव्यं गीतनृत्य-
वनितादिसकलविषयममाकुलोऽपि राजा जामात वा समग्रानपि
विषयान् त्यक्त्वा किमिति निद्राकालेऽनुभाव्य स्वरूपसुखमेवाभिलक्ष्य
धावतीति—निद्राकालेऽनुभूयमानं सुखं विषयानुबन्धि न भवति विषय-
रहितोऽपि रक्तं सुप्तोऽस्थित एतावत् कालं सुखमम्बाप्समिति अनुसंधत्ते
मृदुशय्यादिमुखं निद्रामुखमथोजयति न तु शय्यादिना निद्रामुखं
जन्यते । एतदर्थं श्लोका —

जाग्रत्यामतरात्मा विषयमुखकृतेऽनेकयत्नान् विधाम्यन्
श्राम्यत्सर्वेन्द्रियोधोऽधिगतमपि सुखं विस्मरन् याति निद्राम् ।
विश्रामाय स्वरूपे त्वतितरसुलभं तेन चातीन्द्रियतत्
सौख्यं सर्वोत्तमं म्यात् परिणतिविरसादिन्द्रियोत्थात्सुखाच्च ॥

पक्षावभ्यस्य पक्षी जनयति मरुत तेन यात्युच्चदेश
 लब्ध्वा वायु महात श्रममपनयति स्वीयपक्षो प्रसार्य ।
 दु सकल्पै विकल्पै विषयमनुकदर्थीकृत चित्तमेतत्
 खिन्न विश्रामहेतो स्वपिति चिरमहो हस्तपादान् प्रसार्य ॥
 आश्लिष्यात्मानमात्मा न किमपि सहसैवातर वेदबाह्य
 यद्वत्कामी विदेशात्सदनमुपगतो गाढमाश्लिष्यकाताम् ।
 यात्यस्त तत्र लोकव्यवहृतिरग्निला पुण्यपापानुबन्ध
 शोको मोहो भय वा समविषममिद नस्मरत्येव किञ्चित् ॥
 चित्त यदा कार्यातरे व्याप्रियते तदा मिष्टान्नसवीतवनितादौ सन्नि-
 हितेऽपि नानुबुभूषति तत्सुख असत्यपि उक्ते विषयजाते शते
 मनसि सुखमनुभूयते अत एव भगवान् पापठीति—
 ये हि सस्पर्शजा भोगा दु खयोनय एव ते ।
 आद्यतवत कौतेय न तेषु रमते बुध ॥
 अशातस्य कुत सुख इति—
 अविषयस्य कुत सुखमिति नावदत् ।
 सुखमात्यतिक यत्तत् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
 यलब्ध्वा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत ॥
 यास्मिन् स्थितो न दु खेन गुरुणापि विचाल्यते ॥
 इति । स्वस्वरूपमेव सुख अत्यादरेण शसति । अन्यदप्यालोच्यता—
 विद्यमानेऽपि विषये साधुत्व कदाचिदनुसदधाति अनुभवति च सुखम् ।
 कदाचित् तस्मिन्नेव विषये असाधुतामनुसधाय नानुभवति सुख अत
 एव भर्तृहारि ग्राह—
 वयमिहपरितुष्टा बल्कलैस्त्वदुकूलै
 समग्रह परितोषो निर्विशेषो विशेष ।

स तु भवतु दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥

यथा हि कश्चित् श्वा आर्द्रमस्थि खादन् निर्भिन्नसक्त्विनि सृत-
स्वीयमेव रुधिर अस्थिविनि सृतमिनि भ्रमन् मुहुर्मुहुस्तदंवास्थ जिघ-
त्सति लभते च दष्ट्राव्रण तद्वत् लोक स्वीयमेव सुख विषयजन्यमिति
आत्मा विषयाननुधावति विषयतृष्णा यदा वर्धते तदा स्वीयमपि
सुख तिरोभवति लब्धे च विषये तृष्णा विलीयते विषयातरतृष्णा
प्रादुर्भावावधि आत्मसुखमेवाभिव्यज्यते एवमेवावर्तितं वध्नीति लोको
विषयतृष्णाकर्षितः । विषयसपादन पूर्वक सुखानुभवन पामासपाद्यक-
ङ्कयनेन तप्तवारिसेचनेन च सिसपादयिषित सुगानुभवमनुकुरुते ।
विशेषतोऽभिव्यज्यमानमपि पामाकङ्कयनतप्तोदसंचनसुख नाभिलष्यति
जन तदनतसमाव्यमानदु खानुसधानसलग्नमनस्तथा । तथैव विषयलब्धि-
समनतरभावि सुख पूर्वतनदु खेन भाविदु खेन च ग्रम्यमानमिति
नाभिलष्यति प्रेक्षावान् ॥

सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मैव जीव अत एव सुप्तौ स्वमपीतो भवति
तस्मादेन स्वपितीत्याचक्षते इत्येकत्राचष्टे । अन्यत्र च अहरहर्ब्रह्मगच्छत्य-
एतं ब्रह्मलोक न विंदत्य नृतेन हि प्रत्यूढा इति सुप्तौ ब्रह्मलोकगमन-
माचक्षाणा श्रुतिः जीवब्रह्मणोरभेद स्फुटयति । ब्रह्मलोकशब्दस्य ब्रह्मैव
लोक इत्यर्थ एव चिकीर्षितः । बहुतप साध्यो ब्रह्मणोलोक सर्वप्र-
जामि प्रत्यह कथं प्राप्येत ॥

नच वाच्य जीव अल्पज्ञो दु स्त्री सर्वज्ञ नित्यतृप्त ब्रह्म कथं
भवेदिति—यत चैतन्यमेकमेव मायोपधिवशान् सर्वज्ञ चित्तोपाधिवशात्
अल्पज्ञमिव भाति यथा एक एव पुमान् सुवसन सद प्रवेष्टुमर्हति स
एव चीरन्तेले गृहाम्यतर एववसति । यथावा अच्छभाजनस्थमम पानीय

भवति तदेवमलिनामत्रस्थ पादशौचादौ विनियुज्यते । यथावा औष्ण्य-
प्रकाशात्मा वह्नि इधनभेदौर्भिद्यमान इव भासमानोऽपि एक एव
यथावा काचनघटीमृत्कुभयोरवर एकमपि उपाधिभेदान् भिद्यत इव
भाति उपधेयाभेदेऽपि उपाध्यो काचनमृद्धटयोर्मूल्यभेदवत् चैतन्यस्यै-
क्येऽपि मायामनोरूपोपाध्योरुत्कर्षनिकर्षौ न निवारयितुं शक्यौ । उपा-
ध्यनुरोधे एकस्यापि चैतन्यस्योत्कर्षनिकर्षौ भवत इव । उपाध्यनुरोधाभावे
उत्कर्षनिकर्षौ न भात एव । अत्रार्थे “ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति—

यदा सर्वे प्रमुच्यते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

इत्यादिश्रुतयः परसहस्रा प्रमाण । उपाधिमनुरुध्यप्रवहति व्यवहारकाले
ईश्वरस्य सेव्यत्व जीवस्य सेवकत्व वैकुण्ठकैलासदीना व्यावहारिक सत्यत्व
अद्वैतिनोऽप्यभ्युपगच्छत्येव । इतोऽप्यधिक पारमार्थिकसत्य वस्तु एक-
मगीकुर्वते ॥

तावता सगुणानां हरिहरादिमूर्तीनां पूज्यता प्रतिपादयद्भिर्ग्रन्थात-
रैर्न कश्चिद्विरोधः । एव च दुर्लभ मानवजन्म लब्ध्वा कथञ्चित् सुखस्वरूपं
ब्रह्मैवाहमिति साक्षात्कृत्य—

आत्मानं चेद्विजातीयादयमस्मीति पूरुषः ।

किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसज्जरेत् ॥

आत्मन्येव च सतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ।

इति श्रुतिस्मृत्यनुसारेण कृतकृत्यो भवेदिति ॥

शिवम्

स्यादेतदेव यद्यर्थाकारा बुद्धिः स्यात् निराकारा तु नो
बुद्धिः आकारवान् बाह्योऽर्थः ॥

अत्र प्रतिविधीयते -- स्यादेतदेवमिति ॥ अयमाशयः — यदुक्त-
मेकमेव ज्ञानं ग्राह्यं ग्राहकं चेति, तर्लिकं क्रियाकर्मत्वाभिप्राय उत
करणकर्मत्वाभिप्राय अथ वा कर्तृकर्मत्वाभिप्रायम् । नाद्यं न हि पाकः
पच्यते छिदा वा छिद्यते । न द्वितीयतृतीयौ, न ह्यङ्गुल्यग्रेणैवाङ्गुल्यग्रं
स्पृश्यते, नाप्यङ्गुल्यग्रमात्मानं स्पृशति । आसा विधाना दृष्टान्ते
क्वचिदप्यदर्शनात् ज्ञानेऽपि नास्ति सभव इति ॥

अथ ज्ञानं स्वयमेव प्रकाशते, नान्यमपेक्षते, तदेतत्स्वयंप्रकाश-
त्वमेव ग्राह्यमेव ग्राहकमिति प्रकारान्तरणोच्यते न पुनः कर्मत्वमिति
चेत्, तर्हि ज्ञानं कस्य प्रकाशते, न तावदन्यं पुमानस्ति, तत्र स्वयमेव
स्वस्मै प्रकाशमानं अहं नीलमिति प्रत्यगात्मवृत्तिः स्यात्, इदं नीलमिति
तु परावृत्तिः ज्ञानमुत्पद्यते । अतो नैकस्य ग्राह्यता ग्राहकता चेति ॥

यद्यपि दीपधीशब्दा त्रयं स्वप्रकाशका इति जगत्यास्ति
प्रवादः । स चाविचारितरमणीयः—दीपो हि चक्षुषा गृह्यते ग्राह्यत्व-
र्थम् । शब्दोऽपि समयग्रहणपूर्वकमर्थं प्रकाशयति स्वयं श्रोत्रेण गृह्यते ।
एवं ज्ञानमापि विषयं प्रकाशयति स्वयमनुमीयते इत्युच्यते । दीपस्य
दीपान्तरानपेक्षामात्रेण स्वयंप्रकाशप्रवादः । शब्दस्य तु शाब्दबोधे-
शब्दोऽपि भासते इति वैयाकरणाभिमानमूलः । ज्ञानस्यापि साधक-
सिद्धिं विना साध्यसिद्धिर्नेति स्वप्रकाशवादोऽवृथाऽऽग्रहमूल एव ।
तस्मात् ज्ञानमेव मुख्यं प्रकाशकम् ॥

यस्त्वात्मा ग्राह्यो ग्राहकश्चेत्युच्यते तत्रापि न ज्ञानस्य ज्ञेयान्न
कश्चिद्वेदोऽस्ति भवताम् । अस्माकं तु स्वरूपेणैकोऽप्यात्मा धर्मरूपेण

स बहिर्देशसबद्धः—इदमिति प्रतीयते ॥

कथंचिद्विज्ञ । तदस्य ज्ञानरूपेण ग्राहकत्वं द्रव्यादिरूपेण ग्राह्यत्वमतो नैकत्वम् । यद्वा—ज्ञानविशिष्टो धर्मी ग्राहक द्रव्यत्वादिविशिष्टो ग्राह्य इति भेदः ॥

तर्हि कथमहप्रत्ययस्य प्रत्यग्वृत्तित्वम् ? एतदुक्तं भवति—अहमिति प्रत्यय आत्मकर्तृक आत्मकर्मकश्चेति । अत्रोच्यते—सर्वमपि ज्ञानमात्मन्येवोत्पद्यते इति आत्मकर्तृकत्वमहप्रत्ययस्यापि सिद्धम् । विषय मन्तरेण प्रत्ययत्वासम्भवात् आत्मैव विषय इति अगत्याऽभ्युपगन्तव्यम् । प्रत्ययस्य तु नैवावभासः । कारणं तु—प्रत्ययो हि ज्ञानं तच्च कारणं क्रिया कर्ता वा—भवतु । इदं नीलमित्यत्र त्रयाणां अन्यतममपि नोल्लिख्यते । ग्राह्यरूपस्य नीलमात्रस्य वेदनात् । नीलमहं जानामीति प्रतिभासस्तु अनुव्यवसाय इति नैयायिकमतम् । आनुमानिक इति वैदिकमतम् ॥

अथ ग्राहकादत्यन्ताभिन्नत्वे च ग्राह्यस्य तदनुभववेलायां ग्राहकोऽप्यनुभूयेत । तद्वदेव वा ग्राह्योऽपि नानुभूयेत । न ह्येकस्य युगपत् ग्रहणमग्रहणं च सम्भवतीत्याभिप्रेत्याह—स बहिरिति ॥ अनेन वाक्येन ग्राहकांशतो निष्कृष्टस्य ग्राह्यांशस्य नीलपीतादेः प्रत्यक्षविषयत्वमस्तीति निरूपितम् । केचित्तु—अर्थाकारत्वे नीलपीतादेः बहिर्देशसबद्धत्वं हेतुरुच्यते बहिर्देशसबद्धो ह्याकारः कथमान्तरस्य ज्ञानस्य स्यादिति व्याचक्षते । तदयुक्तं—बहिर्देशः तत्संबन्धो वा परस्यासिद्धः कथमसौ हेतुरुच्यते इत्याक्षेपापत्तेः । इत्थंचायं भाष्यार्थः—स एव हि नीला-ह्याकारः बहिर्देशसबद्ध इदमिति ग्राहकाद्विविक्तं प्रतीयते न बुद्धिरिति ॥

वैभाषिकास्त्वाहुः—सत्यं ग्राहकाद्विज्ञमेव ग्राह्यं तच्च ज्ञानमेव

अर्थविषया हि प्रत्यक्षबुद्धिः न बुद्ध्यन्तरविषया । क्षणिका हि सा न बुद्ध्यन्तरसमकालमवस्थास्यत इति ॥

उत्पद्यमानैवासौ ज्ञायने ज्ञापयति चार्थान्तर प्रदीपवदिति यद्युच्यते । तन्न—न हि अज्ञातेऽर्थे कश्चिद्बुद्धिमुपलभते । ज्ञाते त्वन्नुमानादवगच्छति । तत्र यौगपद्यमनुपपन्नम् ॥

ननूत्पन्नायामेव बुद्धौ ज्ञातांऽर्थं इत्युच्यते । नानुत्पन्नायाम् । वाऽतीत, नार्थ इति । तन्मतमपाकरोति—अर्थविषयेति ॥ हि यत प्रतीत्यनुरोधात् अर्थविषय प्रत्यक्ष तत एव न बुद्ध्यन्तरविषयमित्यर्थः । तत्र हेतुः—क्षणिकेत्यादि ॥ ब्राह्मत्वेन भिमतस्य ज्ञानस्य ग्राहकत्वाभिमतज्ञानोत्पत्तिसमयेऽवस्थित्यभावेन यौगपद्यविरहात् बुद्ध्योरेव न ग्राह्यग्राहकते इत्यर्थः ॥

अथ विज्ञानवादी बाह्यार्थवादिन बोधयति—उत्पद्यमानैवेति ॥ जायमानमेव ज्ञान प्रतिबन्धानभ्युपगमात् ज्ञायमानमेव सत् अर्थं गृह्णातीति भवताऽप्यभ्युपगन्तव्यम् । स्वस्य च ग्रहणे सति तस्यैवायमाकारो भवतीत्यर्थाभावसिद्धिरिष्टा सेत्स्यतीति भावः । सत्य नास्ति प्रतिबन्धः । तथापि ग्राहकाभावान्न तदा गृह्यते । लिङ्गाभावाच्च ग्राहकाभावः । ज्ञातत्वं च लिङ्गं तदा न विद्यत इत्यभिप्रायेण परिहरति—तन्न न हीति ॥ यौगपद्यमिति ॥ ग्राह्यग्राहकयोस्समकाल इत्यर्थः । अथ वा—ये तु वैशेषिकादयः बाह्यार्थवादिन “घटमहं जानामि” इत्यनुव्यवसायरूपमेवार्थग्रहणं मन्यन्ते तेषामेव पूर्वोक्तं बोधम् । तन्निराकरणप्रयोजनमिदं—ज्ञानस्योत्पत्तिसमये ग्रहणाभ्युपगमे निराकारस्य तदयोगात् ज्ञानमेवाकारवत्स्यादित्यर्थनाशः स्यात् । अतोऽर्थाभ्युपगमविरोधी ज्ञानग्रहणाभ्युपगमस्तेषामित्येतदुच्यत इति ॥

नन्विति ॥ अयमाशयः—ज्ञानस्योत्पत्तिरूपलब्धश्चेति द्वयं युग-

अतः पूर्वं बुद्धिरुत्पद्यते । पश्चात् ज्ञातोऽर्थः ॥

सत्यं पूर्वं बुद्धिरुत्पद्यते न तु ध्रुव ज्ञायते । भवति हि कदाचिदेतत्, यत् ज्ञातोऽप्यर्थस्सन् अज्ञात इत्युच्यते ॥

पदिति तावदविवादम् । तच्चु भर्तोपलब्धे प्राक् पश्चाद्युगपद्वेत्येताव-
चिन्त्यम् । अत्र सिद्धान्ती अर्थसवित्ते पश्चात् ज्ञानसवित्तिं ब्रवीति
“ज्ञाते त्वनुमानादवगच्छति” इति । तदस्य ज्ञानोत्पत्तिरपि पश्चादेवा-
भिमता । न च तद्युक्तम् । अतो ज्ञानोत्पत्तिं तावत् अर्थसवित्ते प्राग-
पकर्षामीति मत्वा ननूत्पन्नायामित्याह । तदपकर्षे च तत्सवित्तिरपि
प्रागेव सिद्ध्यति । न हि निराकारोपलब्धिरस्ति । नाप्यर्थज्ञानयोर्वि-
वेकेनाकारद्वयं दृश्यते । ततो ज्ञानस्यैवायमाकार इति अर्थाभाव-
सिद्धिरिति ॥

अत्र सिद्धान्ती अर्थस्यैव पूर्वं सवित्ति न तु बुद्धेरिति साध-
यति—सत्यामिति ॥ कथं पूर्वं न ज्ञायत इत्यत्राह—भवति हीति ॥
अयं भावः—ज्ञातो मया वसन्तेऽस्मिन् देशे कोऽपि पुरुषः सप्रति
विस्मृतवानस्मीति पूर्वत्र ग्राह्ये देवदत्ते स्मृतावप्रतिभासमानेऽपि
तद्गोचरं ज्ञानं प्रतिभासते । ग्राहकादभिन्नत्वे च ग्राह्यस्य तत्रापि
स्मरणं स्यात् । तदेवमेकस्य ग्रहणान्वयेऽन्यस्य व्यतिरेकात्सिद्धं भिन्नत्व,
भिन्नत्वे सिद्धे बुद्धेरुत्पत्तावपि न तदानीं तस्यास्सवित्तिरित्यत्र ग्राह्य-
विनिर्मुक्तस्य ग्राहकस्य सवित्तिरेव फलद्वारा प्रमाणम् । यथा—
पूर्वोपलब्धिसाधनस्य ज्ञानाकारत्वसिद्धिं फलमिति ॥

एतदुक्तं भवति—नीलाकारं चेत् ज्ञानं न तन्निर्मुक्तं स्मर्येत
अतो न ज्ञानं नीलाकारं न च प्राक् शक्यं विज्ञातुम्, अतो न पूर्वं-
ज्ञायत इति । तस्मात् ज्ञानस्योत्पत्तिरुपलब्धिश्च युगपदिति अत्र
अबाधितानुभवेन बाधितत्वादिति ॥

नचार्थव्यपदेशमन्तरेण बुद्धेरूपोपलम्भनम् । तस्मान्न व्यप-
देश्या बुद्धिः । अव्यपदेश्य च न प्रत्यक्षम् । तस्मादप्रत्यक्षा बुद्धिः ॥

अपिच काममेकरूपत्वे बुद्धेरेवाभाव नार्थस्य प्रत्यक्षस्य
सतः । नचैकरूप्यं अनाकारामेव हि बुद्धिमनुमिमीमहे । साकारं
चार्थं प्रत्यक्षमेवावगच्छामः । तस्मादर्थालम्बन प्रत्ययः ॥

अपि च नियतनिमित्त तन्तुष्वेवोपादीयमानेषु पटप्रत्ययः
इतरथा तन्त्वादानेऽपि कदाचित् घटबुद्धिरविकलेन्द्रियस्य
नचार्थेति ॥ अयं भाव — स्वच्छ हि चिन्मात्र नैसर्गिक ज्ञान-
रूप, तत्तु वासनोपप्लवात् आविद्यमाननीलाद्याकार प्रकाशत इति
युष्माक दर्शनम् । ततश्च स्वाभाविकनीलाद्याकारविरहात् तादृश-
नीलाद्याकारवत्तया औपाधिककारवाचकशब्देन न व्यपदेशुमर्हा बुद्धिः ।
यस्मादव्यपदेश्य पररूपेण निरूपणीय मृगतोयवत् न प्रत्यक्षं भवितु-
मर्हति तस्मात् प्रत्यक्षत्वयोग्यताविरहात् बुद्धि न प्रत्यक्षा किंतूत्पद्यमाना
केवल अर्थं प्रकाशयतीति ॥

यद्येवमपि केवल लाघवदृष्ट्याऽवश्यमन्यतरदपहोतव्य तर्ह्यर्थ-
प्रकाशाधीन तेनानुमेय ज्ञानमेव अपहोतव्य न तु प्रत्यक्षासिद्धोऽर्थ
इत्याह—अपिचकाममिति ॥ अयमाशय — केवल लाघवाभिनिवेशे भूत-
चैतन्यवाद एव समाश्रीयताम् । तद्वादरहस्य हीदम् — ज्ञान नाम
धातुः शक्तिर्वा तत्त्वतो नास्ति । ज्ञानस्योत्पादिका या सामग्री तयैव
ज्ञानकार्योपपत्तेः तदुपगमो व्यर्थ इति । तस्मात् बाह्यार्थसद्भावात्
प्रत्ययः प्रत्यक्षादिः अर्थालम्बन न स्वाशालम्बन नापि ज्ञाना-
न्तरालम्बन इति ॥

कार्यकारणभावादेव्यवहारानुरोधेनाप्यर्थसद्भाव साधयति—अपि-
चनियतेति ॥ बाह्यार्थवादिना कार्यकारणभावस्य पारमार्थिकस्य सत्त्वात्

स्यात् । नचैवमास्ति, अतो न निरालम्बनः प्रत्ययः । अतो न व्यभिचरति प्रत्यक्षम् ।

तन्तुषूपादीयमानेषु तज्जन्यस्य पटस्य प्रत्यय नियतनिमित्त स्वविषयस्य पटस्य नियतपूर्ववृत्तित्वेनोपादीयमानानां तन्तूनां ज्ञानेन व्यवस्थितनिमित्तनैमित्तिकभाव उपपद्यते । विज्ञानमात्रवादिना तु एतादृशनिमित्तनैमित्तिकभावासिद्ध्या कदाचित् तन्तुज्ञाने घटज्ञानमपि स्यात् । तच्चापि नैमित्तिकमिति । अत्र यद्यपि बाह्यार्थवादिनामपि स्वशक्तिवशादेव तन्तव पटमारभन्ते मृत्पिण्डो वा घटम् । एव ज्ञानवादिनामपि तन्तुज्ञानानि पटज्ञानम्, न घटज्ञानमिति सिध्यत्येव व्यवस्था । यदाहु —

यथाविधं घटं दृष्ट्वा द्वैतवादी विचेष्टते ।

ज्ञात्वा तथाविधं ज्ञानं अद्वैती किं न चेष्टते ॥ इति ॥

तथापि—अर्थवादमते शक्तिमदपि हि तन्त्वादि कारणं न सर्वदा कार्यमारभते । किं तु शक्त्यभिव्यञ्जकं सहकारिणमपेक्षते । तच्च सहकारिसमवधानं देशकालतन्तुवायादिनिमित्तकम् । अस्ति च शक्तिरपि भावानां विलक्षणा पारमार्थिकी । ज्ञानमात्रवादिमते तु असत्यर्याय-संवृत्तिसत्यमेव सर्वमिति व्यवस्था न सिध्यति । किंच—असत्यपि मृत्सलिलच्छन्नबीजज्ञाने अङ्कुरज्ञानं दृश्यते । अतो न कारणज्ञानं न कार्यज्ञानस्य जनकमिति शक्यते वक्तुम् । अतः प्रत्यक्षस्य बहिः प्रवृत्तिसामर्थ्यसमवात् न तत्परीक्षया बाह्याभावासिद्धिः । प्रत्यक्षविरुद्धत्वाच्च नानुमानेनापि बाह्याभावासिद्धिरिति भावः । प्रत्यक्षसूत्रार्थमुपसंहरति—अतो न व्यभिचरतीति ॥ एवलक्षणकत्वात्प्रत्यक्षस्य न युक्ता निमित्तपरीक्षेति । इत्थमर्थालम्बनत्वे प्रसाधिते विचारशास्त्रं सर्वमपि निराकुलं भवतीति भावः ॥

प्राकट्यम्

अथात्रात्यावश्यकं ज्ञातताल क्षणप्राकट्यरहस्य विशदीक्रियते—
तत्र केचिदाहु—सर्वथा तावदस्ति ज्ञानम् । तथाहि—विद्यमान
एव हि घट कस्यचिदेव व्यवहारयोग्यतामापद्यते न सर्वेषा नापि सर्वदा ।
तदवश्यं यो यदा तेन व्यवहरति तस्य तद्व्यवहारानुगुणं कश्चिदति-
शयस्सजात इति कल्पनीयम् । स ज्ञानमिति । तच्च प्रागपि व्यव-
हारात् अवगम्यते । अव्यवहरन्नपि जानोऽयमर्थो मयेति आत्मनाऽ-
र्थस्य ज्ञातत्वमनुसधत्ते इति सर्वजनीनमेतत् । न च ज्ञानमविदुषा
ज्ञातत्वरूपत्वं शक्यं वेदितुम्, यदेव प्रागेव व्यवहारादुपजायमान
ज्ञातत्वावगमः असति ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वे कथमुपपद्यते इति ॥

अत्राहु—ज्ञानजन्योऽर्थगत कश्चिदतिशय प्रकाशनभासनादि-
पर्यायपदवाच्यः । स च पाकजन्यौदनादिगतातिशयवत् अनवगतेऽपि
ज्ञाने शक्यतेऽवगन्तुम् । स एव ज्ञानस्य कल्पक इति ॥

अथ स्यात् स च प्रत्यक्षेऽर्थे प्रत्यक्षावगत कल्पयेदपि ज्ञानम् ।
अनुमानादिषु तु तस्याप्रत्यक्षत्वात् प्राग्व्यवहारात्तद्व्याप्तलिङ्गाभावात् अप्र-
मितस्य चाकल्पकत्वात् न ज्ञानं कल्पयेत् । अनुमितेऽपि चार्थे ज्ञातो
मयाऽग्निरिति अग्निं ज्ञातमनुसधत्ते । अतः सम्यग्वक्तव्यं ज्ञाने प्रमाण-
मिति चेत्—उच्यते ज्ञानक्रियाजनितं ज्ञातुं ज्ञेयेन सह आप्तत्वसंब-
न्धोऽस्ति । स मानसप्रत्यक्षावगतः ज्ञानं कल्पयति सत्यां जिज्ञासायाम् ।
यत्रापि च कश्चिदर्थमनुमूय तद्विषयं ज्ञानमकल्पयित्वैव कालान्तरे तमर्थं
स्मरति तत्रापि स्मृतिज्ञानेनैव अत्मनोऽर्थस्य च द्रष्टृदृश्यत्वसंबन्धे निष्पन्नो
मानसप्रत्यक्षावगते तद्वत्त्वेन च ज्ञाने कल्पिते तस्य इन्द्रियादिप्रत्युत्पन्न-
कारणासम्भवेन स्मृतित्वं निश्चित्य तदनुपपत्त्या पूर्वमनुभवः कल्प्यते । स एव-
मात्मनोऽर्थेन संबन्धः अधिगतिं प्राप्तिं दृष्टत्वं ज्ञातत्वादिपदैरभिधीयते इति ॥

येऽपि च स्वप्रकाशा सविद मन्यन्ते त्रिपुटीज्ञानवादिनः प्राभाकरादयः, तेषामपि स्वोत्पत्तिसमये सवित्ति—स्वात्मानं कर्तारं वेद्यं च भासयति, न तु स्वस्या वेत्तुर्वा सवेद्यसंबन्ध, तस्य तदानीमनिष्पन्नत्वेन असत्त्वात्, ततो निष्पन्नाया सवित्तौ तस्या कर्तुश्च तद्वारा विषयसंबन्धे जाते ततो मानसेनैव प्रत्यक्षेण अर्थेन सह सवित्ते. सवेत्तुश्च संबन्धोऽवभासत इत्यङ्गीकर्तव्यम् । सविदन्तरोत्पत्तिसमये च पूर्वसविदो नष्टत्वात् न तद्धर्मत्वेन सवेद्यसंबन्धः शक्यः प्रत्यक्षेण ग्रहीतुमिति सवेत्तृधर्मभूत एव सवेद्यसंबन्धः कोऽपि नाम सर्वजनीनं प्राप्तिपर्यायो गृह्यत इति तत एव सवित्तिरूपक्रियाकल्पनासिद्धेरलं स्वप्रकाशतया । तस्मिन् “नष्टज्ञातेऽर्थे काश्चिद्बुद्धिमुपलभते । ज्ञाते त्वनुमानादवगच्छति” इति ॥

इदं पुनरिहावधेय—इमामेव च प्राप्तिं अधिगतिरिति न्यायबिन्दु-टङ्काकारं धर्मोत्तराचार्यं व्यपदिशति । तदभिप्रायेणैव अनधिगतार्थ-गन्तुं प्रमाणमिति लक्षणं प्रवृत्तम् । इदं रहस्यमनवगतवन्तोऽधुनातनाः अनधिगतत्वं विचित्रतरं परिष्कुर्वन्तोऽद्यापि क्लिश्यन्त इति ॥

एव द्विविधे बाह्यापलापे प्रमाणमूलकं एतावता प्रबन्धेन निराकृतं । प्रमेयमूलकोऽपि किञ्चिदुपन्यस्य निराकृते । यथा—न तावदणूनां ग्राह्यत्वम् । तेषामतीन्द्रियत्वात् क्षणिकानां च तेषां समुदायभावासम्भवात् परमाणुसंयोगस्य व्याप्यवृत्तित्वाव्याप्यवृत्तित्वविकल्पदुःस्थत्वेन अवयवेष्ववयविना कृत्स्नैकदेशविकल्पदुःस्थत्वेन च परस्परसंयुक्तावयवतदाश्रितावयव्यभावाच्च । नाप्यवयविजात्यादीनां ग्राह्यत्वम् । व्यतिरेकाव्यतिरेकविकल्पाक्षमाणां गगनकुसुमायमानत्वात् । अतो बाह्यनास्तीति ॥

तत्र युक्तम्—यदाऽऽन्तरस्य ज्ञानाकारस्य न कथाचित् ग्राह्यत्वं तदा बाह्यस्यैव ग्राह्यत्वं बलादभ्युपगन्तव्यम् । ततश्चाणूनां तदुक्तेनैव

अनुमानम्

अनुमानं ज्ञातसम्बन्धस्यैकदेशदर्शनात् एकदेशान्तरे अस-
न्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिः । तत्तु द्विविधम्—प्रत्यक्षतो दृष्टसम्बन्धं सामान्यतो
दृष्टसम्बन्धं च । प्रत्यक्षतो दृष्टसम्बन्धं यथा—धूमाकृतिदर्शनाद-
ग्रथाकृतिविज्ञानम् । सामान्यतो दृष्टसम्बन्धं यथा—देवदत्तस्य
गतिपूर्विका देशान्तरप्राप्तिमुपलभ्य आदित्यस्य गतिस्मरणम् ॥
मार्गेण ग्राह्यत्वासम्भवात् समूहाख्यम्यावयविन तन्सम्भवेतानां च जात्या-
दीनां परमार्थतया सावयिष्यमाणानां ग्राह्यत्वमङ्गीकर्तव्यमिति ॥

निमित्तसूत्रे प्रमाणानां प्रसिद्धत्वेनापरीक्ष्यत्वे वणिते व्यभिचारा-
त्परीक्षितव्यं शुक्तिरजतवेदने प्रत्यक्षस्य व्यभिचारात् तत्पूर्वकत्वाच्चेतरे-
षामपि व्यभिचार इति चोदितं प्रत्यक्षस्यैवपर्यन्तेन ग्रन्थेन अव्यभि-
चारितत्वेनापरीक्ष्यत्वमुक्तं, ततश्च तत्पूर्वकत्वेन यदनुमानादीनां व्यभि-
चारित्वमुक्तं तत्पारिहृतम् । इदानीमात्मीयलक्षणेन अव्यभिचारादनुमाना-
दिकं न परीक्ष्यमित्युच्यते । तत्र तावदनुमानं लक्षयति—अनुमानमिति ॥
ज्ञातसम्बन्धेति कर्मधारयसमासः । सम्बन्धश्च नियमाख्य व्यासचपर-
पर्यायः । एकदेशशब्दाभ्यां च सम्बन्धिनोरभिधानम् । सम्बन्धो हि
सम्बन्धिनोः व्यासज्यवर्तमानः एकदेशी । एकदेशाच्च सम्बन्धिनो ज्ञात-
सम्बन्धस्यैकदेशः धूमादिः । तस्य दर्शनात् एकदेशान्तरे वह्न्यादौ बुद्धिः
अनुमानं प्रमाणमित्यर्थः । फलस्य ग्रामाण्यदृष्ट्येत्यव्यवहारः । व्यासि-
पक्षधर्मताज्ञानजन्यं अबाधितार्थविषयकं ज्ञानमनुमानमिति फलितार्थः ॥

एषा व्यासि यस्य धूमादेः अनवरतोर्ध्ववृत्तेः येनाग्न्यादिना
आग्नेन्धनसंयोगविशिष्टेन यावद्देशकालवर्तिना पूर्वदृष्टमहानसादौ निरू-
पिता स तादृशो व्याप्याशः साध्यधर्मणि पर्वतादौ दृष्टः तस्य व्यापकां-
शस्य तावद्देशकालवर्तिनोऽनुमापकः । एव च पूर्वदृष्टमहानसादिसपक्ष-

गतैव व्याप्तिरनुमानाङ्गम् । न तु सकलदेशव्याप्तिरिति सिद्धम् । ततश्च लिङ्गसकलदेशकालव्याप्त्यवगमः लिङ्गिनोऽनुमानाङ्गमिति मन्वाना तस्य च प्रमाणान्तरं मृगयमाणाः सकृदेव प्रत्यक्षेण नियमो गृह्यते, भूयोदर्शनाहितसंस्कारसचिवेन वा चरमेण प्रत्यक्षेणेत्यादिसविद्विरुद्धाभिधानेन क्लिश्यमाना निरस्ता ॥

व्याप्तिग्रहक्रमस्तु—बहुभिर्दर्शनैः बहुषु देशेषु धूमस्याग्निना साहित्यं गम्यते । तस्मिंश्चावगते व्यभिचारे चानवगते महानसादिषु कतिपयेषु धूमस्याग्निव्याप्तिः अवगता भवति, तावदेवानुमानाङ्गम् । तदनन्तरं तु यत्र धूमन्तत्राग्निरिति योऽवगमः सोऽप्यानुमानिक एव, परोक्षरूपत्वात्, तस्य तु प्रत्यक्षत्वमनुभवविरुद्धम् । तत्र कचित्सामान्यतो व्याप्तिर्गृह्यते, यथा अग्निधूमयोः । कचिद्विशेषयोः । यथा—कृत्तिकारोहिण्योरिति ॥

अत्र सबन्ध इति निर्देशेन कार्यकारणतादात्म्यसयोगसमवायैकार्थसमवायविरोधादि न व्याप्तिः नापि येनकेनापि सबन्धेन साहचर्यं, किन्तु प्रागुक्तसबन्धान्यतमसबन्धाधीनं नियमाख्यं कश्चिदतिरिक्तं सबन्धः व्यप्तिरिति सूचितम् ॥

असन्निकृष्टेऽर्थे इति ॥ अत्रार्थः नाम्नादिरूप सबन्धग्रहणकाल एव सिद्धत्वात्, नापि पर्वतादि प्रत्यक्षगृहीतत्वात्, किन्तु एकदेशविशिष्टो धर्मी बह्मिन्पर्वतादिरित्यवगन्तव्यः । नैयायिकास्तु प्राचीना धूममेव पक्षीकृत्य तस्यैवाग्निविशिष्टस्यानुमेयतामाहुः । स चार्थः येन रूपेणान्मातुमिष्यते तेनैव रूपेण तद्विपरीतेन वा रूपान्तरेण शीघ्रप्रमाणेन परिच्छिन्नं सन्निकृष्टं, तस्य अनुमेयत्वं व्यावर्तयितुं असन्निकृष्टग्रहणम् । ज्ञातसबन्धपदेन दृष्टान्तदोषा दर्शनपदेन हेतुदोषा असन्निकृष्टपदेन च प्रतिज्ञादोषा व्यावर्तिता ॥

इदमत्रावधेयम्—व्याप्तिः द्विविधा अन्वयव्याप्ति व्यतिरेकव्याप्ति-
श्चेति । तत्रोभयमप्यनुमानाङ्गं नियतमिति केचिदावक्षते । अन्वय-
व्याप्तिरेवानुमानाङ्गम् । व्यतिरेकव्याप्तिस्तु न नियतमिति सिद्धान्तः ।
शाक्यास्तु विपरीतमेतदाहु —तथाहि—यद्यन्वयोऽङ्गमिष्येन ततोऽवश्य
अतीतानागतानामपि धूमाना अग्निभिस्सर्वैस्सह समन्वयं ग्रहीतव्यं ।
नचासावीश्वरेणापि ग्रहीतुं शक्यते । नच केषाचिदन्वये गृहीते अन्यैर-
गृहीतान्वयै अनुमानं सम्भवति । वह्निमत्त्वसामान्येन धूमवत्त्वसामान्य-
स्यान्वयो गृहीत इति चेत्, न—सामान्यस्य स्वलक्षणव्यतिरेकाव्यतिरेक-
विकल्पसहनासम्भवात् । अस्तु वा सामान्यं, तथापि तदीयाशेषदेशकाला-
न्वयोऽग्रे दुर्ग्रह एव । विपक्षव्यतिरेकेस्तु सुज्ञानं न ह्यदर्शनमात्र-
गम्यं । सुकरं च सर्वधूमानामपि एकदेशस्थेनैव अनग्निष्वदर्शनम् ।
तस्मादनग्निभ्यो व्यतिरिच्यमानो धूमः अनग्निव्यावृत्तिमुखेन अग्निं गम-
यति, अतएवातद्वावृत्तिविषयत्वं लिङ्गशब्दयोः । तस्मात् व्यतिरेक-
एवानुमानाङ्गमिति ॥

तत्रोच्यते—नान्वयस्यानङ्गत्वं परेरपि वक्तुं शक्यम् । यत् —
विपक्षवत् सपक्षेपि अदृष्टं चेदङ्गं सर्वतो व्यावृत्तं कुत्र किं गमयेत् ।
किंच यदि ह्यनग्नाविव साम्नावपि धूमो न दृश्येत, ततोऽनग्नेऽसाग्नेश्च
द्वाम्या व्यावृत्तो धूमः तयोर्व्यावृत्तिं गमयन् गन्धवत्त्वमिव सशयहेतु-
स्सचात् । अतोऽन्वयोऽप्यङ्गमेव । यत्तु सर्वत्रान्वयो दुर्ग्रह इत्युक्तं
तुल्यमिदं व्यतिरेकेऽपि । न ह्यदर्शनमात्रात्सोपि सिध्यति । दृश्या-
दर्शनगम्यत्वात् । एकदेशस्थस्य च सर्वत्र दृश्यादर्शनासम्भवात् । तस्मा-
दनवगतेऽपि सर्वत्रान्वये सर्वतश्च व्यतिरेके बहुशस्साहित्यावगममात्रा-
देव व्यभिचारादर्शनेन सनाथात् अनुमानोत्पत्तिरङ्गीकर्तव्येति ॥

निरुक्तलक्षणलक्षितमनुमानं विभजते—तत्तु द्विविधमिति ॥ प्रत्य-

शब्द

शास्त्र शब्दविज्ञानादसन्निकृष्टेऽपि विज्ञानम् ।

शब्दप्रमाण लक्षयति — शास्त्रमिति ॥ यद्यपि प्रमाणावान्तरमे-
देषूच्यमानेषु तद्भेदस्य शब्दस्य लक्षणं वक्तव्यं, न शास्त्रस्य ।
यद्यवश्यं तदपि वक्तव्यम्, तर्हि शब्दस्योक्त्वा पश्चाद्वक्तव्यम्
तथापि वेदं व्याख्यातुकामं तदुपयोग्येव शब्दाविशेषस्य लक्षणं
कथितवान् न सामान्यस्य, सामान्यलक्षणं तु, असन्निकृष्टार्थविज्ञान-
जनकशब्दत्वमर्थाल्लभ्यत इति ॥

तर्हि वेदव्याख्याने प्रत्यक्षादिलक्षणकथनस्य किं फलमिति चेत्
शास्त्रार्थावधारणाय वर्णमात्रादिरूपेण यथावच्छास्त्रस्वरूपावधारणं प्रत्य-
क्षलक्षणफलम् । अनुमानादेरपि लक्षणं प्रत्येकगृहीतमन्त्रविनियोगस्य
विश्वजिदादिकलमस्य अङ्गैरुत्तादिश्चावधारणे उपयुज्यत इति तत्कथनं
सगतम् ॥

निरुक्तशास्त्रलक्षणेऽपि शब्दशब्दं चोदनापरं । असन्निकृष्टा-
र्थशब्दः धर्माधर्मपरः । तथा च चोदनाज्ञानजनितधर्माधर्मादिविज्ञानं
शास्त्रमिति ज्ञानप्रामाण्याभिप्रायेण शास्त्रलक्षणं सिद्धम् । वृत्तिग्रन्थे
“प्रत्यक्षादीनि प्रसिद्धानि प्रमाणानि । तदन्तर्गतं च शास्त्रम्” इति
शास्त्रस्यैवापरीक्ष्यत्वं प्रतिज्ञातं, तदनुरोधेन शास्त्रस्यैवाव्यभिचारित्वं
युक्तं वक्तुमित्यवगन्तव्यम् ॥

तदिदं शास्त्रमनुमानान्तर्भूतमिति शाक्या वैशेषिकाश्च प्रति-
पन्नाः । इदं शक्यानां वचनम्—

प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणे सदृशात्मनः ।

अप्रत्यक्षस्य सबन्धात् अन्यतः प्रतिपत्तिः ॥ इति ॥

इदं हि प्रमाणद्वयं नेन्द्रियार्थसन्निकृष्टस्य वस्तुन ग्राहकम्, न वा व्यापकत्वेन गृहीतस्य वस्तुन । किंतु तत्सदृशस्यैव । कुत इति चेत् वस्तुना क्षणिकत्वेन पूर्वक्षणवर्तिवस्तुन सन्निकर्षात् उत्तरक्षणवर्तिनो वस्तुनः ग्रहणात् । तदाह—अप्रत्यक्षस्य सबन्धादिति । तथा अन्यत प्रतिपत्तित व्याप्यत्वेन गृहीतादन्यस्यैव वस्तुन धूमस्य ज्ञानादनुमित्युदयादित्यर्थः ॥

इदं तु वैशेषिक सूत्रम्—“अस्येदं कार्यं कारणं सबन्धि एकार्थसमवायि विरोधि चेति लैङ्गिकम् । एतेन शब्द व्याख्यातम्” इति । अनुमाने शब्दास्यान्तर्भाव इति फलितार्थः । तदुभयमतनिराकरणाय लक्षणं कथितम् ॥

अतिरिक्तत्वसाधकयुक्तिस्त्वित्थम् — बुद्धिविशेषोऽर्थविशेषश्च अपूर्वकाव्यादिवाक्योच्चारणेऽवगम्यते, न च विशेषस्यानुमानतस्सिद्धिः, वाक्यमात्रेण हि बुद्धिमात्रमनुमीयेत, ततश्चार्थमात्रम् । अर्थविशेषप्रतिपादकवाक्यरचनया तदर्थविषयकबुध्यनुमानं तु अर्थविशेषज्ञानमन्तरेण न सम्भवतीति तादृशं ज्ञानं वाक्याधीनमित्यवगन्तव्यम् ॥

अपिच स्वाभाविके हि शब्दस्यार्थप्रत्यायनसामर्थ्येऽवगते ततश्चार्थप्रतीतौ जाताया तद्वशेन पश्चादुपजायमानो व्याप्तिग्रहः कथमर्थप्रतीतेरङ्गभवति । यस्य हि व्याप्तिनिबन्धनैव प्रत्यायनशक्तिः तदेव लिङ्गम् । शब्दस्तु व्याप्तिग्रहानपेक्षः स्वरसादेव शक्तः लिङ्गविलक्षणत्वान्नानुमानाय कल्पते इति ॥

—

उपमानम्

उपमानमपि सादृश्यं असन्निकृष्टेऽर्थे बुद्धिमुत्पादयति ।
यथा गवयदर्शनं गोस्मरणस्य ॥

“प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम्” इति अक्षपादेनोप-
मानलक्षण सूत्रितम् । तच्च सूत्रं केचिदेव व्याचक्षते—कद्विशो गवय इति
नागरकेण पृष्ठो वन्यः प्रसिद्धेन गवा साधर्म्यात् अप्रसिद्ध गवय येन
वाक्येन गौरिव गवय इत्यात्मकेन बोधयति तद्वाक्यमुपमानमिति । अस्य
च वाक्यस्य गवयशब्दशक्तिरूपोपायबोधनतात्पर्यात् गवयरूपोपेयता-
त्पर्यविरहात् न शब्दप्रमाणतेति ॥

अन्ये तु यथा गौस्तथा गवय इत्यादिदेशवाक्यं श्रुत्वा वन
गतस्य यत् गोसदृशो गवय इति ज्ञानं तदुपमानमिति व्याचक्षते ।
स चातिदेशवाक्यार्थनिश्चयरूपः ॥

परे तु—गोसदृशगवयदर्शनेन यत् गोसदृशस्य गवयशब्द
संज्ञेति समाख्यासंबन्धज्ञानं तदुपमानमिति व्याचक्षुः ॥

तत्र प्रथमे पक्षे शब्दान्न विशेषः । द्वितीये धर्मांशे स्मृति धर्म्यं
प्रत्यक्षमेव । तृतीये तु वाक्यजमेव सादृश्यं ज्ञानमिति विलक्षणं लक्षण-
माह—उपमानमपीति ॥ अयमर्थः—सादृश्यं स्मर्यमाणमिति शेषः ।
सादृश्यविशिष्टगवयदर्शनमिति यावत् । असन्निकृष्टे गृहवर्तिनि गवि
या बुद्धिं अनेन सदृशो मदीयो गोरित्याकारिका उत्पादयति सा बुद्धि-
रुपमानमित्यर्थः । तत्त्वमेव गोगत सादृश्यं गवयगतसादृश्यादन्यदेवेति
ध्येयम् । गोस्मरणस्येति ॥ जनकमिति शेषः ॥

केचित्तु—गोस्मरणस्येति पुरुषपरं व्याचक्षते । तदा नन्वादिषु
स्मरते पाठो मृगयितव्यः । परे—व्यधिकरणबहुव्रीहिमिच्छन्ति । अन्ये
तु कर्माणि स्मरणशब्दं व्युत्पाद्य उत्तरनिपातं मन्यन्ते ॥

अर्थापत्ति

अर्थापत्तिरपि दृष्टः श्रुतो वाऽर्थः अन्यथा नोपपद्यत
इत्यर्थकल्पना । यथा जीवति देवदत्ते गृहाभावदर्शनेन बहिर्भाव-
स्यादृष्टस्य कल्पना ॥

सादृश्यं नाम वस्त्वन्तरस्य स्वावयवेषु गुणेषु कर्मसु वा सम-
वेत्तै यैस्सामान्यै येन प्रकारेण योग तेनैव प्रकारेण वस्त्वन्तरस्य
योगः । नत्ववस्तु, नापि तत्त्वान्तरम् । तादृशसामान्याल्पत्वभूयस्त्व-
वशेन सादृश्यस्याप्यल्पत्व भूयस्त्व च विजायते । यत्र गुणयोस्सादृश्यं
यथा केतकीगन्धसर्पगन्धयो तत्र अवयविगुणानामवयवगुणसामान्य-
योगः । कर्मणामपि स्वसबन्धिद्रव्यदेवतासामान्ययोगः । यत्र त्ववय-
वयोस्सादृश्यं, अक्षिपद्मदलयो, तत्रापि स्वावयवसामान्ययोग इत्यव-
गन्तव्यम् । सामान्यमेव सादृश्यमिति साख्याः । अवयवसामान्ययोग
इति वैदिका । भूयोधर्म इति तार्किका ॥

दृष्टइति ॥ प्रत्यक्षादिभिः पञ्चभिः प्रमाणैरुपलब्धः । श्रुत इति ॥
कुतश्चन लौकिकाद्वैदिकाद्वा शब्दादवगतोऽर्थः । अन्यथा नोपपद्यत इति ॥
अन्यथाऽनुपपद्यमानात् तस्मात् अर्थकल्पना अदृष्टाश्रुतार्थज्ञान अर्था-
पत्तिरित्यर्थः ॥

एवमसौ षड्विधप्रमाणप्रभवत्वेन षड्विधा भवति । तत्र दृष्ट-
वचनेनोपलब्धिवाचिना गतार्थत्वेऽपि श्रुतार्थापत्तेः पृथक्करणं प्रमाण-
ग्राहिणीत्वेन । “रात्रौ भुङ्क्ते” इत्यादिवाक्यं हि शब्दप्रमाणं भवति ।
इतरास्तु प्रमेयग्राहिण्यः । अर्थापत्तिसिद्धमर्थस्यापूर्वादेः चोदनालक्षण-
त्वासिद्धये शब्दस्यैव कल्पना नार्थस्येति हृदयम् ॥

तत्र प्रत्यक्षपूर्विका तावदियमर्थापत्तिः — प्रत्यक्षावगतदहनससर्गो-
द्गतदाहाख्यकार्यान्यथानुपपत्त्या बह्वेदाहशक्तिकल्पना । भाष्येत्वभावपूर्वि-
काया अर्थापत्तेरुदाहरणं प्रदर्शनार्थम् ॥

अभाव

अभावोऽपि प्रमाणाभाव नास्तीत्यस्यार्थस्यासन्निकृष्टस्य ।
तस्मात्प्रसिद्धत्वाच्च परीक्षितव्य निमित्तम् ॥

प्रमाणाभाव प्रत्यक्षादिप्रमाणपञ्चकानुत्पत्तिः । सदुपलम्भक-
प्रमाणसामान्याभाव अनुपलब्धिरिति यावत् । असन्निकृष्टस्य अनवि-
गताबाधितस्य नास्तीत्यस्यार्थस्य घटो नास्तीत्याद्यर्थस्य या बुद्धिमु-
त्पादयति सा बुद्धिः अभावोपलब्धिः अभावो नाम प्रमाणमित्यर्थः ॥

नन्वभाव इन्द्रियेणैव गृह्यते रूपादिवत्, उन्मीलिताक्ष एव
घटो नास्तीति बुध्यते । न निमीलिताक्षः । अन्यो वा । तथाचापरो-
क्षावभासः विशिष्टप्रतीतिश्चोपपद्यते । इतरथा भूतलमात्रविषयत्वादि-
न्द्रियस्य अनुपलब्धेश्चाभावमात्रविषयत्वात् निर्निवन्धनो विशिष्टबोध-
स्यात् इति चेन्न-दृश्यादर्शनमभावं प्रमाणं नादर्शनमात्रम् । येन चाश्र-
यभूतं भूतलादिकं वस्तु गृहीतं तस्यैव घटो दृश्यो भवति । नान्यस्य ।
उन्मीलिताक्षस्यैव च तद्गृहणमिति तस्मिन्मध्येऽक्षापेक्षा नाभावग्रहणाय ।
गृहीते चाश्रये प्रतियोगिनि च स्मृते अक्षस्थानीयेन दृश्यादर्शनसहायेन
मनसैवाभावग्रहणोपपत्तेः नेन्द्रियस्याभावे शक्तिः शक्या कल्पयितुम् ।
विशिष्टबोधोऽपि कारणसमाहारादेवोपपद्यते । यथा क्षीरादिद्रव्ये जिह्वा-
गते द्रव्यस्वरूपं त्वचा माधुर्यं अस्य द्रव्यसंबन्धश्च रसनेनेत्युभाभ्यां
माधुर्यविशिष्टक्षीरबुद्धिस्तथेति ॥

अपिच—यदा हि कश्चित्प्रातः काले कचिद्देशमध्यासीनः तत्र
गजतुरगादिकमदृष्ट्वा तदस्मरणाच्च तदभावमप्यगृहीत्वा देशमात्रं दृष्ट्वा
देशान्तरं गतं मध्यन्दिने पृच्छ्यते—कश्चित् तस्मिन्देशे प्रातःकाले
गजस्तुरगः पार्थिवो वा समागत इति । स तदा तं देशमवगतत्वात्
स्मरन्नपि तत्र देशेऽन्येषां गजादीनामभावं प्रागगृहीतं तदैव गृह्णाति ।

नच मध्यन्दिने समये प्रातः कालिकस्याभावस्यानिन्द्रियसन्निकृष्टस्य सम्भवति प्रत्यक्षेण ग्रहणम् । तस्येन्द्रियसन्निकृष्टवर्तमानविषयकत्वात् । ननु योग्यानुपलब्धिरपि तदानीं नास्ति, न हि मध्यन्दिने प्रातस्तनस्यार्थस्य उपलब्धियोग्यताऽस्ति । सत्यम्—प्रत्यक्षयोग्यता नास्ति स्मृतियोग्यता त्वस्त्येव । प्रातस्त देशमध्यासनेन तत्रागत गजादि ग्रहीतव्यः मध्यन्दिने च सत्या सुस्मृर्षाया स्मर्तव्यश्च । यथा ग्रहीतव्यत्वे सत्यग्रहण तथा स्मर्तव्यत्वे सत्यस्मरण मध्यन्दिनलेलाया विद्यमान प्रातस्तनमभाव बोधयति । अत एव प्रमाणाभाव इत्यत्र स्मरणाभावोऽपि ग्राह्य । स्मरणाभावोऽपि हि फलतः प्रमाणाभाव एव । प्रमाणस्य स्मरणफलत्वात् ॥

सा चानुपलब्धिः योग्यतासहितैव प्रमाणम् । योग्यता च प्रतियोगिसत्त्वप्रसजनप्रसजितप्रतियोगिकत्वरूपा । प्रसजन तु यद्यत्र घटस्यात्तर्द्धुपलभ्येतेत्याकारकम् । सा च ज्ञाततया सहकारिणी, अनुपलब्धिस्तु स्वरूपसती । न तु ज्ञाता । इतरथा तस्या अप्यभावरूपत्वेन अनवस्थापातात् । योग्यताज्ञानार्थमेव हि सूक्ष्मार्थाभावग्रहणार्थं सूक्ष्मबोधकनेत्राशुसपातार्थं प्रयस्यन्ति प्राणिनः । तत्र योग्यतासंदेहे विपर्यये वा अभावेऽपि सशयो विपर्ययो वा भवति । यथा—अन्धकारे पतितमङ्गुलीयकं कराभ्यामन्विष्यन्पुरुषः सर्वोर्वीस्पर्शसंदेहेऽभावेऽपि संदेहि । तथैव सर्वतोऽस्पर्शेऽपि सर्वाभिमर्शनश्रमे अभावेऽपि भ्राम्यति । अतः योग्यतैव ज्ञाता सहकरोति ॥

शक्यादयस्तु निस्त्वभावमभावमवस्तुरूपं तुच्छं मन्यन्ते । तस्य च प्रमाणनिरूपणं परिहसन्ति । तथासति यत्खलु दधिरूपं भ्रमभूत्वा भवति तदुपादेयम् । यच्च प्रागवस्थित क्षीररूपं पश्चाच्च भवति तदुपादानम् । सोऽयं कार्यकारणविभागः गौरश्चो न भवति अश्चो

चित्राक्षेप

ननु प्रत्यक्षादीन्यन्यानि भवन्तु नाम प्रमाणानि । शब्दस्तु न प्रमाणम् । कुतः—

अनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात् ॥ ५ ॥

अनिमित्तं अप्रमाणं शब्दः । यो ह्युपलम्भविषयो नोप-

न भवति गौ विषाणशून्यश्शशः इत्यादय व्यवहाराः प्रागभावादि-
निबन्धना असत्यभावे नोपपद्येरन्नित्यवश्यं वस्त्वेवाभावो न तुच्छ इत्य-
भ्युपगन्तव्यमिति ॥

एव षट् प्रमाणानि निरूपितानि । सभवैतिषलोकप्रसिद्धिचेष्टा-
लिपिप्रातिभास्यानि षडपराणि प्रमाणानि कचित्त्वचिदङ्गीकृतान्यप्येते-
ष्वेव यथायथमन्तर्भवन्तीति सिद्धान्तः ॥

पूर्वं भाष्यकार स्वमतेन सूत्राणि व्याचक्षाण चोदनासूत्रे
“नन्वतथाभूतम्” इत्यादिना प्रमाणान्तरपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्याभावात्
शब्दः प्रमाणमित्याक्षिप्य समाहितवान् । इदानीं तु वृत्तिकारमतेन
असवादविसवादाभ्यां प्रागुक्तमेवाक्षेप सूत्राभिप्रेतं दर्शयितुं सूत्रमवता-
रयति—ननुप्रत्यक्षादीनीति ॥ अत्र “अनिमित्तं विद्यमानोपलम्भन-
त्वात्” इति पृथक्पूर्वपक्षसूत्रम् । तस्यार्थमाह—अनिमित्तमित्यादिना ॥
विद्यमानोपलम्भनत्वात् विद्यमानमुपलम्भन उपलम्भक इन्द्रिय यस्य पश्चा-
देरस्ति स विद्यमानोपलम्भनः, तस्य भवः पश्चाद्युपलम्भकस्येन्द्रियस्य
सद्भावादित्यर्थः । एतेन योग्यता प्रदर्शिता । तदाह—यो हीति ॥
एतेन प्रत्यक्षानुपलब्धिविरुद्धशब्द इत्युक्तं भवति । अयं प्रयोगः—
“चित्रया यजत” इत्यादिचोदना मृषा प्रत्यक्षासवादरूपप्रत्यक्षानुप-
लब्धिविरुद्धत्वात् सप्रतिपन्नवाक्यवादिति ॥

लभ्यते स नास्ति यथा शशस्य विषाणम् । उपलम्भकानि चेन्द्रियाणि पञ्चादीनाम् । न च पशुकामेष्टयनन्तरं पशव उपलभ्यन्ते । अतो नेष्टिः पशुफला । कर्मकाले च फलेन भवितव्यम् । यत्काले हि मर्दनं तत्काले मर्दनसुखम् । कालान्तरे फल दास्यतीति चेत् न, न कालान्तरे फलमिष्टेरित्यवगच्छामः । कुत ? यदा तावदसौ विद्यमानाऽऽसीत्तदा फलं न दत्तवती । यदा फलमुत्पद्यते तदाऽसौ नास्ति । असती कथं दास्यति । प्रत्यक्षं च फलकारणमन्यदुपलभामहे । न च दृष्टे कारणे सति अदृष्टं कल्पयितुं शक्यते प्रमाणाभावात् । एव दृष्टापचारस्य वेदस्य स्वर्गाद्यपि फलं न भवतीति मन्यामहे ॥

दृष्टविरुद्धमपि भवति किञ्चिद्वचनम्—पात्रचयनं विधाया-

अतो नेष्टिरिति ॥ चित्रायागमपि पक्षीकृत्य पशुसाधनत्वाभावसाधयितुं शक्य इत्यर्थः । अयं प्रयोगः—चित्रायाग पशुसाधनत्वाभाववान् स्वकाले फलशून्यत्वात् यत् यस्य साधनं तत् स्वकाले फलवत् यथा मर्दनमिति व्यतिरेकोदाहरणं चात्राभिप्रेतम् ॥ शङ्कते—कालान्तरे इति ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां व्यभिचारमभिप्रेत्य समाधत्ते—नेति । असती कथमिति ॥ अपूर्वद्वारकत्वं तु शब्दान्नावधार्यत इति भावः । साध्यसाधनभावस्यान्यथासिद्धिमप्याह—प्रत्यक्षं चेति ॥ अन्यत् सेवाप्रतिग्रहादिकम् । कचिन्मिथ्यात्वे सर्वं मिथ्येति गम्यत इत्याह—एवदृष्टेति ॥

एवमसंवादेनाप्रामाण्यमुक्त्वा विसवादेनाप्याह—दृष्टविरुद्धमपीति ॥ अत्रमत्र प्रयोगोऽभिप्रेतः—“स एष यज्ञायुषी” इत्यादिवाक्यं मिथ्या प्रत्यक्षविरुद्धत्वात् “अम्बुनि मज्जन्त्यलावूनि” इत्यादिवाक्यवदिति ।

ह—“स एष यज्ञायुधी यजमानोऽञ्जसा स्वर्गं लोकं याति”
इति प्रत्यक्षं शरीरकं वक्ष्यदिशति । न च तत्स्वर्गं लोकं यातीति ।
प्रत्यक्षं हि तद्वद्वेत्ते । न चैष यातीति विधिशब्दः । एवंजातीयक
प्रमाणविरुद्धं वचनमप्रमाणम् । अम्बुनि मज्जन्यलावृनि ।
ग्रावाणः पुवन्ने इति यथा । तत्सामान्यादग्निहोत्रादिचोदना
स्वपि नास्वासः । तस्मान्न चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ॥

औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन भवन्धस्तस्य ज्ञान(मुपेक्षः) ॥

तुशब्दः पक्षं व्यावर्तयति । अपौरुषेयशब्दस्यार्थेन संब-
न्धः, तस्य अग्निहोत्रादिलक्षणस्यार्थस्य । ज्ञानं प्रत्यक्षादिभिर-
नवगम्यमानस्य । तथाच चोदनालक्षणं सम्यक्प्रत्यय इति ।

नन्वात्मनस्स्वर्गगमनात् कथं प्रत्यक्षविरोधः ? देहातिरिक्तम्यात्मनोऽभावात्
सतोऽपि यज्ञायुधसंप्रयोगविरहात् विभो कर्तृत्वासभवेन यजमानत्वासं-
भवात् । अतश्शरीरस्येदं स्वर्गगमनं प्रत्यक्षविरुद्धम् । नचैष याचीति
विधिशब्द इति ॥ विधिशब्दनिराकरणं चित्रोदाहरणाद्विशेषप्रदर्शना-
र्थम् । सति हि विधौ भविष्यत्ताऽपि फलम्य म्यात् । विधिप्रामाण्यादेव
च शरीरादन्यमात्मानं कल्पयित्वा विरोधं परिह्रियेत । वर्तमानापदेशे
तु तस्मिन् काले स्वर्गगमनं विरुद्धं भस्मीभावदर्शनात् विसवाद एव
स्फुटः स्यादिति । एतद्वद्वद्वन्तेन सर्वो वेद मिथ्येत्यनुमातुं शक्यमित्याह—
तत्सामान्यादिति ॥

एव पूर्वपक्षसूत्रं व्याख्याय सिद्धान्तसूत्रमाह—औत्पत्तिकस्त्विति ॥

स्वव्याख्यायां तुरवधारणार्थं । इदानीं सिद्धान्तसूत्रसूचक इत्याह—
तुशब्द इति ॥ अपौरुषेय इत्यौत्पत्तिकशब्दफलितार्थकथनम् ।
ज्ञानमिति प्राग्वत्करणे ल्युट्, ज्ञापकमित्यर्थः । शिष्टं प्राग्वत् ।

पौरुषेये हि शब्दे य प्रत्यय तस्य मिथ्याभाव आशङ्क्येत ।
 परप्रत्ययो हि तदा स्यात् । अथ शब्दे ब्रुवाति कथं मिथ्येति ।
 न हि तदानीं अन्यत पुरुषादवगतिमिच्छामः । ब्रवीतीत्यु-
 च्यते बोधयति बुध्यमानस्य निमित्तं भवतीति । शब्दे च
 निमित्ते स्वयं बुध्यते । कथं विप्रलब्धं ब्रूयान्नैतदेवमिति । न
 चास्य चोदना स्याद्वा नवेति सांशयिक प्रत्ययमुत्पादयति । न
 च मिथ्यैतदिति कालान्तरे देशान्तरेऽवस्थान्तरे पुरुषा-
 न्तरे वा पुनरव्यपदेश्यः प्रत्ययो भवति । योऽप्यन्यत्र प्रत्यय-
 विपर्ययसं दृष्ट्वा अत्रापि विपर्ययसिध्यतीत्यानुमानिकः प्रत्यय
 उत्पद्यते सोऽप्यनेन प्रत्यक्षेण प्रत्ययेन विरुध्यमानो बाध्यते ।
 तस्माच्चोदनालक्षण एव धर्मः ॥

अपौरुषेयात्पौरुषेयस्य विशेषमाह—पौरुषेये हीति ॥ परप्रत्ययो हि
तदा स्यादिति ॥ नस्वयं प्रत्यय इत्यर्थः । वक्तृप्रामाण्याधीन
 प्रामाण्यमस्यति भावः । तस्मादपौरुषेयस्य विशेषमाह—अथेति ॥
 तत्र वक्तृप्रामाण्याधीना प्रामाण्यं नास्तीत्याह—न हि तदानीमिति ॥
 अथाज्ञानलक्षणमप्रामाण्यमपाकरोति—ब्रवीतीत्युच्यते इति ॥ तद्विवृ-
 णोति—बोधयतीति । फलितमाह—शब्देचेति ॥ निवपेक्ष प्रामाण्यमिति
 भावः । तस्य व्यतिरेकमाह—कथमिति ॥ विप्रलब्ध विरुद्धमित्यर्थः ।
 बोधयति न बोधयतीति च रिद्धमिति भावः । अथ सशयलक्षणमप्रामाण्य-
 मपाकरोति—नचास्येति ॥ अस्य प्रत्यक्षादिभिरनवगतस्य धर्मस्य । अथ
 विपर्ययलक्षणमप्रामाण्यं अबाधितत्वेनापाकरोति—न च मिथ्यैतदिति ॥
 मिथ्येत्यस्य विवरण—अव्यपदेश्य इति ॥ स्वाभाविकेन रूपेण न
 निरूपणीयः, मृगतोयवत् पररूपेण निरूपणीय इत्यर्थः । सामान्यतो-

सबन्धाक्षेपः

स्यादेतदेव, नैव शब्दस्यार्थेन सबन्धः । कुतोऽस्य पौरुषेयता अपौरुषेयता वेति । कथम्—म्याच्चेदर्थेन सबन्धः सुरमोदकशब्दोच्चारणे मृत्त्वस्य पाटनपूरणे स्याताम्, यदि संश्लेषलक्षण संबन्धमाभिप्रेत्योन्यते । कार्यकारणनिमित्तनैमित्तिकाश्रयाश्रयिभावसंयोगादयस्तु संबन्धा शब्दस्यानुपपन्ना एवेति ॥

उच्यते—यो ह्यत्र व्यपदेश्यसम्बन्धः तमेकं न व्यपदिशति भवान्, प्रत्ययस्य प्रत्यायकस्य च यः मझामञ्जिलक्षण इति । दृष्टमप्रामाण्यानुमान बाधितत्वादिदोषदुष्टमित्याह—योप्यन्यत्रेति ॥ एतत्सर्वं चोदनासूत्रोक्तमपि वक्तुर्भेदान्न पुनरुक्तम् । सूत्रार्थमुपसहरति—तस्मादिति ॥

एव शब्दार्थसंबन्धानां नित्यतया दोषाभावेन अपवादभूताप्रामाण्यनिराकरणेन स्वतः प्रामाण्यं स्थापितम् । अथाप्रामाण्यप्रयोजकसंबन्धाभावः तस्य सतोऽपि नित्यत्वाभावः चाशङ्कते—स्यादेतदेवमिति ॥ शब्दो नार्थसंश्लिष्टः स्वशून्यदेशवृत्तित्वात् हिमवद्विन्द्वयवदिति प्रयोगः संबन्धाभावेऽभिसहितः । तत्रासिद्धिः निराह—स्याच्चेदिति ॥ इदं चानुमानं बक्ष्यमाणा संश्लेषलक्षणसंबन्धातिरिक्तसंबन्धानुपपत्तिमनुसंधायोक्तम् । तदाह—यदीति ॥ इतरसंबन्धानुपपत्तिमाह—कार्येति ॥

शक्त्यात्मकसंबन्धोऽस्तीति मत्वा समाधत्ते—उच्यते यो ह्येति ॥ व्यपदेश्यं व्यपदेश्यमर्थं । अनुपपन्नान् सबन्धानेव केवलं भवान् परिगणयति । यश्चोपपन्नं परिगणनामर्हति तमेकं परित्यजति । स च सबन्धः सज्ञासंज्ञिलक्षण वाच्यवाचक प्रत्याय्यप्रत्यायक बोध्यबोध्यक गम्यगमकभावाद्यपरपर्यायः शक्तिरूप इत्यर्थः । अयं भावः—स्वशून्यदेशवृत्तित्वहेतुना सबन्धसामान्यनिषेधे पितापुत्रादिसंबन्धेनानेकान्त-

आह—यदि प्रत्यायकशब्द प्रथमश्रुतः किं न प्रत्याययति ।
 उच्यते—सर्वत्र नो दर्शनं प्रमाणं—प्रत्यायक इति प्रत्ययं
 दृष्ट्वाऽवगच्छामः । न प्रथमश्रुत इति प्रथमश्रवणे प्रत्ययमदृष्ट्वा ।
 यावत्कृन्वन्श्रुतेन इयं संज्ञा अयं सङ्गीत्यवधारितं भवति ताव-
 त्कृत्वं श्रुतात् अर्थावगम इति । यथा चक्षुः द्रष्टुं न बाह्येन
 प्रकाशेन विना प्रकाशयतीति अद्रष्टुं न भवति ॥

त्वम् । सल्लेषनिषेधे सिद्धसाधनम् । वाच्यवाचकभावानिषेधे लोक-
 बाध । स्ववचनविरोधश्च विचारस्यैवानवकाशात् इति ॥

इदमत्रावधेयम्—गमकविशेषा हेतु इन्द्रिय लिङ्गमभिधायक-
 मिति । यत्सत्तामात्रेण स्वसन्निकृष्ट गमयति तदिन्द्रियम् । यत्तु
 व्याप्यतया ज्ञायमान व्यापक गमयति तल्लिङ्गम् । यत्तु गमकत्वावग-
 मादेव गमयति तदभिधायकम् । तादिह गमकत्वे गृहीते पश्चात्तन्मात्रे-
 णैव असत्यपि सवन्धान्तरे शब्दादर्थं प्रतिपद्यमान लिङ्गादिविलक्षण
 अभिधायकस्वरूप गमकत्वलक्षणं च सवन्धमध्यवस्यति । तच्च गमकत्व
 वृद्धेभ्यो गृह्यते । न चात्माश्रयता । पूर्वपूर्ववृद्धेभ्यो गमकत्वग्रहणात्
 उत्तरोत्तरेषा गमकतोपपत्तेरिति ॥

अथ गवादिशब्द न स्वाभाविकगमकत्वलक्षणशक्तिविशिष्ट-
 शक्तिग्रहणात्प्रागमकत्वात् पुरुषविशेषसकेतितदेवदत्तादिशब्दवदिति मत्वा
 शङ्कते—आह यदीति ॥ चक्षुरादौ प्रदीपादिसहायपेक्षामात्रेण शक्य-
नपहवत् प्रकृते सवन्धग्रहणरूपसहकारिणा करणस्य नान्यथा-
सिद्धिरिति मत्वा समाधत्ते—उच्यते सर्वत्रेति ॥ यथा चक्षुरिति ॥
 तत्र व्यभिचार इति भावः । तत्र हि सहकारिसपत्तेः प्रागगमकत्वरूपो
 हेतुरस्ति । स्वाभाविकशक्तिशून्यत्वरूप साध्य नास्तीति ॥

यदि प्रथमश्रुतो न प्रत्याययति कृतकस्तर्हि शब्दस्यार्थेन संबन्धः । कुत ? स्वभावतो ह्यमवद्भावेतौ शब्दार्थौ मुखे हि शब्दमुपलभामहे भूमावर्थम् । शब्दोऽयं न त्वर्थः, अर्थोऽयं न शब्द इति च व्यपदिशन्ति । रूपभेदोऽपि भवति गौरितीमं शब्दमुच्चारयन्ति । सास्त्रादिमन्तमर्थमवबुध्यन्ते इति । पृथग्भूतयोश्च यस्संबन्धः स कृतको दृष्टः । यथा रज्जुघटयोरिति ॥

स्फोटवाद

अथ गौरित्यत्र कश्चशब्दः ? गकारौकारविसर्जनीया इति भगवानुपवर्षः । श्रोत्रग्रहणे ह्यर्थे लोके शब्दशब्द प्रसिद्धः । ते च श्रोत्रग्रहणाः ।

एव संबन्धसद्भावेऽपि तस्य कृतकत्वरूपमानित्यत्वमाशङ्कते—यदि प्रथमेति ॥ सज्ञात्व हि वृद्धेभ्योऽवगम्यत इत्युक्तं तेन देवदत्तादिशब्दवत् अम्येय मज्ञेति वदद्भिः पुरुषैरेव कृत स्यादिति भावः । यदि सज्ञात्वातिरिक्तं किञ्चित्संबन्धान्तरं स्यात् स्यादप्यस्य नित्यता, न तु तदस्तीत्याह—कुत स्वभावत इति ॥ सर्वस्य हि केन चिदाभिज्ञेनोपाधिना संबन्धो भवति । नचानयोर्देशः काल वा एकरूपमुपलभामहे इत्याह—मुखे हीति ॥ भिन्नदेशाद्यधिष्ठानादित्यर्थः । तथा च शब्दार्थौ कृतकसंबन्धवन्तौ भिन्नदेशाद्यधिष्ठानात् रज्जुघटवदिति न्यायस्तिष्ठतीत्याह—पुथागिति ॥

अथ संबन्धस्य नित्यत्वं प्रतिवक्ष्यन् संबन्धाधारभूतयोश्शब्दार्थयोः स्वरूपनिर्णयाय स्फोटवाद आकृतिवादश्च वर्तियेते । तत्र तार्किकशाब्दिकादीन् प्रति पृच्छति—अथगौरिति ॥ एतत्सिद्धान्तवादिवचनम् । आस्ता तावत्संबन्धः, शब्दस्वरूपमेव तावत्कादृशमिति पृच्छाम इत्यर्थः । तस्योत्तर—गकारेत्यादि ॥ उपवर्ष इति ॥

यद्येव अर्थप्रत्ययो नोपपद्यते । कथम्? एकैकाक्षर-
विज्ञाने अर्थो नोपलभ्यते । नचाक्षरव्यतिरिक्तोन्यः कश्चिदस्ति
समुदायो नाम, यतोऽर्थप्रतिपत्तिः स्यात् । यदा गकारः
न तदा औकारविसर्जनीयौ । यदौकारविसर्जनीयौ न तदा
गकारः । अतो गकारादिव्यतिरिक्तोऽन्यो गोशब्दोऽस्ति ।
यतोऽर्थप्रतिपत्तिस्स्यात् । अन्तर्हिते शब्दे स्मरणादर्थप्रतिपत्ति-
श्चेत्, न-स्मृतेरपि क्षणिकत्वादक्षरैस्तुल्यता ॥

पूर्ववर्णजनितसंस्कारसहितोऽन्यो वर्णः प्रत्यायकः
इत्यदोषः ॥

अत्र उपवर्षग्रहणान् न वृत्तिग्रन्थस्यानुवादः । किं तु तन्मतेन व्याख्या-
नान्तरमिति सूच्यते । श्रोत्रग्रहणे हीति ॥ श्रोत्रग्राह्यत्वमेव शब्दलक्षणं,
न त्वर्थावबोधकत्वं शाब्दिकसम्मतमिति भावः । ते चेति ॥ गकारादयः
इत्यर्थः । अन्यथा निराबाधसर्वजनप्रतीतिविरोध इति भावः ॥

स्फोटवादमुपन्यस्यति—यद्येवमिति ॥ व्यस्तसमस्तविकल्पयो
व्यस्तेऽनुपपत्तिमाह—कथमेकैकेति ॥ समस्तेऽनुपपत्तिमाह—यदा गकारः
इति ॥ स्वमतमाह—अतो गकारादीति ॥ वर्णानां समुदायभावा-
भावेऽपि तत्सविदा समुदायभावमाशङ्कते—अन्तर्हित इति ॥ स्मरणपद-
वर्णानामेकैकव्यक्तित्वेन गृहीतग्राहित्वाभिप्रायेण । स्मरणानामप्यनेक-
व्यक्तित्वात् क्षणिकत्वात् तुल्यदोषत्वमाह—नेति ॥

सिद्धान्तमाह—पूर्ववर्णेति ॥ अत्र सस्कारशब्दः शक्तिपरः ।
अनन्तरवृत्तित्वपर इति कैश्चित् व्याख्यायते । पूर्ववर्णैरुत्तरवर्णस्य अन-
न्तरवृत्तित्वेन दृष्टेनैवानुग्रहेणानुगृहीतत्वसमवात् सर्वैरनुगृहीतोऽन्यो
वर्णः अर्थः प्रत्याययतीत्यर्थः ॥

नन्वेव शब्दादर्थं प्रतिपद्यामहे इति लौकिक वचनमनुपपन्न
स्यात् । उच्यते यदि नोपपद्यते अनुपपन्नं नाम । न हि
लौकिकं वचनमनुपपन्नमित्येतावता प्रत्यक्षादिभिरनवगम्यमानो-
ऽर्थः शक्नोत्युपगन्तुम् । लौकिकानि वचनानि उपपन्नार्थान्यनुप-
पन्नार्थानि च दृश्यन्ते । यथा देवदत्त गामभ्याज इत्येवमादीनि ।
दश दाडिमानि षडपूपा इत्येवमादीनि च ॥

अयमाशय —समस्ता एव वर्णा वाचका । गमनाक्रियाक्षणा-
नामिव ग्रामप्राप्तौ ग्रासानामिव तृप्तौ तृणानामिव रज्जौ संस्थानामिवा-
मुखी करणे । क्रमिकाणामपि वर्णानां सकलनाप्रत्ययद्वाराऽस्त्यैव साम-
र्थ्यम् । सकलनाप्रत्ययश्च स्मर्यमाणानुभूयमानप्राक्तनान्त्यवर्णविषयक-
तया सदसद्वर्णगोचरश्चित्ररूप । अन्त्यवर्णेऽपि तिरोहिते असत्सर्ववर्ण
गोचरो वा चित्राकार प्रत्यय । स च अर्थप्रत्यायनाङ्गमिति निरवकाशा
व्यस्तसमस्तादिविकल्पदोषा इति ॥

ननु —“ शब्दादर्थं प्रतिपद्यामहे ” इति लोकव्यवहारोस्ति । तत्र
शब्दशब्दः न सस्कारपरः, अप्रसिद्धे । नापि वर्णपरः, प्रत्येकसमुदा-
यविकल्पासम्भवात् । एकस्य वर्णस्य वाचकत्वायोगात् न प्रथमो
विकल्पः । नापि द्वितीय —जातिशब्दत्वात् । जातिवाचकशब्द वृक्षः
पुरुष इत्यादि । द्विवचनबहुवचनान्तव्यक्तिशब्दप्रयोगे तत्सामानाधिक-
रण्येन न प्रयुज्यते, यथा —देवदत्तयज्ञदत्तौ पुरुषः, धवसदिरपलाशा
वृक्ष इति । एव गकारौकारविसर्जनीयाः शब्द इत्यपि ॥ तत्सर्वथा
वर्णशब्दवादिनामनुपपन्नोऽयं व्यपदेश इत्याह—नन्वेवंशब्दादिति ॥ उच्यते
यदीति ॥ अनुपपन्नं नाम अनुपपन्नमिति प्रसिद्धमेवेत्यर्थः । अयमाशयः—
किमनेनोपपन्नेनानुपपन्नेन वा कृत्यम्, यद्ययमुपपद्यते ततः किम् । अत्रापि
नोपपद्यते ततः किम् ? न हि लोकव्यवहारनिबन्धना वस्तुस्थितिरिति ।

ननुच शास्त्रकारा अप्येवमाहुः—पूर्वापरीभूतं भावमाख्या-
तेनाचष्टे व्रजति पचति इत्युपक्रमप्रभृत्यपवर्गपर्यन्तमिति यथा ।
न शास्त्रकारवचनमप्यलमिममर्थमप्रमाणकमुपपादयितुम् ॥

अपि च नैवैतदनुपपन्नार्थम्—अक्षरेभ्यस्संस्काराः ।
संस्कारादर्थप्रतिपत्तिरिति संभवत्यर्थप्रतिपत्तावक्षराणि निमित्तम् ।
गौण एषोऽर्थप्रतिपत्तौ शब्द इति चेत् न गौणः । अक्षरेषु
निमित्तभाव तद्भावे भावात्तद्भावे चाभावात् ॥

उपपन्नार्थस्योदाहरण—देवदत्तेति ॥ अभ्याज प्रेरयेत्यर्थः । अनुपपन्नार्थ-
स्योदाहरण—दशेति ॥ अथ लौकिकप्रयोगो यथातथावाऽस्तु, शास्त्र-
कारप्रयोगः कथमुपपद्यते इत्याशङ्कते—ननु च शास्त्रेति ॥ अत्राख्या-
तेनाचष्टे इति व्यवहारोस्ति । आख्यातपद धातुपरम्, आख्यातक्यो
विभक्त्य इति तिङा व्यवहारात् । तथाचाख्यातशब्देनैकवचनान्तेन
तिङन्तपदस्फोटो विवक्षितः । तिङन्तस्यानेकवर्णसमुदायस्य एकत्वा-
योगात् । पूर्वापरीभूतमिति ॥ आद्यपरिस्पन्दात्मभृत्याफलनिष्पत्ते-
पूर्वापरीभावेन लक्ष्यमाण बह्वयव क्रियालक्षण भावमित्यर्थः । पूर्वा-
परीभाव निदर्शयति—व्रजति पचतीति ॥ शास्त्रकारव्यपदेशो वा
अशास्त्रकारव्यपदेशो वाऽस्तु, कतरच्चेद प्रमाण लोकव्यपदेशो नामेति
समाधत्ते—नेति ॥ समुदायैकत्वात् अर्थैकत्वाद्वा पूर्ववर्णानुगृहीतान्त्य-
वर्णस्य वाचकत्वाद्वा एकबुद्धशुषारूढत्वाद्वा एकवचनोपपत्तिरिति भावः ॥

ननु शब्दादर्थं प्रतिपद्यामह इत्यत्र अव्यवधानं प्रतीयते, वर्णानां
क्रमिकत्वात् कथमिदमित्यत आह—अपिच नैवैतदिति ॥ संस्काराणां
द्वारत्वेन न निमित्तनैमित्तिकभावानुपपत्तिरित्यर्थः । ननु संस्कारद्वारा
कारणत्वे संस्कार एव मुख्य कारण स्यात्, संस्कार पर्यायेण स्फोट
इष्टः स्यात्, वर्णात्मकस्तु शब्दः गौणस्यादित्याशङ्कते—गौण एषोर्थेति ॥

अथापि गौणस्स्यात्, न—गौणश्शब्दो मा भूदिति प्रत्यक्षादिभिरनवगम्यमानोऽर्थः शक्य परिकल्पयितुम् । न ह्यग्नि-
मौणवक इत्युक्ते अग्निश्शब्दो गौणो मा भूदिति ज्वलन एव
माणवक इत्यध्यवसीयते । न च प्रत्यक्षो गकारादिभ्योन्यो
गोशब्द इति । भेददर्शनाभावाद्भेददर्शनाच्च । गकारा-
दीनि हि प्रत्यक्षाणि । तस्माद्गौरिति गकारादिविसर्जनीयान्त
पदमक्षराण्येव । अतो न तेभ्यो व्यतिरिक्तमन्यत्पदं नामेति ॥
अत्र सस्कारस्य व्यापारत्वेन व्यापारव्यवायस्य सर्वत्र नियतत्वात् नियता-
न्वयव्यतिरेकयोरक्षरेष्वनुभूयमानत्वात् अक्षराणि न गौण इति समाधत्ते—
न गौण इति ॥ अत्र न गौण इति भिन्न वाक्यम्, उत्तरत्रान्वये शब्दे
चोदित गौणत्व तत्रैव युक्त परिहर्तुम् । निमित्तभावे तु तत्परिहारोऽस-
गतस्स्यात् । अक्षराणां गौणत्वाभावे हेतुमाह—अक्षरेषु निमित्तभाव इति ॥

अथ च केचित् शाब्दिका गौरित्येव गकारादिविलक्षण शब्दा-
न्तर अखण्ड प्रत्यक्षमवगम्यते इत्याहुः, स एव खण्डविवादः । तन्मत-
मुपन्यस्यति—अथापीति ॥ गौण गौरित्यवयवी अखण्ड मुख्यश्शब्दः
वर्णात्मकस्तु गौण एवेत्यर्थः । न हि कस्यचित् गौणत्वापातभयात् अप्रामा-
णिकार्थकल्पनं युक्तमिति प्रतिबन्दीप्रदर्शनपुरस्सर समाधत्ते—नेति ॥
अयमाशयः—गोशब्दे अज्ज्ञलोऽस्स श्लेषविशेषात् देवदत्तशब्दादाविव वर्ण-
विवेक प्रतिपत्तारो न जानन्ति, तावन्मात्रेणाखण्ड गोशब्द इति भ्रमः ।
पूर्वोक्ता चित्रा बुद्धिरपि निमित्त भ्रमे । तादृशभ्रममूला कल्पना न युक्तेति ।
किमनेन बहुनोक्तेन, सर्वं हि वस्तु जातमवाधितप्रतीतिव्यवस्थ्याप्य-
मित्यभिप्रायेणाह—न च प्रत्यक्ष इति ॥ एव स्फोट निरस्य प्रतिज्ञात
वर्णसिद्धान्त निगमयति—तस्मादिति ॥ सम्कारकल्पनाया गौरव
शङ्कते—नन्विति ॥ शब्दकल्पना स्फोटकल्पनेत्यर्थः । अयं भावः—

ननु संस्कारकल्पनायामप्यदृष्टकल्पना । उच्यते—शब्दकल्पनायां
सा च शब्दकल्पना च । स्मादक्षराण्येव पदम् ॥

स्फोटवादिनामपि स्वरवर्णात्मकानां ध्वनीनां स्फोटाभिव्यक्तौ साहित्य-
मेकवक्तृकत्वं क्रमश्चापेक्ष्यते । तत्र साहित्यासम्भवात् संस्काराख्यशक्तिक-
ल्पनाऽप्यस्तीति तवैव गौरवमिति भावः ॥

इदमिह स्फोटवादरहस्यम्—विभूनामेकैकव्यक्तीनां वर्णानां स-
मूहः पदं पदसमूहो वाक्यमिति वैदिकस्तिद्धान्तः । स्फोटसिद्धान्तस्तु—
न हि वर्णानां समूहः कश्चिदस्ति वास्तवः । तेन कुतस्तत्समूहः पदं
भविष्यति । तदभावाच्च न तत्र पदसमूहो वाक्यमवकल्पते । न च
वर्णानां व्यस्तसमस्तविकल्पोपहतत्वेन वाचकत्वमुपपद्यते । तस्मात्
स्फुटयते व्यज्यते इति व्युत्पत्तिसिद्धं स्फोटपदामिधेयं श्रोत्रग्राह्यं नित्यं
निरवयवः निष्क्रमकः शब्दशब्दवाच्यः अर्थप्रतिपादकः । यतोऽर्थप्रति-
प्रतिष्पः शब्दः इति शब्दलक्षणम् । स च वर्णैः स्वरव्यञ्जनात्मकैरभिव्य-
ज्यते । तत्र चाभिव्यक्तौ न विकल्पाः क्रमन्ते—प्रथमवर्णश्रवणवेलायामेव
स्फोटोऽभिव्यक्तो भवति । द्वितीयादिश्रवणं तदवगतेरेवातिशयं करोति ।
यथा रत्नपरीक्षायां प्रथमदर्शने रत्नस्वरूपममलं प्रकाशमानमपि पुनः पुनः
परीक्षमाणानां चरमे चेत्तसि चकास्ति निरवद्यं रत्नतत्त्वमिति केचिदा-
चक्षते ॥

अन्ये तु ध्वनय एव स्फोटस्य व्यञ्जकाः । ते च मरुत एव ।
तैश्चाभिव्यज्यमानं तात्त्वादिस्थानकरणसंयोगोपाधिवशोपप्लवमानानां
कारणकारादिभागयोगीन्द्रं स्फोटं प्रतिभासते, दृष्टं चोपाधिवशात् असत्य-
मपि रूपमवभासमानं, यथा—कृपाणमणिदर्पणादिव्यञ्जकभेदेन श्यामदीर्घा-
दिरूपवदनस्य । नादात्मको हि शब्दः बीणावेणुमृदङ्गपटहादिव्यञ्जकभे-
देन नानात्वमुपगच्छन् दृश्यते । तस्मान्न पारमार्थिका एव ते वर्णा इति ॥

किं च पद वाक्यमित्येकाकारप्रतीतिरस्ति, न च भिन्ना वर्णाः ।
तस्यामालम्बनीभवितुमर्हन्ति, न हि सामान्यप्रत्ययो व्यक्त्यालम्बनः,
अवयविप्रत्ययो वा अवयवालम्बनः । न च सेनावनादिबुद्धिवदयथार्था
पदवाक्यबुद्धिः बाधकाभावात् । तस्मात्पदबुद्धेः पदस्फोटः वाक्यबुद्धेः
वाक्यस्फोटो विषय इति ॥

अथ स्यात्—यदि निरवययः स्फोटात्मा वाक्य भवति, कथं तस्य
पदान्यवयवा भवितुमर्हन्तीति । उच्यते—ध्वन्युपाधिबोधप्रवृत्तवर्णभेदा-
वभासविप्रलब्धबुद्धिं प्रतिबोधयितुं पदस्फोट एव निरवयवः प्रथमः
दर्शितः । परमार्थतस्तु पदस्फोटोऽपि वर्णवज्रान्त्येव । वाक्यमेव निरवयवः ।
स्फोटः निरवयवस्यैव वाक्यार्थस्य बोधकः । अवयवकल्पनाया हि
वाक्यस्यावयवा पदानि, तदवयवा वर्णाः, एव वर्णानामप्यवयवैर्भवि-
तव्यम् । तदवयवानामप्यवयवान्तरैरित्यानन्त्यात् का व्यवस्था स्यात् ।
यदि वर्णेषु विरन्तव्यं वाक्य एव विरम्यताम् ॥

अर्थोऽपि वाक्यम्यैक एव नरसिंहवत् पानकवत् चित्ररूपवत्
श्रीरागवत् । नरसिंहो नाम न नरार्थं नापि सिंहार्थं । पानकमपि
शर्करानागकेसरमरिचादिभ्योऽर्थान्तरम् । सिन्दूरहरिताललाक्षादिभ्योऽन्य-
देव चित्ररूपम् । षड्जर्षमगान्धारधैवतादिभ्योऽन्य एव श्रीरागः ।
तथा पदेभ्यो वाक्यपदार्थेभ्यो वाक्यार्थश्चार्थान्तरमेव । तस्मात्प्रकृति-
प्रत्ययांशवत् असत्पदार्थकल्पनं वाक्यार्थावगमोपायतया आश्रीयते ।
भवतीत्यत्र भूशब्दः प्रकृतिः क्वचिदन्वाख्यायते । क्वचिद्भवशब्दः ।
प्रत्ययादेशागमगुणवृद्धिवर्णलोपाद्यन्वाख्यानाविसवादात् कः पारमार्थिकः
प्रकृतिप्रत्ययविभागः । कल्पनामात्रं त्वेतत् इयं प्रकृतिरयं प्रत्यय इति ।
सराम इत्यादौ नामाख्यातसाधारणवर्णसन्निवेशदर्शनात् न नियतं तेषां
रूपम् । क्वचिन्निश्चेतुमपि न पार्यते—कालेनदन्तिनागा इत्यादौ । कालेन

अथ गौरिलस्य शब्दस्य कोऽर्थः ? सास्त्रादिविशिष्टा
आकृतिरिति ब्रूमः । नन्वाकृतिस्साध्याऽस्ति वा न वा इति-
कृष्णेन दन्तिना गजेन आगा त्वमिति वा, काले समये नदन्ति
शब्दायन्ते नागा गजा इति वा सशयभवात् । तस्मादनियमान्न पद-
पदार्थविभाग पारमार्थिकः । तस्मान्निरस्तावयव तथाविधस्यैव वाक्या-
र्थस्य वाचकमिति सिद्धम् ॥

ननु यथा पदेषु वर्णा न सन्ति वाक्येषु पदानि न सन्ति । तथा
महावाक्येष्ववान्तरवाक्यानि न स्युः, महावाक्यान्यपि प्रकरणे न स्युः,
एव प्रकरणान्यपि शास्त्रे । ततश्चैकमेवेदं शास्त्रतत्त्व अविभागमद्वयमा-
पततीति चेत्, उच्यते—शब्दब्रह्मैवेदमद्वय अनाद्यविद्यावासनोपप्लवमान-
भेद अर्थभावेन विवर्तते, न तु वाचकाद्विभक्त वाच्य नाम किञ्चिदस्ति,
तस्मात्काल्पनिक एव सर्वो विभाग इति ॥

सा चेय वाक् वैखरी मध्यमा पश्यन्तीति त्रेधा विभज्यते ।
विखर इति देहेन्द्रियसघातः । तत्र भवा वैखरी केवल व्यवहारानु-
गुणा । या पुनरन्तस्सकल्प्यमानक्रमवती श्रोत्रग्राह्यवर्णरूपाभिव्यक्ति-
रहिता सा मध्यमा । या तु ग्राह्यभेदक्रमरहिता स्वप्रकाशशविद्रूपा वाक्
सा पश्यन्ती । तदुक्तम्—(वाक्यपदीटीका १-१४४ श्लो)—

अविभागा तु पश्यन्ती सर्वतस्सहस्रतन्त्रमा ।

स्वरूपज्योतिरेवान्त सूक्ष्मा वागनपायिनी ॥

इति । इममेव च सिद्धान्तं महाकवि कालिदासोऽपि रघुवंशकाव्यारम्भे
“वागर्भाविव सपृच्छौ” इति अनुसहितवानिति संक्षेपः ॥

अ कृ तिव द

वाचकनिरूपणानन्तरं वाच्यं निरूपयति—अथ गौरिति ॥

न प्रत्यक्षा सती साध्या भवितुमर्हति । रुचक स्वस्तिको वर्ध
मूनक इति हि प्रत्यक्षं दृश्यते । व्यामोह इति चेन्न—नासति
प्रत्ययाविपर्यासे व्यामोह इति शक्यते वक्तुम् ॥

आकृति जाति सामान्यमिति पर्याय । एकबुद्धिनिमित्त यत्सा-
मान्य तज्जातिरूपमिति तार्किकादय प्राहु । सारूप्यरूपमिति कापिल ।
अपोहरूपमिति सौगता । सन्धानमिति पातञ्जलादय । एव सामान्य-
स्वरूपे विवादेऽपि वाच्यत्वे न विवादः । स्वलक्षणान् विशेषानेव
पदार्थमिच्छन्ति वैभाषिका । सामान्यमेव मन्मात्र पदार्थमिच्छन्ति
केचिद्वेदान्तिनः । समानाना भावो हि सामान्यः तत्कथमसत्सु बहुषु
विशेषेषु स्यात् । समानात्मनो भावान् विशिष्यन्तीति विशेषाः । ते च
कथमसति सामान्ये स्युरिति नान्यतरेण विना इतरस्यात्मलाभः । तस्मा-
दुभय सिद्धम् । तत्रापि सामान्यस्य विशेषात्मत्व विशेषाणां सामान्यात्मत्व
चोपलम्भबलसिद्धमिति तयोरत्यन्तभेदवादः न सम्मतः ॥

सास्त्रादिविशिष्टाऽऽकृतिरिति ॥ एकावयविसबन्धेन सास्त्राद्युपल-
क्षिता जातिरित्यर्थः । अस्ति हि तेषां सास्त्रादीनामेकावयविसबन्धः
जात्यन्तरेभ्यो गोत्वेनासाधारणः । तेन जातिमुपलक्षयितुं सास्त्राद्युपा-
दानम् । अन्यथा पिण्डे सत्तादिजातीनां वहीनां ममवायात् कथं
विनोपलक्षणेन गोशब्दवाच्यं विविच्य निर्दिश्यतेति । जाति व्यक्त्य
नतिरिक्तः व्यक्त्यज्ञानेऽज्ञायमानत्वात् यो यदज्ञाने न ज्ञायते स' तदन-
तिरिक्तं वृक्षानतिरिक्तवनत् इत्यन्तर्नीतानुमानाभिप्रायेण विकल्पयति—
नन्विति ॥ साध्या अनुमेया । साध्यमानापि जातिः व्यक्तितो
नातिरिच्यते इति भावः । तस्यानुमानस्य प्रत्यक्षेण बाधमाह—
नप्रत्यक्षा सतीति ॥ रुचक इति ॥ रुचकत्वस्वास्तिकत्ववर्धमानकत्वादीनां
पिण्डापेक्षया पृथक्त्वेन प्रत्यक्षावगतत्वादित्यर्थः । प्रत्यक्षस्य अनुगतम-

वनवाद

नन्वसख्यार्थान्तरे एवंजातीयको भवति प्रत्ययः पाङ्क्ति-
यूषं वनमिति यथा इति चेत्, न-असंबद्धं इदं वचनमुपन्यस्तम् ।
त्यस्य भ्रान्तित्वमाशङ्क्य कारणदोषबाधकप्रत्ययविरहाच्चिरस्यति—
व्यामोह इत्यादिना ॥

केचित्तु—अत्र रुचकाद्युदाहणात्संस्थानमेव सामान्यमिति मन्वते ।
ते हि वाय्वग्नादिषु अनियतसंस्थानपरिमाणेषु गुणेषु कर्मसु च वायु-
त्वाभित्वगुणत्वकर्मत्वरूपानुगतधर्मप्रत्यभिज्ञया प्रतिबोद्धव्या इत्याकृत्य-
धिकरणे भाष्यकृदेवाभिधत्ते । जाते वृत्तिविकल्पादिदौस्थ्ये तु निरवय-
वेषु कृत्वैकदेशविकल्पानवसरात् व्यासज्यवृत्तित्वरूपतृतीयप्रकारसं-
वाच्चिरस्यते ॥

नन्विति ॥ भवति प्रत्यय इति ॥ जात्यादिबुद्धिसदृश पङ्क्ति-
यूष वनमित्यादि प्रत्यय इत्यर्थः । अयं भावः—सिद्धान्तिना हि “न
प्रत्यक्षा सती” इति ग्रन्थेन जातिः व्यक्तिः पृथगस्ति व्यक्तिव्यतिरेकेण
गृह्यमाणत्वात्, यदेव तदेवमिति जातिसद्भावेऽनुमानमुपन्यस्तमिति मत्वा
पूर्वपक्षी वनोपन्यासेन तस्यानुमानस्य व्यभिचारः वक्ति-वनस्य हि वृक्ष-
व्यतिरेकेण गृह्यमाणत्वेऽपि पृथगस्तित्वं नास्तीति ॥

समाधत्ते—नासंबद्धमिति ॥ अयमाशयः—यत्पूर्वपक्षिणोक्तं जात्य-
सद्भावानुमानं तस्य प्रत्यक्षेण बाधितत्वमुक्तं, न प्रत्यक्षासतीत्यनेन
ग्रन्थेन । तस्य ग्रन्थस्य जातिसद्भावानुमाने तात्पर्यं गृहीत्वा व्यभि-
चारप्रदर्शनं असंबद्धवचनमिति ॥

अथ असत्यार्थान्तरे इत्यादिग्रन्थस्य वनादिबुद्धिवत् जातिबुद्धेः अपि
प्रत्यक्षाभासत्वात् अनुमानबाधोद्धार एव तात्पर्यम्, अथवा जातिसद्भाव-
वादिनः सिद्धान्तान्तरस्य दूषणे तात्पर्यं इति द्वेधा विकल्प्याद्य अनुव-

किमसति वने वनप्रत्ययो भवतीति प्रत्यक्षमेवाक्षिप्यते वृक्षा अपि न सन्तीति । यद्येव प्रत्युक्तस्स माहायानिक पक्षः, अर्थविषया हि प्रत्यक्षबुद्धिः न बुद्ध्यन्तरविषयेति ॥ अथ किमाकृतिसद्भाववादी उपालभ्यते—सिद्धान्तान्तरं ते दृश्यतीति वनेपि सति वनप्रत्ययः प्राप्नोतीति । एवमपि प्रकृतं दूषयितुमशक्नुवतः तस्सिद्धान्तान्तरदूषणे निग्रहस्थानमापद्यते, असाधकत्वात् । स हि वक्ष्यति दृश्यतु यदि दृश्यतु । किं तेन दृष्टेन अदृष्टेन वा प्रकृतं त्वया साधितं भवति ? मदीयः पक्षो दूषितो भवतीति ॥

वृक्षव्यतिरिक्तं वनं यस्मान्नोपलभ्यते अतो वन नास्तीत्यवगम्यते । यदि वने अन्येन हेतुना सद्भावविपरीतः प्रत्यय उत्पद्यते मिथ्यैव वनप्रत्यय इति ततो वन नास्तीत्यवगच्छामः । न च गवादिषु प्रत्ययो विपर्येति । अतो वैषम्यम् ॥

दति—किमसति वने इति ॥ तर्हि शून्यवादोऽयं माहायानिकसम्मतः प्रागेव शून्यवादे “अर्थविषया हि प्रत्यक्षबुद्धिः” इत्यनेन प्रतिक्षिप्त इति समाधत्ते—यद्येवमिति ॥ द्वितीय विकल्पमनुवदति—अथ किमाकृतीति ॥ वनेऽपि सतीति ॥ वस्तुतोऽसत्यामपि जातौ प्रतीतिमात्रेण यदि जातिरस्ति, तर्ह्यसदपि वनं प्रतीतिमात्रेण तस्यादिति भावः । अप्रकृतोपन्यासेन प्रकृतस्य न कापि क्षतिरिति समाधत्ते—एवमपीति ॥ स हीति ॥ सिद्धान्तीत्यर्थः ॥ वचनप्रकार विशयदति—दुष्यत्विति ॥ विफलोऽयमुपन्यास इति भावः ॥

स्वसिद्धान्तमाह—वृक्षेति ॥ वनबुद्धिजातिबुद्ध्योः वैलक्षण्यमाह—यदि वन इति ॥ अन्येन हेतुनेति ॥ देशकालाद्यन्यतमेन उपाधिनेत्यर्थः । न च गवादिष्विति ॥ गोत्वादिजातिप्रत्यय इत्यर्थः ॥ नाधितत्वाबाधितत्वलक्षण विशेषसत्त्वात् एव जातीयकत्वमपि नास्तीति भावः ॥

अथ वनादिषु नैव विपर्येति न ते सन्तीति । तस्मादसबद्धः पङ्क्तिवनोपन्यास । अत उपपन्न जैमिनिवचन आकृतिश्च ब्दार्थ इति । यथा चाकृतिः शब्दार्थं तथोपरिष्ठान्निपुणतरमुपपादयिष्याम इति ॥ १-३-३३ ॥

सबन्धाक्षेपपरिहार

अथ संबन्धः क इति । यत् शब्दे विज्ञाते अर्थो विज्ञायते स तु कृतक इति पूर्वमुपपादित, तस्मान्मन्यामहे—केनापि पुरुषेण शब्दानामर्थैस्सह सबन्धं कृत्वा संव्यवहर्तुं वेदाः प्रणीता इति । तदिदानीमुच्यते—अपौरुषेयत्वात्सबन्धस्सिद्ध इति ? कथं

एव वृक्षातिरिक्तस्य वनस्य बाधकप्रत्ययसत्त्वादसत्त्वमुपपादितम् । यदि तु नाय विशेषो घटते इति कश्चिदभिनिविशे त प्रतीदमाह—अथ वनादिष्विति ॥ सर्वथाऽपि पङ्क्तिवनोपन्यास. असबद्ध इत्याह—तस्मादिति ॥ आकृतिवादमुपसहरति—अत इति ॥ जैमिनिवचन “आकृति क्रियार्थत्वात्” इति सूत्र आकृतेऽशब्दार्थव्यवस्थापनपरम् । तत्प्रकारस्तूचरत्र भविष्यतीत्याह—यथेति ॥ उपरिष्ठात् तृतीयपादे त्रयस्त्रिंशे सूत्र इत्यर्थे ॥

एव शब्दार्थचिन्ताव्यवहित सबन्धः नित्यानित्यचिन्तार्थं पुनर्न्यायते—अथ सबन्धः क इति ॥ प्रागुक्तमनुभाषते—यदिति ॥ अव्ययमिदं, येन सबन्धेन शब्दज्ञानादर्थज्ञानं स शक्तिसंज्ञाद्यपरपर्यायं कृतकश्चेति सबन्धाक्षेपवादे प्रोक्तमित्यर्थः । जगदादिपक्षेण समयलक्षण सबन्ध शङ्कते—तस्मादिति ॥ अपौरुषेयत्व प्रतिजानीते—तदिदानीमिति ॥ कत्रभाव हेतु वक्ति—कथमित्यादिना ॥ स्वरूपासिद्धिमभावप्रमाणेन परिहरति—कथं सबन्धेति ॥ अप्रत्यक्षमन्यथासिद्धमिति पुनरसिद्धिमाशङ्क्य—समाधत्ते—ननु चिरेत्यादिना ॥

पुनरिदमवगम्यते, अपौरुषेय एष संबद्ध इति । पुरुषस्य संबन्धुरभावात् । कथं संबन्धा नास्ति ? प्रत्यक्षस्य प्रमाणस्याभावात् । तत्पूर्वकत्वाच्चेतरेषा प्रमाणानाम् । ननु चिरवृत्तत्वात् प्रत्यक्षस्याविषयो भवेदिदानीतनानाम् । न हि चिरवृत्तस्तत्र स्मर्येत । न च हिमवदादिषु कूपारामादिवत् अस्मरणं भवितुं मर्हति । पुरुषवियोगो हि तेषु भवति देशोत्सादेन कुलोत्सादेन वा न च शब्दार्थव्यवहारवियोगः पुरुषाणामस्ति ॥

स्यादेतत्—संबन्धमात्रव्यवहारिण निष्प्रयोजन कर्तृस्मरणमनाद्रियमाणाः विस्मरयुरिति । तन्न—यदि हि पुरुष कृत्वा संबन्ध व्यवहारयेत् व्यवहारकालेऽवश्य स्मर्तव्यो भवति । सप्रतिपत्तौ हि कर्तृव्यवहर्त्रोरर्थः मिद्धयति न विप्रतिपत्तौ । न

अयमाशय —यदि हि कश्चित् पदार्थसंबन्ध कृत्वा वेदवाक्य व्यवहृतवान् तदाऽवश्य समयव्यवहारयोः एककर्तृकत्वं कर्तुराप्तत्वं च प्रतिपत्तुमि स्मर्तव्यं, न च वेदादर्थं प्रतिपद्यमाना समयकर्तार तेन सह वेदवक्तुरेकत्वं तस्य चाप्तत्वं स्मरन्तो दृश्यन्ते । बौद्धादयोऽपि हि स्वागमकर्तार स्मरन्ति । ततश्चावश्य स्मर्तव्यत्वमुक्तं भवति, ततश्च नान्यथासिद्ध चिरवृत्तत्वेन अप्रत्यक्षमिति । तदेवोपपादयितुं शक्त्वा, समाधानं च—न च हिमवदित्यादिना ॥

प्रयोजनाभावादस्मरणमाशङ्क्य समाधत्ते—स्यादेतदित्यादिना ॥ सप्रतिपत्ति एकत्वाप्तत्वनिश्चयः । उदाहरणं न हीति ॥ अपाणिनेः पाणि- निभिन्नस्य । अननुमन्यमानस्य अनभ्युपगमन्तु । समयमज्ञानत इति भावः । अपिङ्गलस्य छन्दश्शास्त्रकर्तृपिङ्गलाचार्यभिन्नस्य । सप्रतिप्रघेते एकत्वाप्त- त्वनिश्चयविषयीक्रियेते । पाणिनिव्येन पिङ्गलत्वेन ज्ञानाभावेऽपि यस्मय- कर्ता स एव व्यवहर्तेति निर्णय आवश्यक एवेति भावः । विशदयति—

हि वृद्धिशब्देनापाणिने व्यवहारतः आदैचः प्रतीयेरन् । पाणि-
कृतिमननुमन्यमानस्य वा । तथा मकारेणापिङ्गलस्य न सर्वगु-
रुल्लिखक प्रतीयेत । पिङ्गलकृतिमननुमन्यमानस्य वा । तेन कर्तृ-
व्यवहर्तारौ सप्रतिपद्येते । तेन वेदे व्यवहरद्भिरवश्यं स्मरणीय-
संबन्धस्य कर्ता स्यात् । व्यवहारस्य च । न हि विस्मृते
“वृद्धिरादैच्” इति सूत्रस्य कर्तरि “वृद्धियस्या चामादिः”
“इति किञ्चित्प्रतीयेत । [तथा न खलु विस्मृते “धीश्रीस्त्रीम्”
इति सूत्रस्य कर्तरि “विद्युन्मालामौगौ” इत्यादिना किञ्चि-
त्प्रतीयेत ॥]

तस्मात्कारणादवगच्छामः—न कृत्वा संबन्ध व्यवहा-
रार्थं वेदाः प्रणीता इति ॥

यद्यपिच विस्मरणमुपपद्येत । तथापि न प्रमाणामन्तरेण
संबन्धार प्रतिपद्येमहि । यथा विद्यमानस्याप्यनुपलम्भनं भवतीति
नैतावता विना प्रमाणेन शशविषाणं प्रतिपद्यामहे । तस्माद-
पौरुषेयशब्दस्यार्थेन संबन्ध इति ॥

न हि विस्मृते इति ॥ अपौरुषेयत्व निगमयति—तस्मादिति ॥ अन-
न्यथासिद्धकर्त्रभावरूपहेतोरित्यर्थः ॥

अथाम्युपेत्याप्यस्मरणनियम योग्यानुपलब्ध्या पुरुषाभाव साध-
यति—यद्यर्थात्यादिना ॥

अत्र “नन्वर्थापत्त्या संबन्धारम्” इत्यारभ्य “तस्मात्संबन्धुर-
भावः” इत्यन्तः भाष्यवार्तिककृता तात्पर्यतोऽपि न व्याख्यातम् ।
अस्मिन् भागे प्रतिपाद्यमानोऽर्थापत्तिनिरासः अव्यतिरेकसूत्रभाष्ये
“अस्तिचेद्व्यवहारसिद्धिः न नियोगतस्संबन्धो भवितव्यमित्यर्थापत्तिरपि
नास्ति” इति वाक्येन गतार्थः । अतोऽधिकमिव भाति । तथापि

नन्वार्थापत्त्या संबन्धार्हं प्रतिपद्येमहि । न ह्यकृतसंबन्धा-
च्छब्दादर्थं प्रतिपद्यमानान् उपलभामहे । प्रतिपद्येरथेत् प्रथमा
श्रवणेऽपि प्रतिपद्येरन् । तदनुपलम्भनादवश्यं भवितव्यं सव-
न्धेति चेन्न—सिद्धवदुपदेशात् । यदि सबन्धुरभावाच्चियमतो
नार्थाः उपलभ्येरन् ततोऽर्थापत्त्या संबन्धारमवगच्छामः । अस्ति-
त्वन्यः प्रकारः । वृद्धानां स्वार्थेन संव्यवहारमाणानां उपशृ-
ण्वन्तो बालाः प्रत्यक्षमर्थं प्रतिपद्यमाना दृश्यन्ते । तेऽपि वृद्धाः
यदा बाला आसन् तदान्वेष्यो वृद्धेभ्यः, तेऽप्यन्वेष्य इति
नास्त्यादिरित्येवं वा भवेत् ।

अथवा—न कश्चिदेकोऽपि शब्दस्यार्थेन सबन्ध आसीत्
अथ केन चित् संबन्धाः प्रवर्तिता इति । अत्र वृद्धव्यवहारे सति
नार्थादापद्येत सबन्धस्य कर्ता । अपिच व्यवहारवादिनः प्रत्यक्ष-
मुपदिशन्ति कल्पयन्तीनरे सबन्धारम् । नच प्रत्यक्षे प्रत्यर्थिनि
कल्पना साध्वी । तस्मात्संबन्धुरभावः ॥

व्याख्यास्याम — सबन्धुर्योग्यानुपलब्धिः प्रागुक्ता नाम्नीत्याशङ्कते—
नन्वर्थापत्त्येति ॥ अन्यथाऽनुपपन्नमर्थप्रतीतीति लक्षणं कल्पकमाह—
न ह्यकृतेति ॥ अन्यथोपपत्तिप्रयोजक अनादिव्यवहारमाभिसंधाय समा-
धत्ते—न सिद्धवदिति ॥ सिद्धवत् नित्यवत् ॥ सिद्धवदिति स्वपदानि
विकल्प्य वर्ण्यन्ते—यदीत्यादिना इत्येव वा भवेदिति सिद्धान्तपक्षः ।
अथवेति पूर्वपक्षः । प्रयोजकान्तरं निगमयति—अत्रेति ॥ जगदादि-
वादोपेक्षया जगदनादिवादस्य प्राबल्यमाह—अपिचेति ॥

ननु सृष्टिप्रलयप्रवाहं श्रुतिस्मृत्यादिसर्वागमसिद्धं सर्वलोकप्रसि-
द्धं कथमपलप्यत इति चेत्, सत्यम्—सर्वागमानां तात्पर्यमिदं-
मुच्यते—यद्वैप्रभावविज्ञानं तदर्थोऽयं सर्वं सृष्टिप्रलयवादः । यथा

अव्यतिरेकश्च ॥ ७ ॥

यथाऽस्मिन् देशे सात्त्वादिमति गोशब्दः । एवं सर्वेषु दुर्गमेष्वपि । बहवस्संबन्धार कथं संगस्यन्ते । एको न शक्नुयात् । अतो नास्ति सबन्धस्य कर्ता । अपर आह—अव्यतिरेकश्च ॥ न हि संबन्धव्यतिरिक्तः कश्चित्कालोऽस्ति । यस्मिन् न कश्चि-
समस्तपुरुषकाराभावेऽपि सृष्टिकाले दैववशेन सर्वं प्रवर्तते । प्रलयकाले च सत्यपि पुरुषकारे दैवोपरमादेवोपरमते । तस्माद्दैवलक्षणधर्मानुष्ठानाय यतितव्यमित्येतत्पर स्मृष्टिप्रलयशास्त्रं सर्वमिति सिद्धान्तः । उक्तं च—
इदानीमिव सर्वत्र दृष्टान्नाधिकमिष्यते ।

उपलब्ध्यनुसारेण व्यवस्थासिद्धिरीदृशी ॥ इति ॥

इदं च सूत्रं वृत्तिकारेण द्विधा व्याख्यातम् । देशाव्यतिरेक-
कालाव्यतिरेकश्चेति । तत्राद्यमनुवदति—यथा अस्मिन्निति ॥ शब्दार्थयोः देशतः व्यभिचारो नास्तीति भावः । सचाव्यभिचार एकस्य सबन्धकर्तृत्वे गमनासभवात् न सभवति । बहूना कर्तृत्वे परस्पर सगति सगान विगानाभावो वा न सभवति, बहुत्वस्य विगाननियतत्वादिति भावः । नियतत्वानभ्युपगमे—द्वितीयं पक्षमनुवदति—अपर आहोति ॥
कालतोऽपि व्यभिचारो नास्तीति भावः । तमुपपादयति—कथमित्यादिना ॥
केन चिच्छब्दनेति ॥ सर्वेषामप्रसिद्धत्वे अस्य शब्दस्यायमर्थ इति सकेतव्यवहार एव न सभवतीत्यर्थः । अभ्युपगन्तव्या इति ॥ यदा शब्दार्थयोरनादिता तदैवानर्थकस्य प्रयोगायोगात् सबन्धानादिताऽपि सिद्धेवेति भावः । अस्ति चेदिति ॥ अनादिव्यवहारासिद्धिरस्ति चेत् इत्यर्थः । अर्थापत्त्यनुपपात्तिस्तु प्रागेव प्रगञ्चिता इति ॥

अप्रसिद्धार्थैः पदैः सबन्धकराण्य वाक्यरचना सबन्धकर्तृत्वेन सभवतीति चेत्, अप्रसिद्धसबन्धा बालाः कथं व्यवहारात्सबन्धं गृह्णन्ति-

दपि शब्दः केनचिदर्थेन संबद्ध आसीत् । कथम्—संबन्ध-
क्रियैव हि नोपपद्यते । अवश्यमनेन संबन्धं कुर्वता केन चित्
शब्देन कर्तव्य । येन क्रियेत तस्य केन कृतं । अथान्येन
केनचित् शब्देन कृतं, तस्य केनेति तस्य केनेति नैवावतिष्ठते ।
तस्मादवश्यमनेन संबन्धं कुर्वता अकृतसंबन्धाः केचन शब्दाः
वृद्धव्यवहारसिद्धा अभ्युपगन्तव्याः । अस्ति चेत् व्यवहार
सिद्धिः न नियोगतः संबन्धा भवितव्यामिति अर्थापत्तिरपि
नास्ति ॥

स्यादेतत्—अप्रमिद्धसंबन्धा बाला कथं वृद्धेभ्य प्रति-
पद्यन्ते इति । नास्ति दृष्टे अनुपपन्नं नाम । दृष्टा हि बाला
वृद्धेभ्य प्रतिपद्यमानाः । न च प्रतिपन्नसंबन्धाः संबन्धं कर्तुं ।
तस्माद्वैषम्यम् ॥

अर्थेऽनुपलब्धे ॥ ८ ॥

अनुपलब्धे च देवदत्तादावर्थे अनर्थकं सज्ञाकरणं अशक्यं
च, विशेषान् प्रतिपत्तुं हि सज्ञाः क्रियन्ते विशेषाश्चोद्दिश्य ।
रित्याशङ्कते—स्यादेतदिति ॥ व्यवहर्तुस्संबन्धज्ञानसत्त्वात् संबन्धाख्या-
नाय वाक्यरचना सभवत्येव । यदि परं प्रतिपत्तृणां अप्रमिद्धसमस्त-
शब्दार्थानां न कथंचन वाक्यात् अर्थप्रतीतिस्सभवतीत्युच्येत, तच्च
दृष्टविरुद्धं अङ्गुळिनिर्देशादिषेष्ठाभाषान्तरप्रभृत्यनेकोपायानां दर्शनादि-
त्यभिप्रेत्य समाधत्ते—नास्तीति ॥ नचप्रतीतिः ॥ संबन्धम्यं कर्तुं समय-
कर्तुः प्रतिपन्नसंबन्धाः अन्ये शब्दा न सन्ति । अतो वैषम्यात् न
प्रतिबन्दीति भावः ॥

युक्तग्रन्तेरेण सज्ञाकरणं प्रतिषेधत्सूत्रं व्याचष्टे—अर्थ इति ॥
अनर्थकं अशक्यं सज्ञाकरणं इति पदत्रयमुपतिष्ठते । देवदत्ता-

तद्विशेषेष्वज्ञायमानेषु भयमध्यनवक्लृप्तम् । तस्मादपौरुषेयः शब्द-
स्यार्थेन सबन्ध ॥ अतश्च—

तत्प्रमाणं बादरायणस्यनपेक्षत्वात् ॥ ९ ॥

नचैवं सति पुरुषान्तरं प्रत्ययान्तरं चापेक्ष्यते । तस्माच्चोद-
नालक्षण एव धर्मो नान्यलक्षण । बादरायणग्रहणमुक्तम् ॥

चित्राक्षेपपरिहार

अथ यदुक्त-अनिमित्तं शब्दः कर्मकाले फलादर्शनात् काला-
न्तरे च कर्माभावात्प्रमाणं नास्तीति । तदुच्यते-न स्यात्प्रमाणं यदि
पञ्चैव प्रमाणान्यभविष्यन् । येन येन हि प्रमीयते तत्तत्प्रमाण,
अर्थोपलब्धिर्हि प्रतिपत्तु फल, कर्तुं निमित्तम् । उपलब्धेरेवाभावे
उभय नसिद्धयतीत्याह—अनुपलब्धे चेति ॥ प्रकृते धर्मादिरूपार्थस्यात्य-
न्तानुपलम्भात् न तत्रा सञ्जाकरणं सम्भवतीत्यर्थः । तस्मात् निरुक्ताशक्य-
त्वाफलत्वरूपहेतुद्वयात् तत्प्रमाणमिति सूत्रं स्वव्याख्याने व्याख्यातम् ॥

एव सति केन पुनः प्रमाणेन व्यवहारे सबन्धग्रहणमिति चेत्
इत्थम्—शब्दं बृद्धं अभिधेयं च प्रत्यक्षेण पश्यति । प्रयोज्यवृद्धस्य
प्रतिपन्नत्वं चेष्टयाऽनुमिनोति । पदपदार्थाश्रितं शक्तिलक्षणं सबन्धमर्था-
पत्या कल्पयति । अतस्सबन्धः त्रिप्रमाणकः । तत्रार्थापत्तिस्साक्षात् ।
इतरत् द्वयं द्वारमिति सिद्धान्तः ॥

पूर्वमनिमित्तसूत्रे चित्रादिचोदना मृषा प्रत्यक्षासवादरूपप्रत्यक्षा-
नुपलब्धिविरुद्धत्वात् सप्रतिपन्नवाक्यवदिति अनुमानमुक्तं, भाष्यकृता
तु चित्रा न पशुफला स्वकाले फलादर्शनात्, व्यतिरेकेण यद्यस्य साधनं
तत् स्वकाल एव तत्साधयति यथा सुखसाधनं मर्दनमिति तदेव विश-
दीकृतम् । तदेतदनुष्य प्रत्यक्षासवादस्याप्रयोजकत्वं स्वकाले फलादर्शन-
स्यासिद्धिं चाह—अथ यदुक्तमिति ॥ नच—प्रमाणेनेति ॥ चोदनार्थे

शब्देनापि प्रमीयते ततश्शब्दोऽपि प्रमाणम् । यथैव प्रत्यक्षम् ।
नच प्रमाणेनावगत प्रमाणान्तरेणानवगतमित्येतावताऽनवगत
भवति । नचैव श्रूयते कृते कर्मणि तावतैव फल भवतीति ।
किंतु कर्मणः फल प्राप्यत इति । । यच्च कालान्तरे फलस्यान्य-
त्प्रत्यक्ष कारणमस्तीति । नैष दोषः, तच्चैव हि तत्र कारणं
शब्दश्चेति ॥

प्रत्यक्षस्यानधिकार इति भावः । तावतैवेति ॥ अनन्तरमेवेत्यर्थः ॥
कित्विति ॥ अविशेषितकालविषयिणी चोदनेत्यर्थः । आनन्तर्यविषय-
प्रत्यक्षासवादः । अविशेषितकालविषयिणी चोदना इति विषयभेदान्न
विरोध इति भावः ॥

चित्रादिकारणस्य सेवाप्रतिग्रहादिनाऽन्यथासिद्धिमनूय निर-
स्यति—यच्चेति ॥ प्रत्यक्ष प्रत्यक्षसिद्ध सेवादिकमित्यर्थः । तच्चैवेति ॥
लोकसिद्ध सेवादिकम्, शब्दश्च—शब्दबोध्य चित्रादिकम् । अदृष्ट
दृष्टोपसहारेणैव कार्यं करोतीति सिद्धान्तात् ॥

अयमत्रसारः—चित्रादे फल पश्चादीह वाऽमुष्मिन्नेव वा भव-
तीत्यनियमः । कारीर्यादेः फल वृष्ट्यादीहैवेति नियमः । कचिददर्शनं
तु दृष्टसामग्र्यभावेन वा प्रबलकर्मान्तरादिप्रतिबन्धेन वा उपपद्यते ।
ज्योतिष्टोमादे फल स्वर्गादिक त्वमुष्मिन्नेवेति नियम इति ॥

एवस्थितेऽपि सिद्धान्ते भर्तृमित्रा आक्षपादयाश्च चित्रादेः
फलमिहैवेति कथयन्ति । अदर्शनं तु कर्तृकर्मसाधनवैशुण्यनिबन्धन-
मित्यवयन्ति । तेषां मते इहाकृतचित्रादिकर्मणा पशुफलं निर्निमित्तं
स्वाभाविकमापद्यते । प्राकृतचित्रादीनां प्रागेव क्षणित्वात् । स्वर्गादि-
फलकर्मणश्शेषाशस्य पश्चादिफलकल्पना न युक्तिमती । न ह्यन्यत्फल

आत्मवाद

यत्तु प्रत्यक्षविरुद्ध वचनमुपन्यस्त—स एष यज्ञायुधी-
यजमानोऽञ्जसा स्वर्गं याति” इति प्रत्यक्षं शरीरक व्यपादि-
शतीति । तदुच्यते—शरीरसंबन्धात् यस्य तच्छरीरं सोऽपि
तैर्यज्ञायुधैः यज्ञायुधीत्युच्यते ॥

कर्मन्यत्साधयति । तथाच कार्यमात्रस्यादृष्टाधीनत्वापायात् वैदिक-
पन्था विलीयेत ॥

यत्तु—“स्वधर्मनिष्ठा” प्रेत्यकर्मफलमनुभूय ततश्शेषेण विशिष्ट
जात्यादिमन्तो जन्म प्रतिपद्यन्ते” इत्यादिक गौतमीयादिवचन, तत्रापि
शेषशब्द चित्रादिपर इत्येवावगन्तव्यम् । कथं तर्हीहाकृतकारीरिर्कर्मणा
वृष्टिसिद्धिः ? यत्त्वन्नादिफल जन्मान्तरानुष्ठित तत् स्वफलोत्पादनाय
शरीरमिव वृष्ट्यादिकमारभत इति ॥

अथ देहातिरिक्तमात्मान निरूपयितुं प्रस्तौति—यत्त्विति ॥
नष्टसति देहव्यतिरिक्तात्मानि परलोकफलाश्चोदना उपपद्येरन् । तदिद-
मात्मास्तित्वमास्मिन् शास्त्रे प्रारम्भ एवावश्यवक्तव्यमपि उत्तरे तन्ने सूत्र-
कृता तृतीयाध्यायतृतीयपादे “नैक आत्मनश्शरीरे भावात्” इत्यत्र
उक्तमिति वृत्तिकृता भगवतोपवर्षेणे व्याख्यातम् । अत्रात्मा स्तित्वा
भिधानप्रसक्तौ शरीरके वक्ष्याम इति उद्धार (अपकर्षनिवृत्ति) कृतः
शबरस्वामिना तु अत एवाकृष्यात्रात्मास्तित्व निरूप्यते । अयमश-
श्रीशाङ्करभाष्ये निरुक्तसूत्रे भाषितः ।

यज्ञायुधसंप्रयुक्तशरीरसंबन्धात् यज्ञायुधिपदेन लक्षणयाऽऽत्मा-
च्यत इति समाधत्ते—तदुच्यत इति ॥ शरीरादीनामात्मत्वे तेषामनि-
त्यत्वेन कृतनाशाकृत्यागमप्रसंगः । तदर्थस्तु कृते कर्मणि कर्तुर्नाश ।
अकृतेऽपि कर्मणि भोक्तुरागम इति । तथाच पुण्यपापव्यवस्थानुपपात्ति-

आह—कोऽभावन्यः नैनमुपलभामहे । प्राणादिभि-
रेनमुपलभामहे । योऽमौ प्राणिति अपानिति उच्छ्वसिति निमिष-
तीत्यादि चेष्टितवान् सोऽत्र शरीरे यज्ञायुधीति ॥

ननु शरीरमेव प्राणिति अपानिति च । न—प्राणादयस्तु
रिति भावः । तदर्थं नित्यं पुमान् प्रतिपादयितव्यं, स च भोक्तृत्व-
सिद्ध्यर्थं चेतनः । देहान्तरप्राप्तये च विभुः । सुखदुःखव्यवस्थातश्च
नाना । अयमेव तस्य शरीरेण सबन्धः, यद्भोगायतनत्वेन आत्मसा-
त्करणम् । सोऽप्यात्मा प्रत्यभिज्ञालक्षणप्रत्यक्षसिद्धः । प्रत्यभिज्ञा च
अन्येषु दृष्टमपरेषु इदमहमदर्शमित्यहप्रत्ययः । तस्य च द्रव्यसत्त्वा-
दिरूपस्य ज्ञानसुखदुःखादिलक्षणः परिणाम अभ्युपगम्यते । तावता
कुण्डलादिषु सुवर्णस्यैव धर्मिणो नित्यत्वान्न नाशः । ततश्च कर्तृत्व-
भोक्तृत्वाद्युपपत्तिः । न हि खलु वैशेषिकाणामिव परिस्पन्द एक एव
क्रियेति सिद्धान्तः । किंतु परिणामलक्षणं सूक्ष्मं व्यापारोऽपि
क्रियाऽस्तीति ॥

अत इदमप्यपास्तम्—यत् विभोस्तावत् सयुज्यमानवियुज्य-
मानदेशासभवेन म्पन्दितुमप्यसामर्थ्यात् न कर्तृत्वं ननरा नित्यस्था
प्रच्युतप्राच्यरूपस्य सुखदुःखादिरूपो विकारः न तमा भोक्तृत्वमिति ॥

तत्र प्रथमं देहात्मवादनिरासाय वैशेषिकादिसम्भता हेतव उप-
न्यस्य निरस्यन्ते । तथा निरासानादरे तेषु हेतुषु स्वसमंते अहप्रत्यये
च शिष्यास्सामान्यदृष्टयो भवेयुरिति ॥

तत्र प्राणापानोच्छ्वासनिमेषादयो व्यापारा न शरीरधर्माः
शरीरधर्मवैधर्म्यात् व्यतिरेकेण रूपादिवत् इत्यभिप्रायेणाह—आह
कोऽसाविति ॥ वैधर्म्यं चायावदव्यभावित्वम् । तदपि शरीरे स्थितेऽपि
अपगतिलक्षणमित्याह—प्राणादयस्त्विति ॥ वायोरूर्ध्वाधोगतिविशेषः

शरीरगुणविधर्माणः, अथावच्छरीरभावित्वात् । यावच्छरीरं तावदस्य गुणा रूपादयः । प्राणादयस्तु सत्यापि शरीरे न भवन्ति । सुखादयश्च स्वयमुपलभ्यन्ते न रूपादय इव शरीरगुणाः परेणापीति । तस्माच्छरीरगुणवैधर्म्यादन्य शरीरात् यज्ञायुधीति ॥

आह—कुत एष सप्रत्ययः ? सुखादिभ्योऽन्यः तद्वान-
स्तीति । न हि सुखादिप्रत्यारूप्यानेन तस्य स्वरूपमुपलभामहे,
प्राणापानाभ्यामुच्यते । तिर्यगामनशलिस्य वायो नाकस्मादूर्वाघो-
गतिस्सभवती तितद्धेतु प्रयत्नोऽनुमीयते । प्रयत्नश्च गुणत्वात् गुणिनम-
नुमापयति, स आत्मेति भावः ॥

एव सुखादयः न शरीरगुणा तद्गुणवैधर्म्यात् व्यतिरेकेण
रूपादिवत् इत्यभिप्रेत्याह—सुखादयश्चेति ॥ अत्रापि वैधर्म्यं परानुपल-
भ्यत्वमित्याह—न रूपादय इवेति ॥ तथाच सुखादयः किञ्चिद्भ्या-
श्रिता गुणत्वात् रसादिवदित्यतिरिक्तद्रव्यरूपात्मसिद्धिरित्यभिप्रायः ॥

तदुपरि विज्ञानात्मवादी सौगत प्रत्यवतिष्ठते—आह कुत
एष इति ॥ सप्रत्यय उभयवादिसिद्धोऽनुभव इत्यर्थः । अयं भावः—
ज्ञानविशेषा हि सुखादयः, ज्ञानं च स्वतन्त्रं वस्तु न कस्यचिद्गुणः,
अतो नान्यस्तद्वानिति । यदाहुः—

न गुणव्यतिरिक्तश्च गुणी नामास्ति कश्चन ।

गुणत्वमप्यस्य नास्ति यतोऽधिष्ठानकल्पना ॥

न सुखादिप्रमेयं वा मनो वाऽस्तीन्द्रियान्तरम् ।

अनिषेधादुपात्तं चेदन्येन्द्रियमतं वृथा ॥

इति ॥ अथोच्यते तेन विनेति ॥ स्वतन्त्रस्यापि सबन्धिकल्पनेऽ-
नवस्थेत्यर्थः ॥

अथ ज्ञानं नाम क्रिया, गच्छतात्यादिवत् ज्ञानातीति

तस्मात् शशविषाणवदसौ नास्तीति । अथोच्यते — तेन विना कस्य सुखादय इति । न कस्यचिदपीति वक्ष्याम । न हि यो य उपलभ्यते तस्य तस्य संबन्धिना भवितव्यम् । यस्य संबन्धोऽप्युपलभ्यते संबन्धी च, तस्यायं संबन्धीति गम्यते । न हि चन्द्रमसं आदित्यं वोपलभ्य संबन्धान्वेषणा भवति कस्यायमिति । न कस्यचिदपीत्यवधार्यते । तस्मान्न सुखादिभ्योऽन्यः तद्भानस्तीति । अथोपलब्धस्यावश्यं कल्पयितव्यस्संबन्धी भवति, तत आत्मानमपि अनेन प्रकारेणोपलभ्य कस्यायमिति संबन्ध्यन्तरमन्विष्येम । तमपि कल्पयित्वा अन्यमपि कल्पयित्वा अन्यमित्यव्यवस्थैव स्यात् । अथ कचित्कल्पयित्वा न संबन्ध्यन्तरमपि कल्पयिष्यसि तावत्येव विरम्यसि तावता च परितुष्यसि ततो विज्ञान एव परितुष्य तावत्येव विरन्तु मर्हसि ॥

अत्रोच्यते-यदि विज्ञानादन्यो नास्ति कस्तर्हि जानातीत्युच्यते, ज्ञानस्य कर्तुरभिधानमनेन शब्देनोपपद्यते, तदेष शब्दोऽर्थवान् कर्तव्य इति ज्ञानाद्व्यतिरिक्तमात्मानं कल्पयिष्याम इति ॥ आ.—देवा एनं शब्दमर्थवन्त कल्पयिष्यन्ति यदिकल्पयितव्यं प्रमंस्यन्ते । बहव खल्विह जना अस्त्यात्मा अस्त्रालोके वेदेच प्रयुज्यते, क्रिया च सबन्धिन्येवेति शङ्कते - अत्रोच्यते-यदीति ॥ विज्ञानादिव्यतिरिक्त अत्रास्तीति साक्षाद्वक्तारोऽपीह लोके जनाः नात्मान साधयितुं प्रभवन्ति किंपुनः पारपरिक जानातीति शब्द इति परिहसति सौगत. —आ. देवा इति ॥ आ. इति भावसूचकमव्ययम् । प्रमंस्यन्ते प्रमन्तु शक्यन्ति यदीत्यर्थः । देवशब्दप्रयोगशब्दरूपाणां देवानामचेतनत्वात् अशक्यातिशयाभिप्रायेण ॥

त्मेति आत्मसत्तावादिन एव शब्दस्य प्रत्यक्षवक्तारो भवन्ति ।
तथापि नात्मसत्तां कल्पयितुं घटन्ते । किं पुनः जानातीति
परोक्षशब्दः । तस्मादसदेतत् ॥

उच्यते—इच्छया आत्मानमुपलभामहे । कथमिति ?
उपलब्धपूर्वे हि अभिप्रेते भवतीच्छा । यथा —मेरुमुत्तरेण यान्य
स्मज्जातीयैरनुपलब्धपूर्वाणि स्वादूनि वृक्षफलानि न तानि प्रति
अस्माकमिच्छा भवति । नो खल्वन्येन पुरुषेणोपलब्धेऽपि विष-
येऽन्यस्य उपलब्धुरिच्छा भवति । भवति चान्येद्युरुपलब्धे अन्ये-
द्युरिच्छा । तेनोपलम्भेन समाजकर्तृका सेत्यवगच्छाम । यदि
विज्ञानमात्रमेवेदं उपलम्भकमभविष्यत्, प्रत्यस्ते तस्मिन् कस्यापरे-
द्युरिच्छाऽभविष्यत् । अथ नु विज्ञानादन्यो विज्ञाता नित्यः तत
एकस्मिन्नहनि य एवोपलब्धा परेद्युरपि स एवैषिष्यतीति ।
इतरथा हीच्छा नोपपन्ना स्यात् ॥

एव सुखादिषु हेतुषु निरस्तेषु इच्छयाऽऽत्मसाधनं सिद्धा-
न्त्यनुवदति—उच्यते इच्छयेति ॥ अन्यस्योपलब्धुरिति ॥ उपलब्धु-
रिति पञ्चम्यन्तमन्यस्येत्यस्य प्रतियोगिसमर्पकम् । तेनोपलम्भेनेति ॥
इच्छा उपलम्भसमानकर्तृका उपलम्भाविषयाविषयकत्वात् सप्रतिप-
न्नैक्यक्रियावादिति युक्तिरत्राभिमता । ततश्च स कर्ता न विज्ञानमात्र
नापि क्षणिकमिति । तस्य स्थिरत्वं विशदयति—यदि—विज्ञानमात्रमिति ॥

अत्रापि सौगत, प्रतिवक्ति—अत्रोच्यते—अनुपपन्नमिति न क्तेति ॥
विज्ञानादन्यो नित्यो विज्ञाता यदा प्रमाणान्तरानवगतः तदा ज्ञाने-
च्छयोः समानकर्तृकत्वं कर्तुं स्थिरत्वं च नोभयवादिप्रतिपन्नं, ततश्चा-
प्रयोजकमनुमानमिति भावः । एतदेव विशदयति—विज्ञानात्तावदन्य-
मिति ॥ प्रत्यक्षावगतत्वादिति ॥ अनुपपत्तिः प्रत्यक्षबाधितेति भावः ।

अत्रोच्यते—अनुपपन्नमिति न क सप्रत्ययः । यत् न प्रमाणेनावगतम् । विज्ञानात्तावदन्य नोपलभामहे । यन्नोपलभामहे तत् शशत्रिषाणवदेव नास्तीत्यवगच्छामः । नच तस्मिन्नमिति विज्ञानसद्भावोऽनुपपन्न । प्रत्यक्षावगतत्वादेव । क्षणिकत्वं चास्य प्रत्यक्षपूर्वकमेव । नच ज्ञातरि विज्ञानादन्यस्मिन् असति ज्ञाने चानित्ये अपरेद्युरिच्छा अनुपपन्ना, प्रत्यक्षावगतत्वादेव । नो खल्वेतत् दृष्ट, य एवान्येशुरूपलब्धा स एवान्येशुरेषितेति । इदं तु दृष्ट यत् कचिदन्येन दृष्ट अन्य इच्छति कचिन्न—समाना ॥ १०५ ॥ इच्छति सततन्तरे नेच्छतीति । तस्मात् न सुखादिव्यतिरिक्तोऽन्योऽस्तीति ॥

अत्रोच्यते—न हि अस्मत्तार इच्छन्तीत्युपपद्यते । न वा अदृष्टपूर्वं स्मृतिर्भवति । तस्मात् क्षणिकविज्ञानस्कन्धमात्रे स्मृतिरनुपपन्नेति ॥

एवमनतिरेकेऽनुपपत्तिं परिहृत्य क्षणिकत्वेऽनुपपत्तिमपि परिहरति—क्षणिकत्वचेति ॥ प्रत्यक्षपूर्वकमिति ॥ प्रत्यक्षेण तत्कालसत्त्वमात्रग्रहणात् पूर्वोत्तरकालसत्त्वाग्रहणाच्चेति भावः । अतिप्रसंग सतत्यैक्येन परिहरति—इदं तु दृष्टमिति ॥

एवमिच्छाया लिङ्गत्वे निराकृते स्मृतेर्लिङ्गत्वमनुवदति सिद्धान्ती—अत्रोच्यते नहीति ॥ स्मृतिरिच्छासमानाधिकरणा इच्छाजनकत्वात् यत्रेच्छाऽभावः तत्र स्मृत्यभावः । तथा स्मृतिः दर्शनसमानाधिकरणा दर्शनजन्यत्वात् यत्र दर्शनाभावः तत्र स्मृत्यभाव इति प्रयोगावत्राभिमतौ । विज्ञानस्कन्धमात्र इति ॥ विज्ञानप्रवाहातिरिक्तस्थिरात्मानङ्गीकारे स्मृत्यनुपपत्तिरित्यर्थः । स्कन्धो नाम प्रवाहः ॥

स्कन्धघने अन्येन स्कन्धघनेन यत् ज्ञात तत्सन्ततिजेनान्ये-
नोपलभ्यते नान्तसन्ततिजेनान्येन । तस्मात् शून्याः स्कन्धघना
इति ॥

अथास्मिन्नर्थे ब्राह्मण भवति “विज्ञानघन एवैतेभ्यो
भूतेभ्यस्समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति” इति ॥

उच्यते—नैतदेवम् । अन्येद्युः दृष्टे अपरेद्यु अहमिद-
मदर्शमिति भवति प्रत्यय । प्रत्यगात्मानि चैतद्विष्यति ।
स्कन्धघनशब्देन विज्ञानस्कन्धोऽत्र विवक्षितः । स्कन्धश्चासौ घनश्चेति
विग्रहः । घनशब्दः जात्यन्तरमाकर्ष्यप्रतिषेधार्थः । यथा सुवर्णघनः अयो-
घन इति । नान्यत् जात्यन्तरमन्तराले विद्यत इत्यर्थः । तस्मादिति ॥
अतिरिक्तात्माभावेऽपि स्मृत्युपपत्तेरित्यर्थः । शून्याः विषयाश्रयशून्या-
निरन्वयोत्पत्तिविनाशिन्यश्च विज्ञानव्यक्तय इत्यर्थः ॥

वेदवादिनो विरोधं वक्तुं शातपथीयबृहदारण्यक(६-४-२२)
काण्डवाक्यमुपन्यस्यति—अथास्मिन्नर्थे इति ॥ निरन्वयोत्पत्तिं विनाश-
सिद्धान्त इत्यर्थः ॥ विज्ञानघन इति ॥ विज्ञानं च तत् घनश्चेति
विज्ञानघनं विज्ञानस्कन्धः एतेभ्यो भूतेभ्यः पृथिव्यादिभ्यः समुत्थाय
मनुष्यादिभावेन जनिन्वा सघातीभूय तेषु विनश्यत्सु स्वयमपि विन-
श्यति । न प्रेत्य संज्ञाऽस्ति विनाशानन्तरं नामापि नावाशिष्यते इति
श्रुत्यर्थः ॥

एव परोक्षेषु हेतुषु निरस्तेषु प्रत्यभिज्ञालक्षणेनाह प्रत्ययेन आत्मानं
साधयति—उच्यते नैतदेवमिति ॥ विज्ञानातिरिक्तात्मसत्त्वेऽयं प्रत्यय
उपपद्यते, नान्यथेत्याह—प्रत्यगात्मनीति ॥ स्वस्मै स्वयं भासमानत्वं
प्रत्यक्षम् । अहमिति तस्याभिलाषकश्चब्दः ॥

न परत्र । अपरो ह्यसौ अन्येद्युः दृष्टवान् । तस्मात्तद्व्यति-
रिक्तोऽन्योऽस्ति । यत्रायमहंशब्दः ॥

आह—परत्राप्यहंशब्दो भक्त्या दृश्यते । यथा—अह-
मेव पुत्रः । अहमेव देवदत्तः । अहमेव गच्छामीति । अत्रो-
च्यते—न वयमहमितीमं शब्द प्रयुज्यमानमन्यास्मिन्नर्थे हेतुत्वेन
व्यपदिशामः । किं तर्हि ? शब्दात् व्यतिरिक्त प्रत्ययम् ।
प्रतीमो वयं—इममर्थं वयमेवान्येद्युरुपलभामहे वयमेवाद्य स्मराम ।
तस्मात् वयमिममर्थमवगच्छामः—वयमेव ह्य वयमेवाद्य इति ।
ये ह्यः अद्य च, न ते विनष्टाः ॥

अथाप्यस्मिन्नर्थे ब्राह्मणं भवति—“ स वा अयमात्मा ”
इति प्रकृत्य आमनन्ति—“ अशीर्यो न हि शीर्यते ” इति ।

अहप्रत्ययगोचरत्वं अतिरेकसाधनायोक्त अनेकान्तमित्याशङ्कते—
आहपरत्रेति ॥ अह गच्छामीति ॥ अत्र देह^{५४} इति भावः । नास्मामि-
रनुमानमुच्यते, किंतु अहशब्दवेद्यस्य प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययात् विज्ञानातिरेक-
मध्यक्षयाम इति समाधत्ते—अत्रोच्यते न वयमिति ॥ अयमाशयः—यद्य-
र्थान्तरविषयया स्मृत्या विज्ञातार कल्पयेम, तदा वासनावशादेवोपपन्ना
सा स्मृतिः नैव शक्नोति पूर्वापरकालस्थायिन विज्ञातारमुपस्थापयितु-
मित्युच्येत, ज्ञातृप्रत्यभिज्ञा त्वियमुच्यते वयमेव ह्यो वयमेवाद्य इति ।
तेन ज्ञातृत्वप्रकारकेण प्रत्यभिज्ञाप्रत्ययेन प्रत्यक्षेण ज्ञानादन्यस्य स्थिरस्य
ज्ञातृस्तिद्धिरिति । तदेवाह—ये ह्योऽद्य चेति ॥

अत्र वेदविरोधं मन्यमानं शिष्यं प्रतिबोधयितुं ब्राह्मणमुदाहरति—
अस्मिन्नर्थे इति ॥ (६-४-२२)

एष पाठः—स एष नेतिनेत्यात्माऽगृह्यो न हि गृह्यते अशीर्यो

नथा—“अविनाशी वा अरे अयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा”
इति ॥ विनश्वर च विज्ञानम् । तस्माद्विनश्वरादन्य स इत्यव-
गच्छामः । न च शक्यमेवमवगन्तुम्—यथोपलभ्यन्ते अर्थाः
न तथा भवन्तीति । यथा तु खलु नोपलभ्यन्ते तथा भवन्तीति ।
तथाहि सति शशो नास्ति शशस्य विषाणमस्तीत्यवगम्येत ।
नचाहं प्रत्ययो व्यामोह इति शक्यते वक्तुम् । बाधकप्रत्यया-
भावात् । तस्मात्पुत्रादिभ्य व्यतिरिक्तोऽस्ति । एव चेत् स
एव यज्ञायुधीति व्यपदिश्यते ॥

आह—यदि विज्ञानादन्यदस्ति विज्ञातु विज्ञानमपास्य
न हि शीर्यते असगो न हि सज्यते असितो न व्यथते न रिप्यति”
इति । अगृह्य परकीयकरणगोचरयोग्यताग्रहित , अत परकीयेन्द्रिय-
गोचरो न भवतीत्यर्थ । यन्मूर्तं सहन च तच्छीर्यते विशीर्णं भवति ।
अयं तु विपरीत । अमूर्तत्वादेव च असग मृज्जलादिवत् मिथस्सगर-
हित । न व्यथते बाधनयोग्यताराहित्यादेव न शोचतीत्यर्थ । तस्मा-
न्नारिप्यति न हिंस्यते न विनश्यतीति यावत् । अविनाशीति । विनष्टु
शीलमस्य नास्तीत्यविनाशी । ततश्च अनुच्छित्तिधर्मा । उच्छित्तिः
विनाश स च धर्मो यस्य न भवतीत्यनुच्छित्तिधर्मा इति मैत्रेयी प्रति
याज्ञवल्क्य उपादिक्षदित्यर्थः । मानाधीना मेयासिद्धिमुपसहरति—
न च शक्यमिति ॥ तस्मात् अबाधितप्रमाणसत्त्वात् । प्रत्यक्षविसवाद-
मुद्धरति—एवं चेदिति ॥

“तस्माच्छशविषाणवदसौ नास्ति ॥ इत्यात्मनो यदनुपलब्धि-
निरस्तत्वमुक्तं तदुपन्यस्य निरस्यति—आह यदि विज्ञानादिति ॥
निदर्शनायोगादनुपलब्धिरिति भावः ॥

तन्निदर्श्यतां—इदं तदीदृशं चेति । न च तन्निदर्श्यते । तस्मान्न ततोऽन्यदस्तीति ॥ अत्रोच्यते—स्वसंवेद्यस्स भवति नासावन्येन शक्यते द्रष्टुम्, कथमसौ निदर्श्यतेति । यथा च काश्चित् चक्षुष्मान् स्वयं रूपं पश्यति । न च शक्तोऽन्यस्मै जात्यन्धाय तन्निदर्शयितुम् । न च तन्न शक्यते निदर्शयितुमित्येतावता नास्तीत्यवगम्यते । एवमसौ पुरुषः स्वयमात्मानमुपलभते न चान्यस्मै शक्नोति दर्शयितुं, अन्यस्य द्रष्टुः तं पुरुषं प्रति दर्शनशक्त्यभावात् । सोऽप्यन्धः पुरुषः स्वयमात्मानमुपलभते । न च परमात्मानम् । तेन सर्वे स्वेनस्वेनात्मना आत्मानमुपलभमानाः सन्त्येव । यद्यपि परपुरुषं नोपलभन्त इति ॥

अथास्मिन्नर्थे ब्राह्मणं भवति—“शान्ताया वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुषः । आत्मज्योतिस्सम्राडिति होवाच ” इति ॥ परेण नोपलभ्यत इत्यत्रापि ब्राह्मणं भवति—“अगृह्यो न हि गृह्यते ” इति ॥ परेण न गृह्यत इत्यभिप्रायमेतत् । कुतः ? स्वय-

यत्तु बाह्यं वस्तु घटादिकं जडं परप्रकाशं तत् दर्शनयोग्यं निदर्शनयोग्यं च भवति । आत्मवस्तु हि स्वस्माएव स्वयं प्रकाशं, परस्मै तु दर्शनायोग्यमिति न योग्यानुपलब्धिरित्यभिप्रेत्य समाधत्ते—अत्रोच्यते इति ॥

स्वसंवेद्यत्वाद्यर्थे ब्राह्मणान्युदाहरति—अथास्मिन्नर्थे ब्राह्मणमिति ॥ बृहदारण्यकषष्ठध्याये तृतीयं ज्योतिः ब्राह्मणमित्यर्थः । प्रकाशकेषु आदित्यचन्द्राग्निवागादीन्द्रियेषूपरतेष्वपि आत्मा स्वयं प्रकाशते इति जनकं प्रति याज्ञवल्क्य उपदिदेशेति भावः ॥

परानुपलम्भं ब्राह्मणेनापि द्रवयति—अगृह्यो न हीति ॥ व्याख्याति—

ज्योतिष्ट्ववचनात् । अथापि ब्राह्मण—“अत्रायं पुरुष स्वयं-
ज्योतिर्भवानि” इति ॥ केन पुनरुपायेनायमन्यस्मै कथ्यत इति ।
तत्राप्युपाये ब्राह्मण भवति—“स एष नेतिनेत्यात्मेति होवाच”
इति ॥ असावेवरूप इति न शक्यते निदर्शयितुम् । यच्च पर
पश्यति तत्प्रतिषेधस्तस्य उपदेशोपायः । शरीर पर पश्यति
तेनान्मोपदिश्यते—शरीर नात्मा, अस्ति शरीरादन्य इति स
आत्मेति शरीरप्रतिषेधेन उपदिश्यते । तथा प्राणादयो नात्मानः
तत्प्रतिषेधेन तेभ्योऽन्य उपदिश्यते । तथा परस्थास्मुखादयः
परेण लिङ्गेरुपलभ्यन्ते । तेऽपि नात्मान इति तत्प्रतिषेधेन
अन्य उपदिश्यते । यः स्वयं पश्यति न ततोऽन्यः पुरुष
इत्येतदपि पुरुषप्रवृत्त्याऽनुमीयते । यदाऽमौ पुरुष, पूर्वेषु सामि-
कृतानामर्थानां प्रतिसमाधाने शेषानुष्ठाने च यतते अतः प्रवृत्त्या-
वगम्यते नूनमसावनित्यान् नित्यमवगच्छतीति ॥

परेणेति ॥ अत्रायमिति ॥ स्वप्नावस्थायामित्यर्थः । अग्राह्य इति सामान्य-
वचन स्वयज्योतिष्ट्ववचनात्परास्मिन् सकुचितमिति भावः । अथोपदेशो-
पायमपोहः ब्राह्मणोक्तमाह केन पुनरिति ॥ ६-४-२२ इति
होवाचेत्यधिकः माध्यन्दिनपाठः । यः स्वयं पश्यतीति ॥ अनेन-
वाक्येन एकस्मिन्नपि देहे आत्मभेदः प्रतिक्षिप्यते । अनित्यान्नित्य-
मिति अनित्यान् पदार्थान् सदेत्यर्थः ॥ अनया च वचोभग्या जीवानां
मप्यन्तरात्मा परमेश्वरः प्रतिक्षिप्यते भाष्यकृतेति प्रसिद्धिः स्यात् ॥

उपायान्तरमाह—उपमानाच्चेति ॥ नत्विदमुपमानप्रमाणं किंतु
सादृश्यविषयकत्वात् उपमानवाचोयुक्तिः ॥

आत्मनोऽनुपलब्धिनिरस्तत्वशङ्कैवासगतेत्याह—यदुच्यते विज्ञान-

उपमानाच्चोपादिश्यते—यादृश भवान् स्वयमात्मानं पश्यति
अनेनोपमानेनावगच्छ अहमपि तादृशमेव पश्यामीति । यथा—
कश्चिदात्मीया वेदना परस्मै आचक्षीत दह्यमानस्येव मे भवति ।
पात्यमानस्येव मे भवति । रुद्धयमानस्येव मे भवति इति । अतः
स्वयमवगम्यमानत्वात् अस्ति तद्व्यतिरिक्तं पुरुष इति ॥

यदुच्यते—विज्ञानमपास्य तन्निर्दृश्यतामिति । यद्युपाय-
मेव निषेधासि न शक्यमुपायमन्तरेणोपेयमुपेतुम् । अयमेवाभ्यु-
पायो ज्ञातव्यानामर्थानां यो यथा ज्ञायते स तथेति । तद्यथा—
कः शुक्लो नाम । यत्र शुक्लत्वमस्ति । किं शुक्लत्व नाम । यत्र
शुक्लशब्दप्रवृत्तिः । क तस्य प्रवृत्तिः । यत् शुक्लशब्द उच्चरिते
प्रतीयते । तस्मान्न विज्ञानं प्रत्याख्याय कस्याचिद्रूपं निर्दशयितुं
शक्यम् । नच नियोगतः प्रत्यये प्रतीते प्रत्ययार्थं प्रतीतो
भवति । अप्रतीतेऽपि प्रत्यये सति अर्थः प्रतीयते एव, न हि
विज्ञानं प्रत्यक्षम् । विज्ञेयोऽर्थं प्रत्यक्ष इति । एतत्पूर्वमेवो-
क्तम् । तदवश्यकर्तव्येऽपह्नवे कामं विज्ञानमपह्नूयेत नार्थं इत्येत-
दुक्तमेव । तस्मादस्ति सुखादिभ्योऽन्यः नित्यः पुरुष ॥

मपास्येत्यादिना ॥ उपलम्भं परित्यज्य वस्तुन अनुपलम्भोपपादने
सर्वं शशविषाणतुल्यमेव स्यादिति भावः । ‘अप्रत्यक्षोपलम्भस्य
नार्थद्वष्टिः प्रसिद्धयति’ इति न्यायेन विज्ञानस्य तदन्यस्य च उल्लेखेन
प्रतीतिस्स्यादित्याशङ्कं विज्ञानास्वयंप्रकाशवादेन निरस्यति—नच
नियोगत इति ॥ नियमेनेत्यर्थः । पूर्वमेवोक्तमिति ॥ “नष्टज्ञातेऽर्थे-
कश्चित्” इत्यादिना शून्यवादे उक्तमित्यर्थः ॥ उक्तमेवेति ॥ “अपि-
चकाममेकरूपत्वे” इत्यादिना तत्रैवोक्तमित्यर्थः ॥ विज्ञानवादनिरासोप-
संहारः—तस्मादिति ॥

अथ यदुक्त “विज्ञानघन एवेतेभ्यो भूतेभ्यस्समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति” इति । अत्रोच्यते—
“अत्रैव मा भगवान् मोहान्तमापीपिपत्” इति परिचोदनो-
त्तरकाले अपहुत्य मोहाभिप्रायमस्य वर्णितवान्—“न वा अरे
मोहं ब्रवीमि अविनाशी वा अरे अयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा
मात्राससर्गस्त्वस्य भवति” इति । तस्मान्न विज्ञानमात्रम् ।
तस्माद्वैषम्यम् ॥ यदुक्तम्—नचेष यातीति विधिशब्द इति । मा
भूद्विधिशब्द । “स्वर्गकामो यजेत” इति वचनान्तरेणा-
वगतमनुवादेष्यते । तस्मादविरोधः ॥

यत्तु भूतचेतन्यार्थे ब्राह्मणमुपन्यस्त तदनुभाष्य परिहरति—
अथयदुक्त विज्ञानघन इति ॥ अत्राय पाठो माध्यन्दिनीय —“स
यथा सैन्धवघनोऽनन्तरोऽबाह्य कृत्स्नो रसघन एव वा अरज्यमात्माऽ-
नन्तरोऽबाह्य कृत्स्नः प्रज्ञानघन एवेतेभ्यो भूतेभ्यस्समुत्थाय तान्येवानु-
विनश्यति न प्रेत्य संज्ञाऽस्तीत्यरे ब्रवीमीति होवाच याज्ञवल्क्य । सा
होवाच मैत्रेयी अत्रैव मा भगवान् मोहान्तमपीपिपत् वा अहमिम
विज्ञानामीति । स होवाच न वा अरे अह मोहं ब्रवीमि अविनाशी
वा अरे अयमात्मा अनुच्छित्तिधर्मा मात्राससर्गस्त्वस्य भवति”
इति ॥

अयमर्थः — याज्ञवल्क्य भार्यायै मैत्रेय्यै आत्मानमुपदिशति —
स यथेति ॥ सैन्धवखण्ड अनन्तर अन्तरवयवव्यतिरिक्त अबाह्यः
बाह्यावयवव्यतिरिक्त सर्वोप्यवयव इत्यर्थः । यथा रसघनो भवति
अन्तराले जात्यन्तरासकीर्णो भवति । अत्रान्तरत्वबाह्यत्वशून्याना मध्य
वर्तिनामपि ग्रहणाय दार्ष्टान्तिकस्य निरवयवस्य समूहाय च व्यतिरेक-
मुखेन निर्देशः । तथा प्रज्ञानघन एव प्रज्ञानैकशक्तिमानित्यर्थः ।

शब्दनित्यताधिकरणम्

कर्मेके तत्र दर्शनात् ॥ ६ ॥

उक्तं नित्यशब्दार्थयोस्सबन्ध इति । तदनुपपन्नं, शब्द-
पूर्वमजरामृतत्वमभिधाय विज्ञानघन इत्यादिना विनाशित्वानुकीर्तनात्
सम्भूदया मैत्रेय्या पूर्वापरविरोधं चोद्यते—अत्रैवेति ॥ एतस्मिन्नेव-
वस्तुनि मोहान्तं मोहमध्यं मा अपीपिपत् अपातयत् गमितवानसि
समोहितवानिति यावत् । अतोऽहमिमं न विजानामि विवेकत
इति प्राह । परिहरति—याज्ञवल्क्य—स होवाच नवेति ॥
प्रज्ञानघन इति ज्ञानशक्तियुक्तस्यात्मन अभिधानं, न ज्ञानमात्रस्य ।
स च भूतेभ्यः समुत्थितः मुक्तः भूतान्यनुविनश्यति मोक्षकाले तस्य
मात्राशब्दवाच्यै देहेन्द्रियादिभिः सबन्धनाशात् तेन रूपेण विनष्ट इव
भवति । न प्रेत्य सज्ञाऽस्ति प्रेत्य भूतेभ्यो मुक्तस्य कारणाभावात् न
ज्ञानमस्ति । अतः न भूतेन्द्रियादीनां चैतन्यं, अन्यस्तु तेभ्यो नित्यश्चे-
तनः । स चात्मा अविनाशी विनाशस्वभावरहितः । न विद्यते उच्छिष्टि-
यस्य सोऽनुच्छिष्टिः नित्य इत्यर्थः । तादृशो धर्मः विज्ञानशक्तिरूप-
यस्य स नित्यविज्ञानशक्तियुक्तः, चेतनोऽपि नित्यः तस्य चैतन्य-
शक्तिरपि नित्येत्यर्थः ॥

अत्रोपनिषदुपन्यासस्यायमभिप्रायः—स आत्मा स्वसवेद्य एव ।
शब्दस्तु शरीरादिविवेके प्रमाणम् । अतो वेदस्य प्रामाण्यं च सिद्धम् ।
एवं प्रतिपादितोऽपि शरीरादिविवेकः न दृढमवतिष्ठते, अहं स्थूलो
गच्छामीति शरीर एव बलादहमानोदयात् । ततः दाढ्यार्थिभिः
वेदान्तविहितेष्वेव श्रवणमनननिषिध्यासनादिषु यतितव्यमिति ॥

अथ सबन्धस्य नित्यतामाक्षेप्तुं शब्दानित्यत्वमाशङ्कते—कर्मेति ॥

स्यानित्यत्वात् विनष्टः शब्दः । पुनरस्य क्रियमाणभ्यार्थेना
कृतकस्सवन्धो नोपपद्यते । न हि प्रथमश्रुताच्छब्दात् कश्चिदर्थ
पत्येति । कथं पुनरनित्यः शब्दः ? प्रयत्नादुत्तरकाल दृश्यते
यत् । अतः प्रयत्नानन्तर्यात् तेन क्रियत इति गम्यते । ननु
अभिव्यञ्ज्यात्म एवम् । नेति ब्रूमः । न ह्यस्य प्रागभिव्यञ्जनात्
सद्भावे किञ्चन प्रमाणमस्ति । संश्वाभिव्यज्यते नासन् ॥

अस्थानात् ॥ ७ ॥

नो खल्वप्युच्चरितं मुहूर्तमप्युपलभामहे । अतो विनष्ट
इत्यवगच्छाम । नच सन् नोपलभ्यते । अनुपलम्भकारणानां
व्यवधानादीनामभावेऽप्यनुपलम्भनात् । नचासौ विषयमप्राप्तः ।
आकाशविषयत्वात् । कर्णच्छिद्रेऽप्यनुपलम्भनात् ॥

करोतिशब्दात् ॥ ८ ॥

क्रियत इति कर्म कार्यं शब्दः केचित् शिक्षाकारादयः मन्यन्ते । तत्र
उच्चारणरूपप्रयत्नकाले दर्शनात् उच्चारणरूपात्प्रयत्नात् अनन्तरं शब्दो-
पलम्भात् । तथाचानित्यश्शब्दः प्रयत्नानन्तरदर्शनात् घटादिवदित्यत्र
न्यायोऽभिप्रेतः । अत्र कार्यत्वानित्यत्वयोः परस्पराविनाभावात् एक-
नरसिद्धावन्यतरसिद्धिर्भवतीति क्वचित् किञ्चित्साधनमुच्यते ॥

उत्तरकालमनुपलम्भादिति द्वितीयं हेतुमाह—अस्थानादिति ॥
अस्यान्यथासिद्धिं निराह—नच सन् इति ॥ विषयः आश्रयः ।
आश्रयविनाशात् घटत्वादेरिव नानुपलब्धिरिति भावः । कर्णविवरान्त
प्रवेशान्नोपलब्धिरिति शङ्कामप्यपनुदति—कर्णेति ॥

शब्दं करोतीति अबाधितप्रामाणिकव्यवहारादिति तृतीयं हेतु-
माह—करोतीति ॥ स एवायं शब्द इत्यज्ञाना, प्रत्यभिज्ञेति भावः ॥

अपिच शब्द कुरु मा शब्दं कार्षीः इति व्यवहर्तारः
प्रयुञ्जन्ति । न ते नूनमवगच्छन्ति स एवाय शब्द इति ॥

सत्त्वान्तरे च यौगपद्यात् ॥ ९ ॥

नानादेशेषु च युगपच्छब्दमुपलभामहे । तदेकस्य नित्य-
स्यानुपपन्नमिति । असति विशेषे निखस्य नानेकत्वम् । कार्याणां
तु बहूनां नानादेशेषु क्रियमाणानां उपपद्यतेऽनेकदेशसंबन्धः ।
तस्मादनित्य ॥

प्रकृतिविकृत्योश्च ॥ १० ॥

अपिच दध्यन्नेत्यत्र इकारः प्रकृति यकारो विकृति
इत्युपदिशन्ति । यद्विक्रियते तदनित्यम् । इकारसादृश्यं च
यकारस्योपलभ्यते । तेनापि तयोः प्रकृतिविकारभावो लक्ष्यते ॥

वृद्धिश्च कर्तृभूम्नाऽस्य ॥ ११ ॥

यौगपद्येन नानादेशोपलम्भादिति तुरीय हेतुमाह—सत्त्वान्तरे-
चेति ॥ सत्त्वान्तरे प्राप्यन्तरे श्रोत्रुरित्यर्थः । बहुषु वक्तृषु एकस्य
श्रोत्रुरिति यावत् । तथा च नानादेशसंबन्धः कार्यत्व व्याप्य इति भावः ।
तत्र व्यतिरेकमाह—तदेकस्य नित्यस्यानुपपन्नमिति ॥ नित्यत्वादेकत्वं
एकत्वाच्च नानादेशसंबन्धोऽनुपपन्न इत्यर्थः । स्वमतमाह—कार्याणा-
मिति ॥ अस्मत्पक्षे तु वायवीयः शब्दः । वायव्यवदेशभेदात् कार्य-
भेदः । ततश्चोपलब्धिभेद इति भावः ॥

अथ प्रकृतिविकृतिभावदर्शनादिति पञ्चम हेतुमाह—प्रकृतीति ॥
हेतुसिद्धयर्थं व्याकरणस्मृतिं सादृश्यं चाह—अपिचेति ॥ अभिवृद्धि-
दर्शनादिति षष्ठ्य हेतुमाह—वृद्धिश्चेति ॥ तन्तुवृद्ध्या वर्षमान
पटादिरत्र दृष्टान्तः ॥

अपिच बहुभिरुच्चारयद्भिः महान् शब्द श्रूयते । स यद्यभिव्यज्यते बहुभिरल्पैश्चोच्चार्यमाण तावानेवोपलभ्येत । अतो मन्यामहे—नूनमस्यैकैकेन कश्चिदवयव क्रियते, यत्प्रच-यादयं महानुपलभ्यते ॥

सम तु तत्र दर्शनम् ॥ १२ ॥

तुशब्दात्प्रक्षो विपरिवर्तते । यदुक्त प्रयत्नादुत्तरकालेदर्शनात् कृतकोऽयमिति । यदि विस्पष्टेन हेतुना शब्दस्य नित्यत्वं वक्तुं शक्यामः, ततो नित्यप्रत्ययसामर्थ्यात् प्रयत्नेनाभिव्यज्यत इति भविष्यति । यदि प्रागुच्चारणादनभिव्यक्तः प्रयत्नेनाभिव्यज्यत, तस्मादुभयो पक्षयोस्सममेतत् ॥

सतः परमदर्शन विषयानागमात् ॥ १३ ॥

यदपर कारणमुक्त उच्चरितप्रध्वस्त इति । अत्रापि यदि शक्यामो नित्यतामप्य विस्पष्ट वक्तु, ततो नित्यप्रत्ययसामर्थ्यात् कदाचदुपलम्भ कदाचिदनुपलम्भ दृष्ट्वा किञ्चिदुपलम्भस्य निमित्त कल्पयिष्यामः । तच्च सयोगविभागसद्भावे मति भवतीति सयोगविभागावेवाभिव्यञ्जकाविति वक्ष्यामः ॥

एतेषा षण्णा हेतूना साधारण्यमासीद्धि च षड्भिर्म्यूत्रैराह—
सममिति ॥ तुशब्दादिति ॥ सूत्रे त्वादिशब्दप्रयोग सिद्धान्तादि-सूचक इति भाव । सममेतादिति ॥ दर्शनं हि तत्र सत्ता गमयति न कालान्तरे निषेधति । तेन विपक्षेऽपि कालान्तरे सत्त्वसमवात् तत्र दर्शनमनेकान्तमिति भाव ॥

सत परमदर्शनमिति ॥ सत एवानुपलम्भ निमित्तासमवधानेन तिरोधानादिति सूत्रार्थ । सृदा तिरोहित मूलोदकादिकमुदाहरणम् ।

उपरतयोस्सयोगविभागयोश्श्रूयत इति चेन्नैतदेवम्—
न नूनमुपरमन्ति संयोगविभागा, यत उपलभ्यते शब्द इति ।
न हि ते प्रत्यक्षा इति ॥

यदि शब्द सयोगविभागा एवाभिव्यञ्जन्ति, न कुर्वन्ति,
आकाशविषयत्वाच्छब्दस्य आकाशस्यैकत्वात् य एवायमत्र
श्रोत्राकाश स एव देशान्तरेष्वपीति स्तुघ्नस्थैस्सयोगविभागैर
भिव्यक्त पाटलिपुत्रेऽप्युपलभ्येत । यस्य पुनः कुर्वन्ति तस्य वाय
वीयाः सयोगविभागा वाय्वाश्रितत्वात् वायुष्वेव कारिष्यन्ति,
यथा तन्तव तन्तुष्वेव पटम् । तस्य पाटलिपुत्रेष्वनुपलम्भो
युक्तः स्तुघ्नस्थत्वात्तेषाम् ॥

प्रकृते च निमित्त वायवीयास्सयोगविभागा ध्वनिपदवाच्या । ते हि
चाक्षुषस्य तेजसः अनुग्रहं कुर्वन् प्रदीप इव श्रोत्रं सस्कुर्वन्तोऽभिव्य-
ञ्जन्तीति सिद्धान्तः ॥

उपरतयोरिति ॥ इतः परं पूर्वोत्तरपक्षवादिनौ गूढाभिप्रायावेव
विवदतः । तत्र तात्त्वादिसयोगविभागाभिप्रायः पूर्वपक्षिणः । वाय-
वीयसयोगविभागाभिप्रायः उत्तरपक्षिणः । न हि ते प्रत्यक्षा इति ॥
तात्त्वादिस्था अपि कार्यसामर्थ्यरूपेणाप्रत्यक्षा इत्यर्थः ॥

यदि शब्दमिति पुनराशङ्का ॥ तत्र त्रेधा विकल्पः—ध्वनिमि-
श्रशब्दस्य सस्कारः, किं वा श्रोत्रस्य, उतोभयस्येति । त्रिष्वपि पक्षेषु
सर्वगतोऽयमेको नित्यशब्दः आकाशरूपेण श्रोत्रेण सर्वं श्रूयेतेति
दोषः । आकाशविषयत्वात् आकाशाश्रितत्वादित्यर्थः ॥

उत्तरं श्रोत्रसस्कारपक्षेण—यस्यापीति ॥ मते इति शेषः । श्रोत्रं

यस्याप्यभिव्यजन्ति तस्याप्येष न दोषः । दूरे सत्याः
'कर्णशष्कुल्या अनुपकारका स्मयोगविभागाः । तेन दूरे
यच्छ्रोत्रं तेन नोपलभ्यन्त इति ॥

नैतदेव—अप्राप्ताश्चेत्स्मयोगविभागाः श्रोत्रस्योपकुर्युः सन्नि-
कृष्टविप्रकृष्टदेशस्थौ युगपच्छब्दमुपलभेयाताम् । नच युगपदुपल-
भेते, तस्मान्नाप्राप्ता उपकुर्वन्ति, न चेदुपकुर्वन्ति, तस्मादनिमित्त
शब्दोपलम्भने स्मयोगविभागाविति ॥

नैतदेव—अभिघातेन हि प्रेरिताः वायवस्तिमितानि
वाय्वन्तराणि प्रतिवायमाना सर्वतोदिक्कान् स्मयोगविभागान्
त्पादयन्ति यावद्वेगमभिप्रतिष्ठन्ते । तेच वायोरप्रत्यक्षत्वात् स्मयो-
गविभागा नोपलभ्यन्ते । अनुपरतेष्वेव तेषु शब्द उपलभ्यते
नोपरतेषु । अतो न दोषः । अत एव चानुवातं दूरादुपलभ्यते
शब्दः ॥

प्रयोगस्य परम् ॥ १४ ॥

यदपर कारणमुक्त—शब्द कुरु मा कार्षीरिति व्यवह-
र्तारं प्रयुञ्जन्ति । यद्यमशय नियतशब्दः, शब्दप्रयोगं कुर्विति
भविष्यति । यथा गोमयान् कुर्वन्ति सहारे ॥

हि धर्माधर्मोपगृहीतविशिष्टशक्त्युपेतकर्णशष्कुल्यवच्छिन्नमाकाशम् ।
तादृशी दिग्वा श्रोत्रम् । ततश्चाधिष्ठानभेदाद्वा ध्वनिभेदाद्वा सर्वा
व्यवस्था सिध्यतीति भावः ॥

तात्त्वादिसंयोगविभागामिप्रायेणैव सम्कारानुपपत्तिशङ्काया—नै-
तदेवमप्राप्ताश्चेदित्यादिना कृताया गूढामिसार्धिं प्रकटीकृत्य सस्कार
समर्थं शब्दश्रवणमार्गं सिद्धान्तीं प्रदर्शयति—नैतदेवमभिघातेनेति ॥
प्रयत्नाभिहता कौष्ठ्या वायव इत्यर्थः ॥ वैशेषिकाणां त्वय मार्गः —

आदिसवद्योगपद्यम् ॥ १५ ॥

यत्तु—एकदेशस्य मत नानादेशेषु युगपदर्शनमनुपपन्नमिति । आदित्य पश्य देवानांप्रिय । एकस्सन्नेनकदेशावस्थित इव लक्ष्यते । कथपुनरवगम्यते एक आदित्य इति । उच्यते—प्राङ्मुखो देवदत्त पूर्वाह्ने सप्रति पुरस्तादादित्य पश्यति । तस्य दक्षिणतोऽवस्थित न द्वौ पश्यति आत्मनश्च सप्रति न तिरश्चीन देवदत्तस्यार्जवे । तस्मादेक आदित्य इति । दूरत्वादस्य देशो नावधार्यते, अतो व्यामोहः । एव शब्देऽपि व्यामोहादनवधारण देशस्य । यदि श्रोत्र सयोगविभागदेशमागत्य शब्दं गृह्णीयात् तथापि तावत् अनेकदेशता कदाचिद्वगम्यते । नच तन्स योगविभागदेशमागच्छति । पत्यक्षा हि तर्णशङ्कुली तद्देशस्था गृह्णते । वायवीया पुनस्सयोगविभागा अप्रत्यक्षस्य वायो कर्णशङ्कुलीप्रदेशे प्रादुर्भवन्तः नोपलभ्यन्त इति नानुपपन्नम् । प्रथम भेरीदण्डसयोगाद्विभागाद्वा शब्दो निष्पद्यते । स च बीचीसता नवत् समानजातयान् सर्वतस्ततनोति । तेषु च सतन्यमानेषु स्वदेशप्राप्तशब्द श्रोत्रेण गृह्यत इति ॥ सहार पिण्डीकरणम् ॥

आदित्यवदिति ॥ अयमाशयः—एकत्वेऽपि व्यामोहरूप नानादेशोपलम्भ दृष्ट । यथा—यस्मिन् खलु वृक्षे पर्वते वा यावद्देशवार्तिनि सूर्यस्योदयमस्त वा केचित्पश्यन्ति, तद्देशवासिनोऽन्ये तत् परस्तात्तावदूरे पश्यन्तीति व्यक्त नानादेशोपलम्भनमिति ॥ आदित्यस्यैकत्वमुपपादयति—उच्यते प्राङ्मुख इति ॥ सप्रति आर्जवेन । द्वयोरदर्शन विशदयति—नात्मनश्चेति ॥ तथाच योग्यानुपलम्भान्न भिन्न इति भावः ॥ यदि श्रोत्रमिति ॥ वक्तृवक्त्रप्रदेशाना भिन्नत्वात् भिन्नदेशो-

अत एव व्यामोहः—यत् नानादेशेषु शब्द इति । आकाश-
देशस्थश्च शब्दः, एक च पुनराकाशम् । अतोऽपि न नानादेशेषु ।
अपिचैकरूप्ये सति देशभेदेन काम देशा एव भिन्नाः न तु शब्दः ।
तस्मा दयमप्यदोषः ॥

वर्णान्तरमविकारः ॥ १६ ॥

नच दध्यत्र इसत्र प्रकृतिविकारभावः । शब्दान्तरमिकारा-
द्यकारः । न हि यकार प्रयुज्जाना इकारमुपाददते । यथा कट
चिकीर्षन्तो वीरणानि । नच सादृश्यमात्र दृष्टा प्रकृतिर्विकृति
वोच्यते । न हि दधिपिटकं दृष्ट्वा कुन्दपिटकं च प्रकृतिर्विकृति-
भावोऽवगम्यते । तस्मादयमप्यदोषः ॥

नादवृद्धिपरा ॥ १७ ॥

यच्चैतत् बहुभि भेरीमाद्यमद्भि शब्दमुच्चारयद्भिः महान्
शब्द उपलभ्यते, तेन प्रतिपुरुष शब्दावयवप्रचय इति गम्यते ।
नैवम्—

पलम्भः व्यामोह इति भावः ॥ अपिचैकरूप्ये सतीति । अबाधितप्रत्य-
क्षप्रत्यभिज्ञया ऐकरूप्ये अवगते सति सर्वमपि शब्दभेदानुमान
बाधितमिति तात्पर्यम् ॥ अयमपीति ॥ सत्त्वान्तरेचेति सूत्रोक्तं
इत्यर्थः ॥

तत्र स्मृतिमसिद्धयति—नचदध्यत्रेति ॥ स्वतन्त्रस्थितयोरेव दधि
दध्यशब्दयोः अचिपरतस्सहिताया पूर्वमपवदत्युत्तर इति “इको
यणचि” इति सूत्रार्थः । अपरथा “सिद्धे शब्दार्थसंबन्धे, नियमार्थं
व्याकरणम्” इति शास्त्र विरुध्येतेति भावः । सादृश्यमप्यन्यथयति—
नचसादृश्यमात्रमिति ॥ पिटकं वशवेत्रादिमथ पात्रम् ॥

निरवयवो हि शब्दः, अवयवभेदानभ्युपगमात्, निरवयवत्वाच्च महत्त्वानुपपत्तिः । अतो न वर्धते शब्दः । मृदुरेकेन, बहुभिश्चोच्चार्यमाणे तान्येवाक्षराणि कर्णशष्कुलीमण्डलस्य सर्वा नपि प्राप्नुवद्भिः सयोगविभागैः नैरन्तर्येणानेकशो ग्रहणात् महानिवावयववानिव उपलभ्यन्ते । संयोगविभागाः नैरन्तर्येण क्रियमाणाः शब्दमभिव्यञ्जन्तो नादशब्दवाच्याः । तेन नादस्यैषा वृद्धिः । न शब्दस्येति ॥

निरवयवो हीति ॥ अवयवभावो योग्यानुपलम्भासिद्ध इति भावः । नाद व्याख्याति—सयोगविभागा इति ॥ नादस्यैषा वृद्धिरिति ॥ दर्पणादिव्यञ्जकाधीना मुखादिष्वल्पत्वमहत्त्वबुद्धिर्दृष्टा । तथा महत्या मृदि खातायामाकाशे महत्त्वबुद्धिः । प्रदीपादितेजोबाहुल्ये घटादावपि पट्टी बुद्धिरिति । ततश्च दीर्घादिबुद्धिरपि नादायचेति बोध्यम् ॥

इदं पुनरिहावधेयम्—वायुसयोगध्वनिवादो भाष्योक्तः । तन्मते वायोरश्रावणत्वात् शङ्खादिनादानां ध्वनिरूपाणां श्रवणं न स्यात् इति वायुगुणीभूतान् ध्वन्याख्यान् शब्दान् श्रोत्रग्राह्यान् केचिदिच्छन्ति । तेन तास्वादिसयोगविभागलाभे वर्णान् व्यञ्जन्ति स्वयं चोपलभ्यन्ते । अत एव दूरादधीयमानेषु वर्णान् शृण्वन्तोऽपि ध्वनिमात्रं शृण्वन्ति । शङ्खमेर्यादिध्वनयस्तु केवलं स्वयमुपलभ्यन्ते इत्याहुः । सोऽयं वायुगुणध्वनिवादः ॥ वैयाकरणास्तु स्वरव्यञ्जनरूपान् वर्णानिव ध्वनिमाहुः, शब्दं तु स्फोटमाहुः ॥

परेषु—ध्वनित्वं शब्दसामान्यं, अत्वकत्वादिकं तु शब्दविशेषः । तास्वादिवायवः विशेषव्यञ्जकाः । इतरे वायवः सामान्यव्यञ्जकाः इति वदन्ति । वायुगुणध्वनिवादेऽपि तस्य गुणस्वामूर्तस्य

नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् ॥ १८ ॥

नित्यशब्दो भवितुमर्हति । कुतः ? दर्शनस्य परार्थत्वात् । दर्शनमुच्चारण, नत्परार्थ, परं अर्थं प्रत्याययितुम् । उच्चरितमात्रे हि विनष्टे शब्दे नचान्योऽन्यान् अर्थं प्रत्याययितुं शक्नुयात् । अतो न परार्थमुच्चार्येत । अथ न विनष्ट, ततो बहुशः उपलब्धत्वादर्थवगम इति युक्तम् । अर्थवत्सादृश्यादर्थवगम इति चेत् न कश्चिदर्थवान् सर्वेषां नवत्वात् । कस्यचित्पूर्वस्य कृत्रिमसंबन्धो भविष्यतीति चेत्—तदुक्तम् । सदृश इति चावगते व्यामोहात्प्रत्ययो व्यावर्तेत गालाशब्दान्मालाप्रत्यय इव । यथा गावीशब्दात् सास्त्रादिमिति प्रत्ययस्यानिवृत्तिः नद्वन्द्वविष्यतीति महत्त्वादिक आश्रयाधीनमेव वक्तव्य, ततश्च वायुसयोगवृद्ध्या वर्णवृद्धिरिति भाष्य सुसङ्गतं भवति । नादशब्दवाच्या इत्यत्र नाद्यन्ते व्यज्यन्ते एभिरिति व्युत्पत्तिर्वोऽध्या इति ॥

नित्य इति ॥ “सम तु तत्रदर्शनम्” “इत्यत्रभाष्ये यदि विस्पष्टेन हेतुना” इत्युक्तिरेतदादिसूत्राभिप्रायेण । उच्चार्यमाणस्य परप्रत्यायकत्वान्यथानुपपत्त्या नित्यशब्द इत्यर्थापत्तिरत्राभिमतः । बहुश उपलब्धत्वादिति ॥ गृहीतसङ्गतिकत्वादित्यर्थः ॥

प्रथमः उच्चरित शब्दः अर्थवान् कर्णशृङ्गकुलीप्रदेशावच्छिन्नस्तु तत्सदृशः । ततश्चार्थवगतिरिति नार्थापत्तिरिति शङ्कते—अर्थवादिति ॥ समापत्ते—नकश्चिदिति ॥ पूर्वस्येति ॥ जगदादिवर्तिन इत्यर्थः । तदुक्तमिति ॥ द्वितीयशङ्कासमाधानम् सर्वेष्वपि शब्देष्वप्रासिद्धार्थेषु सबन्धकरणमशक्यमिति या सबन्धाकरणे युक्तिरुक्ता साऽत्र स्मर्तव्येत्यर्थः ॥ दोषान्तरमाह—सदृश इतीति ॥ पुनश्शङ्का—गावीति ॥

चेत्—न हि, गोशब्दं तत्रोच्चारयितुमिच्छा । ने हान्यशब्दो-
च्चिचारयिषा । नचैकेनोच्चारणयत्नेन सव्यवहारश्चार्थसंबन्धश्च
शक्यते कर्तुम् । तस्मादर्शनस्य परार्थत्वात् नित्यशब्द ॥

सर्वत्र यौगपद्यात् ॥ १९ ॥

गोशब्दे उच्चरिते सर्वगवीषु युगपत् प्रत्ययो भवति ।
अत आकृतिवचनोऽयम् । नचाकृत्या शब्दस्य संबन्धः शक्यते
कर्तुम् । निर्दिश्य हि आकृतिं कर्ता सबध्नीयात् । गोपिण्डे
च बहूनामाकृतीनां सद्भावात् शब्दमन्तरेण गोशब्दवाच्यां
विभक्त्यामाकृतिं केन प्रकारेणोपदेक्ष्यति । नित्ये तु सति गोशब्दे
बहुकृत्व उच्चरितः श्रुतपूर्वश्चान्यासु गोव्यक्तिषु अन्वयव्यति-
रेकाभ्या आकृतिवचनमवगमयिष्यति, तस्मादापि नित्यः ॥

संख्याभावात् ॥ २० ॥

अष्टकृत्वो गोशब्द उच्चरित इति वदन्ति नाष्टौ गोशब्दा
निषेधति—नहीति ॥ हीति हेतु विवृणोति—गोशब्दमिति ॥ नचै-
केनेति ॥ उच्चारणसंबन्धकरणव्यवहारादिरूपाः क्रियाः क्रमस्वभावाः
युगपत्कर्तुमशक्या इत्यर्थः ॥

सर्वत्रेति ॥ अत्र नित्यया जात्या अनित्यस्य शब्दस्य न संबन्धः
कर्तुं शक्य इति संबन्धनित्यताद्वारं शब्दनित्यत्वमुच्यत इति केचिदाहुः ।
संबन्ध नित्यत्वार्थमेव शब्दनित्यत्वसाधनं सुसङ्गतमिति व्याख्यायते । कर्तु-
मिति ॥ सत्पुद्गल्यत्वपार्थिवत्वप्राणित्वलागूलशुक्लगमनादिसम्पुग्धत्वाद्वस्तुन-
विना श्रवणप्रयोगबाहुल्येन निष्कृष्टार्थवाचित्वं कथयितुं ग्रहीतुं वा
न शक्यमित्यर्थः । नित्ये इति ॥ तथाच बहुशःश्रवणाय स्थैर्यमास्थे-
यम् । ततश्चानपेक्षत्वसूत्रेण वक्ष्यमाणेन नित्यतासिद्धिरिति भावः ॥

अष्टकृत्व इति ॥ “सख्याया क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वमुच्”

इति । किमत' यद्येवम् । अनेन वचनेनावगम्यते प्रत्यभिजानन्तीति । वय तावत्प्रत्याभिजानीमो न नः करणदौर्बल्यम् । एवमन्येऽपि प्रत्यभिजानन्ति स एवायमिति । प्रत्यभिजानाना वयमिवान्येऽपि नान्य इति वक्तुमर्हन्ति ॥

अथ मत—अन्यत्वे सति सादृश्येन व्यामृढाः स इति वक्ष्यन्ति । तन्न—न हि ते सदृश इति प्रतियन्ति । किं तर्हि स एवायमिति । त्रिदिते च स्फुटेऽन्यत्वे व्यामोह इति गम्यते । नचायमन्य इति प्रत्यक्षम् । अन्यद्वा प्रमाणमस्ति ॥

स्यादेतत्—बुद्धिकर्मणी अपि ते प्रत्यभिज्ञायेते । ते अपि नित्ये प्राप्नुत । नैष दोष—न हि ते प्रत्यक्षे । अथ प्रत्यक्षे इति विहित स्वार्थे प्रत्ययः क्रियावतामभेदे भवति ' तेनैकस्यैव द्रव्यस्य उच्चारणक्रियाभ्यावृत्त्यन्यथानुपपत्त्या नित्यत्वसिद्धिरिति भावः । द्रव्यभेदेऽपि भुक्तवन्तोऽष्टकृत्वो ब्राह्मणा इति प्रयोगात् स प्रयोगः नाभेदैकान्त इत्याशयेन शङ्कते किमतो—यद्येवमिति ॥ नेदमनुमान, किं तु तेन प्रयोगेणोपलक्षिता प्रत्यभिज्ञाऽत्र विवक्षितेति समाचष्टे—अनेन वचनेनेति ॥ साक्षादनुक्तिस्तु सर्वजनानेनानेन प्रयोगेण प्रत्यभिज्ञाया दाढ्यं सम्पादयितुम् ॥

इन्द्रियदोषनिबन्धना भ्रान्तिरसर्वजनीनाऽपि विषयदोषनिबन्धना तलमलिनिमभ्रान्तिवत् सर्वजनीना भवितुमर्हतीत्याशङ्कते—अथमतमन्यत्वे सतीति ॥ तन्न नहीति ॥ अनुपलब्धिपराहतो विषयदोष इति भावः ॥

अथ स्पष्टभेदे बुद्धिकर्मादौ प्रत्यभिज्ञाया अनैकान्तिकतामाशङ्कते—स्यादेतदिति ॥ श्रोत्रग्राह्यत्वविशेषित प्रत्यभिज्ञान नानैका-

नित्ये एव ॥

ह्यस्तनस्य शब्दस्य विनाशात् अन्योऽद्यतन इति चेत्—
नैष विनष्टः, यत एन पुनरुपलभामहे । न हि प्रत्यक्षदृष्ट
मुहूर्तमदृष्टा पुनरुपलभ्यमान प्रत्यभिजानन्तो विनष्ट परिकल्प-
यन्ति । परिकल्पयन्तो द्वितीयसदर्शने मातरि जायाया पितरि
वा नाश्वस्यु । न ह्यनुपलम्भमात्रेण नास्तीत्यवगम्य नष्ट इत्येव
कल्पयन्ति । अप्रमाणतायां विदिताया नास्तीत्यवगच्छाम । न
हि प्रमाणे प्रत्यक्षे सति अप्रमाणता स्यात् । अस्तीति पुनरव्यामो-
हेनावगम्यमाने न कचिदप्यभाव । नचासिद्धे अभावे व्यामोहः ।
नच सिद्धोऽभावः । तस्मादसति व्यामोहे नाभावः । तदेत-
दानुपूर्वार्था सिद्धम् । तस्मात्पुस्तादनुच्चारित अनुपलभमाना
न्तमिति समाधत्ते—नैष दोष इति ॥ शब्दत्वमद्य दृष्टान्तः । अत्र
कर्मपदमतीन्द्रियपरमाण्वादिवृत्तिकर्मपर बोध्यम् । प्रत्यक्षद्रव्यवर्तिना तु
कर्मणा शब्दवदेव प्रत्यक्षत्व नित्यत्व चेष्टमेवेत्याह—अथ प्रत्यक्षे
इति ॥ बुद्धिपदमपि यदि ज्ञानरूपविकारलक्षणातीन्द्रियव्यापाराभिप्राय
तदा तस्याप्रत्यक्षत्वादनित्यत्वमेव । चित्तिशक्तिस्वभावपुरुषाभिप्राय चेत्
स नित्य एवेति बोध्यम् ॥

एतन्मनासि कृत्वाऽऽह नित्ये एवेति भाष्यकृत् ।

एतयैव दिशा वाख्या शुक्लादेरपि नित्यता ॥ वा ॥

इति । ह्यस्तनस्येत्यादि ॥ अत्र सर्वत्र ज्ञानार्थैक्यगूढाभिसन्धे शङ्का,
विवेकाभिसन्धे समाधान चेति रहस्यम् ॥ अप्रमाणतायामिति ॥
सदुपलम्भकप्रमाणसामान्याभावे इत्यर्थः ॥ आनुपूर्व्येति ॥ अनुपल-
म्भभावव्यामोहाभावव्यामोहाभावाना षण्णा शृङ्खलयेत्यर्थः ॥

अपि न विनष्ट इत्यवगन्तुमर्हन्ति । यथा गृहान्निर्गताः सर्वगृह-
जनमपश्यन्तः पुनः प्रविश्योपलभमाना अपि न प्राक्प्रवेशात्
विनष्ट इत्यवगच्छन्ति । तद्वदेनमपि नान्य इति वक्तुमर्हन्ति ॥

येऽपि सर्वेषां भावानां प्रतिक्षणं विनाशमभ्युपगच्छन्ति
तेऽपि न शक्नुवन्ति शब्दस्य वदितुम् । नच क्षयो लक्ष्यते । स
इति प्रत्यक्षः प्रत्ययः । सदृश इत्यनुमानिकः । नच प्रत्यक्ष
विरुद्धमनुमानमुदेति, स्वकार्यं वा साधयति तस्मान्नित्यः ॥

अनपेक्षत्वात् ॥ २१ ॥

येषामनवगतोत्पत्तीनां द्रव्याणां भाव एव लक्ष्यते
तेषामपि केषाचिदनित्यता गम्यते, येषां विनाशकारणमुप-
लभ्यते, यथा अभिनवं पट दृष्ट्वा, नचैनं क्रियमाणमुप-
लब्धवान् । अथवा अनित्यत्वमवगच्छति रूपमेव दृष्ट्वा ।
तन्तुव्यतिषङ्गजनितोऽयं तन्तुव्यतिषङ्गविनाशात् तन्तुविनाशाद्वा
विनश्यतीत्यवगच्छति । नैव शब्दस्य किञ्चित्कारणमवगम्यते
यद्विनाशाद्विनश्यतीत्यवगम्यते ॥

प्रख्याभावाच्च योगस्य ॥ २२ ॥ (योग्यस्येति पाठान्तरम्)

इदं पदेभ्यः केभ्यश्चिदुत्तरं सूत्रम्—ननु वायुकारणक-
क्षणिकवादमपाकरोति—येऽपि सर्वेषां भावानामिति ॥

येषामिति ॥ अथवेति ॥ उत्पत्त्यदर्शनेऽपि बह्व्याविनाशकसम-
वधानात् क्वचिन्नाशो दृष्टः पटादौ । तथा असमवायिकारणविनाशात्स-
मवायिकारणविनाशाद्वा नाशोऽपि पटादावेव दृष्टः । द्वैविध्यस्यापि
प्रकृते न सभव इति वाक्यद्वयस्याशयः ॥

इदं पदेभ्यः इति ॥ अध्याहार्यशङ्कावाक्यस्योत्तरं सूत्रमित्यर्थः ।

स्यादिति । वायुरुद्धतः सयोगविभागे शब्दो भवतीति । तथाच शिक्षाकारा आहुः—“वायुरापद्यते शब्दताम्” इति । नैतदेवम्—वायवीयश्चेच्छब्दो भवेत् वायोस्मन्निवेशविशेषस्यात् । नच वायवीयानवयवान् शब्दे सत प्रत्यभिजानीम यथा पटस्य तन्तुमयान् । नचैव भवति । स्याच्चेदव स्पर्शनेनोपलभेमहि । नच वायवीयानवयवान् शब्दगतान् स्पृशाम, तस्मान्नवायुकारणकः । अतो निख ॥

लिङ्गदर्शनाच्च ॥ २३ ॥

लिङ्गं चैवं भवति “वाचा विरूपनित्यया” इति । अन्यपरं हीद वाक्यं वाचो निखतामनुवदति । तस्मान्नित्यशब्द ॥ तानि पदानि दर्शयति—नन्विति ॥ विवृणोति—वायुरुद्धत इति ॥ शब्दविशेषणम् । सूत्रार्थमाह—वायवीयानवयवान् शब्दे सतीति ॥ योगपद सबन्धपरम् । अथ पाठान्तरेण सूत्रार्थमाह—नचैवमिति ॥ अत्र योग्यपद त्वगिन्द्रियग्रहणयोग्यतापारमिति भावः ॥

लिङ्गमिति ॥ “तस्मै नूनमभिद्यवे । वाचा विरूप नित्यया । वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्” इति ॥ (६-५-२५) अस्यायमर्थः—प्रातरनुवाके आग्नेये क्रतौ आश्विनशस्त्रसूक्ते आङ्गिरसस्य विरूपस्यार्थे अष्टमी ऋक् । हे विरूप एतन्नामकमहर्षे त्व तस्मै प्रासिद्धाय अभिद्यवे अभिगततृप्तये वृष्णे वर्षकाय अग्नेये नित्यया उत्पत्तिरहितया वाचा मन्त्ररूपया सुष्टुतिं नूनमिदानीं चोदस्व स्तुहीत्येवमृषिस्वात्मानं ब्रवीति इति ॥

यद्यपि शब्दार्थसबन्धा नित्याः, तथापि वाक्यार्थस्य निर्मूलत्वात् न चोदनाप्रामाण्यं सिध्यति । निर्मूलायाश्च प्रतीतेरुत्पन्नाया अपि

वाक्यार्थाधिकरणम्

उत्पत्तौ वाऽवचनास्स्युरर्थस्यातन्निमित्तत्वात् ॥ २४ ॥

यद्यप्यौत्पत्तिकः नित्यः शब्दोऽर्थसंबन्धश्च । तथापि नचो-
दनालक्षणो धर्मः, चोदना हि वाक्यम्, “ न हि अग्निहोत्रं जुहुया-
त्स्वर्गकामः ” इत्यतो वाक्यादन्यतमस्मात्पदात् अग्निहोत्रात्स्वर्गो
भवतीति गम्यते । गम्यते तु पदत्रये उच्चरिते । न चात्र चतुर्थ-
शब्दोऽस्ति अन्योऽन पदत्रयसमुदायात् । न चायं समुदायोऽस्ति
लोके, यतोऽस्य व्यवहारादर्थोऽवगम्यते । पदान्यमूनि प्रयुक्तानि
तेषां नित्योऽर्थः । अप्रयुक्तश्च समुदायः । तस्मात्समुदायस्यार्थः
कृत्रिमो व्यामोहो वा । नच पदार्था एव वाक्यार्थः, सामान्ये हि
पदं प्रवर्तते, विशेषे वाक्यम् । अन्यच्च सामान्यं, अन्यो विशेषः ।
नच पदार्थाद्वाक्यार्थावगतिः । असंबन्धात् । असति चेत्संबन्धे
कस्मिंश्चित्पदार्थेऽवगते अर्थान्तरमवगम्येत, एकस्मिन्नवगते सर्व-
मवगतं स्यात् । नचैतदेव भवति, तस्मादन्यो वाक्यार्थः ॥

प्रतिभावदप्रामाण्यं, अतो व्यर्थं प्रयास इति पुनराक्षेप — उत्पत्तौ-
वेति ॥ शब्दार्थादीनां उत्पत्तावपि औत्पत्तिकत्वेऽपि नित्यत्वेऽपि चोदना
अवचना अवबोधकास्स्युः, अप्रमाणमिति यावत् । अर्थस्य वाक्यार्थस्य
अतन्निमित्तत्वात् वेदमूलकत्वानुपपत्तेरित्यर्थः । प्रत्येकसमुदायविकल्पे-
नानुपपत्तिं विशदयति — चोदना हीति ॥ गम्यते त्विति ॥ प्रत्येकमूल-
त्वनिराकरणपरमिदं न स्वार्थपरम् । नचायमित्यनन्तरमेव समुदायमूल-
त्वनिराकरणात् । यौगपद्यविरहाद्वर्णानां समुदायासिद्धिरिति भावः ।
कृत्रिमं सामयिकं । नैयायिकवासनया । व्यामोहः भ्रमः । शाक्यवासनया ॥
नच पदार्था एवेति ॥ गौरश्च. पुरुष इत्यादावतिप्रसङ्गादिति भावः ॥

स्यादेतत्-अप्रयुक्तादपि वाक्यादसति सबन्धे स्वभावाद-
 र्थावगम इति यदि कल्पेत शब्दो धर्ममात्मीयं व्युत्क्रामेत्,
 नचैष शब्दधर्मः—यदप्रयुक्तादपि शब्दादर्थः प्रतीयते । नहि
 प्रथमश्रुतात् कुनश्चिच्छब्दात् केचिदर्थं प्रतियन्ति ॥ तदभिधीयते-
 पदधर्मोऽयं न वाक्यधर्मः । वाक्याद्धि प्रथमावगतादपि प्रतियन्तोऽ-
 र्थं दृश्यन्ते । नैतदेव—यदि प्रथमश्रुतादवगच्छेयुः, अपितार्हि
 सर्वेऽवगच्छेयुः पदार्थविदोऽन्ये च । न त्वपदार्थविदोऽवगच्छन्ति
 तस्मान्नैतदेवम् ॥

ननु पदार्थविद्भिरेव्यवगच्छद्भिः अवृत्त एव वाक्यार्थसब-
 न्धोऽवगतो भविष्यति, पदार्थवेदनेन हि संस्कृता अवगमिष्यन्ति,
 यथा तमेव पदार्थं द्वितीयादिभ्रवणेनेति ॥ नेतिब्रूम—यदि
 वाक्येऽन्त्यो वर्णं पूर्ववर्णजनितसंस्कारसहितं पदार्थेभ्योऽर्थान्तरं
 प्रत्याययति क उपकारस्तु तदानीं पदार्थज्ञानादवकल्पते ।
 तस्मात्कुत्रिमो वाक्यार्थप्रत्ययो व्यामोहो वा । न पदार्थद्वारेण
 संभवति वाक्यार्थज्ञानमिति ॥

स्वभावादिति ॥ अकस्मादित्यर्थः ॥ नैतदेव यदीति पुनश्शङ्का ॥
न त्वपदार्थ इति समाधानम् ॥ दर्शनानुरोधाच्चातिप्रसङ्ग इति भावः ॥

संस्कारसबन्धेन पदार्थज्ञानं वाक्यार्थज्ञानकारणमिति शङ्कते—
ननुपदार्थेति ॥ अवृत्तः अपूर्व इत्यर्थः । द्वितीयादीति ॥ प्रथम-
श्रुतपदार्थज्ञानमूलं हि द्वितीयादिज्ञानमित्यर्थः । अन्यवर्णलक्षणं वाक्यं
कुत्रिमेण सबन्धेन वाक्यार्थं प्रत्याययति, नात्र पदार्थज्ञानोपकार
इति समाधत्ते—नेतिब्रूम इति ॥

नन्वेवं भविष्यति—सामान्यवाचिन गौरिति वा अश्व इति वा पदस्य विशेषक शुक्ल इति वा कृष्ण इति वा पदमन्ति-कादुपनिपतति यदा, तदा वाक्यार्थोवगम्यते ॥ तन्न—कथमिव गौरिति वा अश्व इति वा सामान्यवाचिन पदात् सर्वगवीषु सर्वाश्वेषु च बुद्धिरुपसर्पन्ती श्रुतिजनिता वाक्यानुरोधेन कुतश्चिद्विशेषादपवर्तेत । नच शुक्ल इत्यादेर्विशेषवचनस्य कृष्णादि निवृत्तिर्भवति शब्दार्थः । नचानर्थको मा भूदित्यर्थकल्पना शक्या । अतो न पदार्थजनितो वाक्यार्थः । तस्मात्कृत्रिमः ॥

पदसंघाता खल्वेते, सघाताश्च पुरुषकृता दृश्यन्ते, यथा — नीलोत्पलवनेष्वद्य चरन्तश्चारुसरवा ।

नीलकौशेयसवीनाः प्रवृत्त्यन्तीव सारसा ॥

अतो वैदिका अपि पुरुषकृता इति ॥

नन्वेवमविष्यतीति ॥ अयमाशयः — जातिपदार्थपक्षे — गोपदेन गोत्वमात्रमभिधीयते । शुक्लपद तु तदेकवाक्यभूत सत् तस्यैव शुक्ल-गुणानुराग प्रतिपादयतीति ससर्ग वाक्यार्थः । व्यक्तिपदार्थपक्षे गोपदेनैव शुक्लकृष्णादिव्यक्तिषु सर्वास्वभिहितासु शुक्लपद शुक्लस-सर्ग प्रतिपादयदपि आनर्थक्यात् कृष्णादिव्यवच्छेदेनैव विशेषण भवतीति भेदो वाक्यार्थः इति ॥ तच्चेति ॥ अपवर्तेतेति ॥ निर-पेक्षकण्ठरवरूपश्रुत्यपेक्षया समभिव्याहारलक्षण वाक्य दुर्बलमिति श्रुति-लिङ्गेति न्यायसिद्धमिति भावः ॥

कृत्रिमत्वे युक्तिमप्याह—पदसंघाता इति ॥ पौरुषेणत्वे अतीन्द्रियार्थे पुरुषस्वाप्तिः नास्ति । अनासवात्य त्वप्रमाणमेवेति पूर्व-पक्षसूत्रभाष्यार्थः ॥

तद्भूतानां क्रियार्थेन समाम्नायोऽर्थस्य तन्निमित्तत्वात् ॥ २५ ॥

तेष्वेव पदार्थेषु भूतानां वर्तमानानां पदानां क्रियार्थेन समुच्चारणम्, नानपेक्ष्य पदार्थान् पार्थगर्थेन वाक्य अर्थान्तर-प्रसिद्धम् । कुत ? प्रमाणाभावात्, न किञ्चन प्रमाणमस्ति येन प्रमिमीमहे । न ह्यनपेक्षितपदार्थस्य वाक्यान्त्यवर्णस्य पूर्ववर्णजनितसंस्कारसहितस्य शक्तिरस्ति पदार्थेभ्योऽर्थान्तरे वर्तितुमिति ॥

नन्वर्थापत्तिरस्ति, यत्, पदार्थव्यतिरिक्तमर्थमवगच्छाम' । नच शक्तिमन्तरेण तदवकल्पते इति ॥ तन्न- अर्थस्य तन्निमित्तत्वात् । भवेदर्थापत्तिः, यद्यसत्यामपि शक्तौ नान्यत् निमित्तमवकल्पेत, अवगम्यते तु निमित्तम् । किम् ? पदार्था, पदानि हि स्वस्व

यद्यपि वाक्य न साक्षाद्वाक्यार्थस्य वाचकम्, नापि पदानि तथापि पदार्था पदै प्रत्यायिता आकाक्षायोग्यतासत्तिसनाथा निय-तानन्तर्यान्मूल भविष्यन्ति, तद्वारेण पदानामपि सहताना लब्धवा-क्यव्यपदेशानां तन्मूलत्वमनुमन्यामहे इत्यभिप्रेत्य सिद्धान्तमाह—
तद्भूतानामिति ॥

तेष्विति ॥ लोकप्रसिद्धेष्वित्यर्थः । क्रियार्थेन क्रियावाचकपदेन । समाम्नायपदार्थस्समुच्चारणम् । पार्थगर्थेन पृथक्त्वेन न प्रसिद्धमित्यन्वयः । तेन पृथक्चनिराकरणेन “तस्मात्समुदायस्यार्थः” इति दोषो दूषितः ॥ “यदि वाक्येऽन्यो वर्णः” इत्युक्तशङ्कामपाकरोति—न ह्यनपेक्षितेति ॥

प्रमाणाभावमाक्षिपति—नन्वर्थापत्तिरस्तीति ॥ अवगत्यन्यथानु-पपत्त्या शक्तिः तल्प्यते इति भावः । पदार्थैरन्यथोपपत्तिमाह—

पदार्थमभिधाय निवृत्तव्यापाराणि । अथेदानीं पदार्था अव-
गतास्सन्तो वाक्यार्थं गमयन्ति । कथम्—यत्र हि शुक्ल इति
वा कृष्ण इति वा गुणः प्रतीतो भवति, भवति खल्वसावल
गुणवति प्रत्ययमाधातुम् । तेन गुणवति प्रत्ययमिच्छन्त केवल
गुणवचनमुच्चारयन्ति । सपत्स्यत एतेषा यथासकृद्विपतोऽभि-
प्रायः । भविष्यति विशिष्टार्थसंप्रत्ययः । विशिष्टार्थसंप्रत्ययश्च
वाक्यार्थः । एवंचेदवगम्यते अन्यत एव वाक्यार्थः । ततः को
जातुचित् अदृष्टा पदसमुदायस्य शक्तिगर्थादवगम्यते इति
वदिष्यति ॥

अपिचान्वयव्यतिरेकाभ्यामेतदवगम्यते भवति हि कदा-
चित् इयमवस्था—मानमादध्यायानात् यद्युच्चरितेभ्य पदेभ्य
तन्नेति ॥ अनेन सूत्रशेषो व्याख्यातः । निवृत्तव्यापाराणीति ॥ प्रशा-
न्ताभिधायव्यापाराणीत्यर्थः । सिद्धे पदार्थानां शाब्दत्वे तद्वारेण वाक्या-
र्थस्यापि शाब्दत्वं सिध्यति । तत्परत्वाच्च पदानाम् । वाक्यार्थे हि
पदानां तात्पर्यं न पदार्थेषु । तेषां प्रमाणान्तरसिद्धत्वात् । अतो
यद्यप्यभिधायव्यापारः पदार्थेष्वेव पर्यवसितः । तथापि तात्पर्यवृत्तेरप-
र्यवसितायाः वाक्यार्थपर्यन्तत्वात् नाशाब्दत्वशङ्केति भावः । अलम्
समर्थं इत्यर्थः । विशिष्टार्थसंप्रत्यय इति ॥ सामान्य विशेषेण विना
नोपपद्यते, ततश्च नासबन्धो नापि पृथग्भूत इति भावः ।
विशदयति—एव चेदिति ॥ अन्यतः पदार्थेभ्यः । क इति ॥ वदि-
ष्यतीत्यत्रान्वयः । समुदायशक्तिकल्पनाया अन्यथासिद्धेरिति भावः ॥

पदार्थानां मूलत्वे नैयत्यं प्रदर्शयति—अपिचान्वयेति ॥
अवस्था दशा । आघातः अपचारः व्यासङ्ग इति यावत् । नियोगतः

न पदार्था अवधार्यन्ते तदानीं नियोगतो वाक्याऽवगच्छेयुः यद्यस्यापार्थगर्थं अभविष्यत् । नियोगतस्तु नावगच्छन्ति ॥

अपि चान्तरेणापि पदोच्चारणं यं शौक्ल्यमवगच्छति अवगच्छत्येवासौ शुक्लगुणकम् । तस्मात्पदार्थप्रत्यये एव वाक्यार्थः नास्य पदसमुदायेन संबन्धः ॥

नियमेन । अस्य वाक्यार्थस्य । अपार्थगर्थं अमेदः । ततश्च वाक्यान्वयेऽपि पदार्थाद्व्यतिरिच्यमानो वाक्यार्थः पदार्थनिमित्त इति सिद्धं भवति ॥

यस्तु वदति वाक्यमप्यत्र न गृहीतमिति तस्योत्तरम्—अपि चान्तरेणापीति ॥ पदार्थप्रत्यये एवेति ॥ वाक्यव्यतिरेकेऽपि पदार्थान्वयेऽन्वीयमानो वाक्यार्थः पदार्थनिमित्त एव । ततश्च सविद्विरुद्धं वाक्याग्रहणमुत्तरम् ॥ अत एव—

पश्यत श्वेतमारूपं हेषशब्दं च शृण्वतः ।

खुरविक्षेपशब्दं च श्वेतोऽश्वो धावतीति धीः ॥

इति । श्वेतं कचित्पदार्थं आरूपं अव्यक्तं गवाश्वादिरूपं दूरे उपलभ्यमानः तस्मिन्नेव प्रदेशे हेषया खुरशब्देन च अश्वजार्तिं गतिं चानुमिमामासः अनुपलब्ध्या च तस्मिन् प्रदेशे वस्त्वन्तराणामभावं अवगच्छन् गुणजातिक्रियाणां अर्थान्तरान्वयमपेक्षमाणानां योग्यानां अर्थापत्त्या परस्परं ससर्गं बुध्यते श्वेतोऽश्वो धावतीति । तद्विह क्लृप्तं तावत् पदार्थानामाकाङ्क्षायोग्यतासन्निधिवशेन सामान्यतोऽन्वयबोधनं तद्विशेषं नियमस्त्वरथापत्त्या कल्पनीयम् । गामानयेत्यादौ त्वेकवाक्यतयैव तन्नियम इत्येतावत्कल्प्यम् । वाक्यशक्तिपक्षे तु सर्वमेव कल्प्यमिति वाक्या-

यत्तु श्रौतः पदार्थं न वाक्यानुगोथेन कुतश्चिद्विशेषा-
दपवार्तितुमर्हतीति । सत्यमेवमेतत् । यत्र केवलः पदार्थं
प्रयुज्यमान प्रयोजनाभावादनर्थकस्मिन्जायते इत्यवगतं भवति
तत्र वाक्यार्थोऽपि तावद्भवत्विति विशिष्टार्थताऽवगम्यते न
सर्वत्र । एवञ्च सति “शुक्ल इत्यादौ गुणान्तरप्रतिषेधो न
शब्दार्थः” इत्येतदपि परिहृतं भवति । अपिच प्रातिपदि-
कादुच्चरन्ती द्वितीयादिविभक्तिः । प्रातिपदिकार्थो विशेषक
इत्याह । सा च विशेषश्रुतिः सामान्यश्रुतिं बाधेत । यच्च
“एते पदसघाता पुरुषकृता दृश्यन्ते” इति । परिहृतं नत्
अस्मरणादिभिः । अपिचैवजातीयकेऽर्थे वाक्यानि सहन्तु न
किञ्चन पुरुषाणां बीजमस्ति ॥

ग्रहणं नोत्तरमिति साराशः ॥

अनुपपत्तीरनूद्य पारिहरति—यत्तुति ॥ सत्यमित्यर्थाङ्गीकारः ।
वस्तुतस्तु—श्रुतिविरोध एव नास्ति, यतः श्रुता जातिः लक्षिता वा
व्यक्ति न बाध्यते । कीदृशी गौरानेतव्येति सशयं परं बाध्यते इत्या-
शयेनाह—अतदपि परिहृतमिति ॥ यदिदं सामान्यतः प्रसरन्त्या श्रुते
विशेषेऽवस्थापनं तदपि कचिद्विशेषश्रुतिवेलायामेव विशेषावगमात्,
सामान्यश्रुतिरलम्बात्मिकैवेत्याह—अपिच प्रातिपदिकादिति ॥ उच्चरन्ती
वर्तमानेत्यर्थः । तत्र प्रकृत्यर्थानुरक्तकर्मत्वादिवुद्धिरेव केवलाप्रयोगात्सदानु-
भूयत इति भावः । सा चेति ॥ विभक्तिरित्यर्थः । पदसघाताः स्वस्वेते
इत्यनुमानं कर्तृस्मरणलक्षणेनोपाधिना दूषितमित्याह—यच्चैते इति ॥
चोदनासूत्रे नैवजातीयकेष्वर्थेषु पुरुषवचनं प्रामाण्यमुपैतित्युक्तं स्मार-
यति—अपिचैवमिति ॥

लोके सन्नियमात्प्रयोगसन्निकर्षस्स्यात् ॥ २६ ॥

लौकिकेषु पुनरर्थेषु प्रत्यक्षेणार्थमुपलभ्य सन्नियम सन्नि-
बन्धनं शक्यं तत्र महन्तुम्, एवजातीयकानि वाक्यानि—नी-
लोत्पलवनेष्वद्येति ॥

तस्मात् “अग्निहोत्र जुहुयात् स्वर्गकाम ” इत्येतेभ्य
एव पदेभ्य लोके येषां अवगता तेभ्य एतदवगम्यते
अग्निहोत्रात्स्वर्गो भवतीति पदेभ्य एव पदार्थप्रत्ययः पदा-
र्थेभ्यो वाक्यार्थप्रत्यय इति ॥

अथैतस्यार्थस्य प्रत्युदाहरण सूत्रम्—लोके इति ॥ सन्नियमात्
सति प्रमाणान्तरेणार्थेऽवगते सति नियम वाक्यसहननम् । ततश्च
सिद्धं पुरुषसबन्ध प्रयोगस्य । वक्ष्यते चैतत् “लोके कर्मार्थ-
लक्षणम्” इति भाव ॥

वाक्यार्थप्रत्यय इति ॥ अयमाशय — क्रियार्थेन समाम्नाय इत्य-
नेन वाक्यप्रयोगस्य सप्रयोजनत्वमभिमतम् । पदानि तावत् पदार्थ-
प्रतिपादनं यद्यपि कुर्वन्ति । तस्मिन् प्रतिपादने पर्यवसानेऽनुपयोगात्
प्रयोजनभूतेऽर्थे पर्यवसानं वाच्यम् । स चार्थः स्वर्गादि । सोऽपि
भाव्येवेति तन्निष्ठो भावकन्यापार भावनैव । स एव हि वाक्यार्थः ।
तदाह—

न हि प्रयोजनापेक्षया वाक्यमुच्चार्यते क्वचित् ।

प्रयोजनक्षमं नापि पदमाख्यातवर्जितम् ॥

इति ॥ अयमत्र क्रम — स्वर्गकामो यजेतेत्यत्र धातोरुपरितने अख्यात-
प्रत्यये रूपद्वयमस्ति लिङ्त्वमाख्यातत्वं चेति । आद्येन रूपेणाय
प्रत्यय शब्दभावना अभिधाभावनापरपर्याया प्रेरणाप्रवर्तनादिपदवाच्यां

अभिधत्ते । यागहोमादिविषयकप्रवृत्तिहेतुत्वात्प्रवर्तनादिपदवाच्या भवति । भावना नाम भवितुर्भवनानुकूले भावयितुर्व्यापारः । शब्दभावना नाम पुरुषप्रवृत्त्यनुकूले व्यापारविशेषः । स एव प्रत्यय द्वितीयेन रूपेणार्थभावनामभिधत्ते । अर्थभावना नाम प्रयोजनेच्छाजनितक्रियाविषयकव्यापारः ॥

भावनाया किं केन कथमित्याकाक्षात्रयमस्ति, किं भावयेत् केन भावयेत् कथं भावयेदिति । तत्रार्थभावनाभाव्यिका लिङादिज्ञानकरणिका अर्थवादजनितप्राशस्त्यज्ञानेति कर्तव्यताका इति शाब्दी भावना त्रयशा भवति । स्वर्गादिभाव्यिका यागादिकरणिका प्रयाजादीतिकर्तव्यताका आर्था भावना प्रजायते । अर्थभावनाया एव प्रयोजनरूपत्वान्मुस्यत्व, ततश्च प्रयोज्यतासम्बन्धेन शब्दभावनाविशिष्टा त्रयशा आर्था भावनेति बोधो जायते । प्रयोज्यत्व च स्वविषयकज्ञानजन्यानुमितिजन्यत्वम् । अनुमितिश्च याग इष्टसाधनमित्येवरूपा । यद्यत्प्रेरणाविषय तत्तदिष्टसाधनमिति व्याप्तेः । विषयो हि स्वप्रवर्तकत्वनिर्वाहार्थं विधेयस्य यागादेः श्रेयस्साधनत्वमाक्षिपन्त पुरुष तत्र प्रवर्तयन्ति । तथाच श्रेयस्साधनत्वरूप धर्मत्वमेवमनेन वाक्येन ज्ञायत इति सप्रदायः ॥

तत्र शब्दभावनास्वरूप किमित्यपेक्षाया प्रैषादिरूपस्य वक्तुमिप्रायस्य अपौरुषेये वेदे वक्तुमयोगात् शब्दनिष्ठ एव कश्चित् व्यापारः कल्प्यते । अत एवाभिधापदवाच्यशब्दव्यापाररूपत्वेन अभिधाभावनेति व्यवहियते ॥

अन्ये तु — चात्वर्थगतमिष्टसाधनत्वमेव शब्दभावनास्वरूपमाहुः मण्डनमिश्रानुयायिनः । तदेतदिष्टसाधनत्व प्रवर्तकत्वात् प्रवर्तनात्वेन रूपेण विध्यर्थः । एवञ्च विधिशब्दस्यान्यनिष्ठव्यापारबोधकत्व लोके-सिद्धं रक्षितं भवति । अभिधाभावनेति व्यवहारस्तु अभिधीयते या

सा अमिधा समीहितसाधनता सैव प्रवर्तनात्वेन अमिहिता
पुरुषप्रवृत्तिं भावयतीति भावना इति व्युत्पत्त्या युज्यते इत्याहु ।
यथाऽऽहुश्च—

पुसा नेष्टाभ्युपायत्वात्क्रियास्वन्य. प्रवर्तक ।

प्रवृत्तिहेतु धर्म च प्रवदन्ति प्रवर्तनाम् ॥

इति । अस्मिन् मते साक्षादेव श्रेयस्साधनत्वरूपधर्मावगम इति निर-
वद्यम् ॥

सैव ह्यार्था भावना कृतिप्रयत्नादिपदाभिधेया आख्यातवाच्या ।
गौडशुक्लेत्यादावपि आनीयतामित्यादिकमध्याह्रियते । तथाचानेकपदा-
र्थानुरक्तरूपेणासौ वाक्यार्थ न स्वरूपमात्रेण । अतः पदार्था एव
पदार्थान्तरान्वयावस्थामेदभिन्ना वाक्यार्थ । न त्वतोऽन्योऽन्यो
वा । ते च पदार्थाः प्रत्येकपदजनितपदार्थबुद्धिजन्यविचित्रसंस्कारसमूह-
जन्याया स्मृतावेकस्या युगपत्सन्निहिताः सर्वविशेषणाविशिष्टभावना-
बुद्धिं जनयन्तीति । अयमभिहितान्वयवाद ॥ तत्सग्रहस्तु—

पदमभ्याधिकाभावात् स्मारकान्न विशिष्यते ।

यदाधिक्य भवेत्किञ्चित् तत्पदस्य न गोचरः ॥

अत एव हि वाक्यार्थ एषा लाक्षणिको मत ।

यस्मादभिहितैरर्थैः सबन्धात्सोऽवगम्यते ॥

इति । अन्विताभिधानवादिनस्त्वेवमाहुः—

पदजात श्रुतं सर्वं स्मारितानन्वितार्थकम् ।

न्यायसपादितव्यक्ति पश्चाद्वाक्यार्थबोधकम् ॥

इति । अयमर्थः—पदानि तावत् श्रूयन्ते । श्रुतानि च व्युत्पत्तयनु-
सारेण पदार्थस्वरूपाणि परस्परानन्वितानि स्मारयन्ति । स्मृतेषु च

पदार्थेषु आकाशादिपरामर्श । तत्रैव न्यायप्रवृत्ति । तथा च वचन-
व्याक्तिविशेषाभिव्यक्तिस्सपाद्यते । ततस्सम्यङ्न्यायानुगृहीतानि पदानि
नानापदार्थविशिष्टैकप्रधानपदार्थात्मक वाक्यार्थमभिदधतीति । तन्मते
हि प्राभाकरसम्मते भावनाख्य. नियोगरूप कार्यमेव धर्मपदवाच्य
विध्यर्थः प्रधानभूत । विस्तरस्तु मानमेयरहस्यश्लोकवार्तिके वाक्यार्थ-
वादे द्रष्टव्य. ॥

“तस्मात्समुदायस्यार्थं कृत्रिमो व्यामोहो वा” इत्युक्तव्यामो-
हवादिनामयमाशयः—वर्णपदातिरिक्तबहिर्भूतवाक्याभावात् वाक्याकारा
बुद्धिरेव वाक्य, तदनन्तर चानेकजातिगुणद्रव्यक्रियाससर्गाभासात्
जायमाना बुद्धिरेव वाक्यार्थः, न बाह्य. । पदार्थातिरेकेणानतिरेकेण
वा निरूपणासम्भवादिति । सोऽयं प्रतिभावाक्यार्थन्याय । स च
निरालम्बनवादेनैव निराकृत इति नात्र प्रतनित ॥

वैयाकरणास्तु बाह्यमेव निर्भाग वाक्य वाक्यार्थं च मन्यन्ते ।
निरवयवत्वेऽपि वाक्यानामवयवप्रतिभासे प्रत्यभिज्ञाया च सादृश्य कारण-
मुच्यते । “ध्वनयस्सदृशात्मानो विपर्ययस्य कारणम्” इति ॥ अय-
मर्थः—नानाजातीयानेकध्वनिव्यङ्ग्य हि वाक्यम् । ते च ध्वनयः
प्रत्येक वाक्यान्तरव्यञ्जकध्वनिसदृशा निर्भागस्यापि वाक्यस्य तत्त-
द्वाक्यसादृश्यं नृसिंहस्येव केनचिद्भागेन नरसादृश्यं केनचिच्च सिंह-
सादृश्यं भागशः सपादयन्त सादृश्योपाधिभेदादवयवभेदमिव वाक्ये
दर्शयन्ति । ध्वनिसादृश्यादेव अवयवानामपि सादृश्यात् प्रत्यभिज्ञापि
भवतीति ॥ शिष्ट स्पष्ट स्फोटवादे ॥

तत्रमुख्यावयवप्रासिद्ध्या सादृश्यं दुर्वचमिति दूषणम् । सतां
हि सद्भिस्सादृश्यमसादृश्यं वेति ॥

शब्दविवर्तवादिनश्शाब्दिका केचिदेवमाहुः—निर्भागमेव वाक्य

अपौरुषेयताधिकरणम्

वेदार्थके सन्निकर्ष पुरुषाख्याः ॥ २७ ॥

उक्त चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इति, यतो न पुरुषकृतः शब्दस्यार्थेन संबन्धः । तत्र पदवाक्याश्रय आक्षेप परिहृत । इदानीमन्यथाऽऽक्षेपस्याम.—पौरुषेयाश्चोदना इति वदाम् । सन्निकृष्टकालाः कृतका वेदा इदानीतनाः, ते च चोदनानां समूहः । तत्र पौरुषेयाश्चेद्रेदाः असंशय पौरुषेयाश्चोदना । कथं पुनः कृतका वेदा इति केचिन्मन्यन्ते ? यतः पुरुषाख्याः पुरुषेण हि समाख्यायन्ते वेदाः काठकं कालापकं पैप्पलादकं मौहलमिति । न हि संबन्धादृते समाख्यानम् । नच पुरुषस्य शब्देनास्ति संबन्धः अन्यतः कर्ता पुरुषः कार्य वाक्यार्थात्मना विवर्तमान वाक्यार्थं नार्थान्तरमिति ॥ तथाचेत् शब्देन सहाभेदरूपेण शुक्तिकारजतादिबुद्धिवत् अर्थबुद्धिरास्थेया । सा च सविद्विरुद्धेति दोषः ॥

निषेधेषु यदि रागादिप्राप्त विध्यर्थं कर्तव्यत्व लिङाऽनूद्य नञा तन्निषेधः, यदि वा नञर्थनिषेधस्य वर्जनस्य लिङा विधि-द्वेषापि अनुष्ठानस्यानिष्टसाधनत्वकल्पनात् समवत्यननुष्ठानसकल्पजननेन निवारणमिति ॥ आम्नायस्य क्रियार्थत्वादित्यत्राप्तायपद धर्म-प्रमाणाप्तायपरम् । नातो निषेधस्थले क्रियार्थत्वाभावेऽप्यनुपपत्तिरित्यपि वदन्ति ॥

सन्निकृष्टेति ॥ सन्निकर्ष सामीप्य, तच्च कालतोऽत्र विवक्षितमिति भावः । समाख्या यौगिकी शक्तिः । तथा पुयोगः स्फुट एव । अन्यतः अतिरिक्त । कर्तृकर्तव्यतालक्षण एव

शब्द इति । ननु प्रवचनलक्षणा समाख्या स्यात् । नेति
ब्रूमः—असाधारणं हि विशेषणं भवति । एक एव हि
कर्ता बहवोऽपि प्रब्रूयुः । अतोऽस्मर्यमाणोऽपि चोदनायाः
कर्ता स्यात् । तस्मात् न प्रमाणं चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म इति ॥

अनित्यदर्शनाच्च ॥ २८ ॥

जननमरणवन्तश्च पुरुषाः वेदार्थाः श्रूयन्ते—“नवरः
प्रावाहणिरकामयत, कुसुरुविन्दः औद्दालकिरकामयत” इत्येव
मादय । उद्दालकस्यापत्यं गम्यते औद्दालकि । यद्येवं
प्रागौद्दालकिजन्मनः नाय ग्रन्थो भूतपूर्वः एवमप्यनित्यता ॥

उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम् ॥ २९ ॥

उक्तमस्माभिः शब्दपूर्वत्वमध्येतृणाम् । केवलमाक्षेपप-
रिहारो वक्तव्यस्सोऽभिधीयते ॥

आख्या प्रवचनात् ॥ ३० ॥

यदुक्तं कर्तृलक्षणा समाख्या काठकाद्येति । तदुच्यते—
नेयमर्थापत्तिः, अकर्तृभिरपि ज्ञेयमाचक्षीरन् । प्रकर्षेण वचनं
संबन्ध इत्यर्थः । एवंच वाक्यत्वं रचनायत्त, रचना च कठादिकर्तृकेति
अप्रमाणं चोदना इति ॥

अनित्येति ॥ अनित्याभिधायिस्वरूपादेव अनपेक्षत्वसूत्रोक्तन्यायेन
अनित्याश्चोदना इति भावः ॥

नेयमर्थापत्तिरिति ॥ नानन्यथासिद्धा युक्तिरित्यर्थः । अकर्तृ-
भिरपीति ॥ कर्तृत्वेपि प्रवर्तते प्रवक्तृत्वेपि प्रवर्तत इत्यर्थः । प्रक-
र्षस्योदाहरण—स्मर्यतेचेति ॥

अनन्यसाधारण कठादिभिरनुष्ठितं स्यात्, तथापि हि समा-
ख्यातारो जना भवन्ति । स्मर्यते च “वैशपायनस्सर्वशाखा-
ध्यायी । कठ पुनरिमां केवलां शाखामध्यापयावभूव” इति ॥
स बहुशाखाध्यायेना सन्निधौ एकशाखाध्यायी अन्यां शा-
खामनधीयानः तस्यां प्रकृष्टत्वादसाधारणमुपपद्यते विशेषणम् ॥

पर तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ॥ ३१ ॥

यच्च प्रावाहणिरिति, तन्न—प्रवाहणस्य पुरुषस्यासिद्ध-
त्वात् न प्रवाहणस्यापत्य प्रावाहणिः । प्रशब्द प्रकर्षे सिद्धः ।
वहाति श्रु प्रापणे । न त्वस्य समुदायः कश्चित्सिद्धः ।
इकारस्तु यथैवापत्ये सिद्ध, तथा क्रियाया अपि कर्तरि ।
तस्मात् य प्रवाहयति स प्रावाहणिः । बबर इति शब्दानु-
कृतिः । तेन यो निखोर्थं तमेवैतौ शब्दौ वदिष्यतः । अत
उक्त—पर तु श्रुतिसामान्यमात्रमिति ॥

कृते वा विनियोगस्स्यात् कर्मणस्संबन्धात् ॥ ३२ ॥

अथ कथमवगम्यते नायमुन्मत्तबालवाक्यसदृश इति ।
तथा हि पश्यामः—“वनस्पतयस्मन्त्रमासत, सर्पास्सत्रमासत”
इति । यथा—“जरद्भवो गायति मद्रकाणि” । कथं नाम जर-
द्भवो गायेत् । कथं वा वनस्पतयः सर्पा वा सत्रमासीरन्नाति ॥
उच्यते—विनियुक्तं हि दृश्यते परस्परेण संबन्धार्थम् ।

पर तु इति ॥ अनित्यार्थाभिधायित्वरूपं लिङ्ग तु श्रुतिसामान्य-
मात्र, प्रावाहण्यादिशब्दो न व्यक्तिवचनः किंत्वाकृतिवचन । ततो
निरस्तमिति भावः । तदाह—तेन य इति ॥

विनियुक्तमिति ॥ पदजातमिति शेषः । सौत्रविनियोगपद-

कथम् ? ज्योतिष्टोम इत्यभिधाय कर्तव्य इत्युच्यते । केनेत्या-
काक्षिते सोमेनेति । किमर्थमिति ? स्वर्गायेति । कथमिति ?
इत्थमनया इतिकर्तव्यतया इति । एवमवगच्छन्तः पदार्थैरेभि-
स्सस्कृतं पिण्डित वाक्यार्थं कथमुन्मत्तबालवाक्यसदृशमिति
वक्ष्याम ॥

नन्वनुपपन्नमिदं दृश्यते वनस्पतयस्सत्रमासतेत्यादि ।
नानुपपन्न—नानेनाग्निहोत्र जुहुयात्स्वर्गकामः” इत्यादयोऽनुप-
पन्नास्त्यु । अपि च “वनस्पतयस्सत्रमासत” इत्येवमादयोऽपि
नानुपपन्नाः, स्तुतयो ह्येतास्सत्रस्य । वनस्पतयो नामाचेतना-
इदं सत्रमुपासितवन्तः, किं पुनः विद्वांसो ब्राह्मणा । तद्यथा
लोके—संध्याया मृगा अपि न चरन्ति किं पुनर्विद्वांसो ब्राह्मणाः
इति । अपिचाविर्गीतस्सुहृदुपदेशः सुप्रतिष्ठितः कथमिवा-
शङ्क्येत उन्मत्तबालवाक्यसदृश इति । तस्माच्चोदनालक्षणोऽर्थो
धर्म इति सिद्धम् ॥

इत्याचार्यशबरस्वामिनः कृतौ मीमांसाभाष्ये

प्रथमस्याध्यायस्य प्रथमः पादः

तर्कपादस्समाप्तः

लभ्योऽर्थ एष । तथाचायं सूत्रार्थः—कृते कर्मणि ज्योतिष्टोमादिके
अभिहिते तदाकाक्षिततया समभिव्याहृतपदजातस्य विनियोगस्समन्वय-
स्त्योदेव । कर्मणः सवन्धात् साक्षात्त्वादिति ॥ भावनावाक्यार्थवादस्य
इदमेव भाष्यं मूलमिति ध्येयम् ॥

आचार्यशबरस्वामिभाष्येऽस्मिन्नाद्यलक्षणे ।
 तर्कपादे विवरण नाम्नाऽऽसीत् भाष्यभूषणम् ॥
 इत्थं कस्तूरिगेन्द्रकृपात्तमतिवैभव ।
 लक्ष्मीपुर श्रीनिवास व्यलिखत् भाष्यभूषणम् ॥
 प्रीयता मगवान् वासुदेव सर्वतनुर्यत ।
 स्वार्थं परार्थमपिच सुनिष्पन्नोऽयमुद्यमः ॥

इति श्रीवत्सकुलकलशजलनिधिकौस्तुभायमान श्रीवेङ्कटार्यतनुम-
 वस्य ताताम्बागर्भशुक्तिमुक्ताफलायेमानस्य श्रीमत्कस्तूरिरङ्गनाथ-
 विद्वन्मणिकरुणाकटाक्षसमासादितसारस्वत सर्वस्वस्य श्रीमद्वि-
 राक्तिराघवार्यचरणानुगृहीतिसकलसंप्रदायरहस्यस्य श्रीम-
 द्राजाधिराज महीशूर महीधुर्यतुर्य श्रोतृष्णराज सार्व-
 भौमपरिपोषितस्य महामहोपाध्याय पण्डितरत्ना-
 द्यनेक विरुदालकृतस्य श्रीमनो लक्ष्मीपुरा-
 भिजनस्य श्रीनिवासाचार्यस्य कृतिषु
 आचार्यशबरस्वामिभाष्यस्य तर्क-
 पादस्य व्याख्यानं मीमांसा
 भाष्यभूषणं सम्पूर्णम्.

श्रीवासुदेवः प्रीयताम्.

करयसंस्कृतपुस्तकानि.

| | | | |
|---------------------------|-----|------------------------------|------|
| संस्कृतबालशिक्षा | ० ३ | श्रीगोविन्दद्वादश (चतुर्दश) | |
| सरस्वताप्रार्थना, श्यामला | | मञ्जरिकास्तोत्रम् | ० १ |
| दण्डक, नवरत्नमालाच | ० २ | मुकुन्दमाला | ० १ |
| शब्दमजरी (दृढपत्रात्मिका) | ० ६ | हिन्दी बालशिक्षा | ० ३ |
| यजुर्वेदसन्ध्यावन्दनम् | ० २ | हिन्दी प्रथमवाचकम् | ० ८ |
| आदित्यहृदयम् | ० १ | भर्तृहरिशतकत्रय, मूलम् | ० ८ |
| महाकवि बोधायनकृत- | | विक्रमार्कचरित्रम् | ० १० |
| भगवद्गुणकनाटकम् | ० ६ | संस्कृतान्ध्रवर्णबोधिनी, | |
| शिवानन्दलहरी | ० २ | पत्रफलका | ० २ |
| रुद्रनमकचमकम् | ० २ | श्रीलक्ष्मीनारायणहृदय | ० ३ |
| सौन्दर्यलहरी | ० २ | ब्रह्मसूत्राणि, मूलम् | ० ३ |
| पञ्चसूक्तानि | ० २ | | |
| रामकर्णामृतम् | ० ८ | ॥ नामावलीसहितानि ॥ | |
| बालरामायणम् | ० २ | विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| विवेकचूडामणि | ० ८ | ललितासहस्रनामस्तोत्रम् | ० ६ |
| कृष्णकर्णामृतम् | ० ६ | लक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| ॥ आंग्लवादासहितम् | १ ८ | सुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| शिवकवचम् | ० २ | शिवसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| यजुर्वेदाह्निकम् | ० ६ | त्रैलोक्येशस्तोत्रम् | ० ४ |
| श्रीवैष्णवाह्निकम् | ० ८ | अन्नपूर्णासहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| सूर्यनमस्कारमन्त्राऽथ | | आज्ञनेयसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| ब्रह्मयज्ञचिन्तासस्त्र | ० १ | गणपतिसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम् | ० १ | | |

वाविळ्ळ. रामस्वामिशस्त्रिलु अण्ड सन्म्,
२९२, एस्क्लेनेड् चेन्नपुरी

ವಿಶ್ಲೇಷ ನೋಚನಾ.

1 ಮಹಾಪಾರಶಾಲೆಯ ಪಂಚಾಶತ್ಸಂವತ್ಸರ ಮಹೋತ್ಸವದ ಜ್ಞಾಪಕಾರ್ಥವಾದ ಸಂಚಿಕೆಯು ಪ್ರತ್ಯೇಕ ಬಿಕರಿಗೆ ಸಿದ್ಧವಾಗಿದೆ ಸುಂದರವಾದ ಐದು ಭಾವಚಿತ್ರಗಳಿಂದಲಂಕೃತವಾಗಿ ಉತ್ತಮವಾದ ಕಾಗದದಲ್ಲ ಮುದ್ರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಉದ್ದಾಪು ಪಂಡಿತರಿಂದ ರಚಿತಗಳಾದ ಉಪನ್ಯಾಸಗಳಿಂದ ಭರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಸರ್ವರೂ ಗ್ರಹಿಸತಕ್ಕದ್ದಾಗಿದೆ ಕೆಲವು ಪ್ರತಿಗಳು ಮಾತ್ರ ಉಳಿದಿರುವುದರಿಂದ ಇಷ್ಟವುಳ್ಳವರು ಶೀಘ್ರದಲ್ಲೆಯೇ ಕೆಳಗಿನ ವಿಳಾಸಕ್ಕೆ ಬರೆದು ಪಡೆಯಬಹುದು ಬೆಲೆ ಎಂಟಾಣಿ, ಅಂಚೆ ವೆಚ್ಚ ಎರಡಾಣಿ

2 ಇದುವರೆಗೂ ನಮ್ಮ ಪತ್ರಿಕೆಗೆ ಚಂದಾದಾರರಾಗುವುದರ ಮೂಲಕ ಪ್ರೋತ್ಸಾಹಕೊಟ್ಟ ಮಹನೀಯರಿಗೆ ಬಹಳ ಕೃತಜ್ಞರಾಗಿದ್ದೇವೆ ಮುಂದೆಯೂ ಹೀಗೆಯೇ ಸಹಾಯಮಾಡಿ, ಕ್ಷೀಣದಶೆಗೆ ಬರುತ್ತಿರುವ ಗೀರ್ವಾಣ ವೀರ್ಯನ್ನು ಕೈರಾದಷ್ಟು ಉದ್ದಾರಮಾಡಬೇಕಾಗಿ ಪ್ರಾರ್ಥನೆ

3 ಮುಂದಿನ ಅಂದರೆ ಏಪ್ರಿಲ್ ಸಂಚಿಕೆಯನ್ನು ವಿ ವಿ ಮೂಲಕ ಕಳುಹಿಸಲಾಗುತ್ತೆ, ಅದರ ಅದಕ್ಕೆ ಮುಂಚೆಯೇ ಕಳಿಗೆ ಕಂಡಂತ ಚಂದಾ ಮೊಬಲಗನ್ನು ಮನಿಯಾರ್ಡರು ಮೂಲಕ ರವಾನಿಸಿದರೆ ಚಂದಾದಾರರಿಗೆ ಸ್ವಲ್ಪಮಟ್ಟಿಗೆ (ಎರಡಾಣಿ) ಉಳಿತಾಯವಾಗುವುದೆಂದು ನೋಚನೆ

| | | | |
|----------------------|---|---------|---|
| ಚಂದಾ—ಮೈಸೂರು ದೇಶದೊಳಗೆ | 1 | 8 | 0 |
| ,, ,, ಹೊರಗೆ | 1 | 12 | 0 |
| ,, ನೀಮೆಯಲ್ಲಿ | 3 | ಪಿಲಿಂಗ್ | |

ಚಕ್ರವರ್ತಿ ರಾಮಾನುಜಯ್ಯಂಗಾರ್ಯ,

ಅಧ್ಯಕ್ಷ,

ಸಂಸ್ಕೃತ ಮಹಾಪಾರಶಾಲಾ, ಮೈಸೂರು

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिकायाः

विनिमयविषयीभूता एता पत्रिकाः

- १ मडारकर् रिसर्च् इन्स्टिट्यूट आनल्स, पूना
 - २ जर्नल् आफ् ओरियंटल रिसर्च्, मदरासु
 - ३ प्रबुद्धकर्णाटक, बेंगलूरु
 - ४ मिथिक सोसैटि जर्नल बेंगलूरु
 - ५ यूनिवर्सिटि यूनियन् म्याग्सीन्, मैसूरु
 - ६ एम् टि वि आर्ट्स्कालेजुम्याग्जीयन्, सुरन्.
 - ७ ओरियंटल् कालेजु म्याग्सीन्, लाहोर
 - ८ सद्बोधचन्द्रिके, आनन्दवन
 - ९ श्री शारदा, शृंगेरि
 - १० कादम्बरीसग्रह, चामराजनगर
 - ११ मनातनधर्मसजीविनी, मैसूरु
 - १२ कर्णाटक चन्द्रिके, मैसूरु
 - १३ उद्यानपत्रिका, तिरुवादि
-

ಸೂಚನಾ .

“ಮಾನಮೇಯರಹಸ್ಯಶ್ಲೋಕವಾರ್ತಿಕಮ್”

ಇತಿ ನಾಮ ಕಶ್ಚಿನ್ಮಹಾಪ್ರವಂಶ ಆನುಶ್ರುತಶ್ಲೋಕರೂಪೇ ಸಗೃಹೀತ.
ಸರ್ವಸಿದ್ಧಾಂತಸಾರಸಂಗ್ರಹರೂಪ ಪರಸ್ಸಹಸ್ರವಿಷಯವಿವಿಕ್ತ ಏತರಪತ್ರಿಕಾ-
ಸಪಾದಕೇನ ಪ್ರಣೀತ ಸುಡಿತ. ಪ್ರಕಾಶಿತಶ್ಚಾಸ್ತಿ । ಮೂಲಮಸ್ಯ (6) ಬದ್ಧ
ರೂಪಕಾಣಿ ಪ್ರಾಪಣಭೃತಿ ಪೃಥಗೇವ

ಉಪಲಬ್ಧಿಸ್ಥಾನ—ಪತ್ರಿಕಾಸಪಾದಕ

ಶ್ರೀ ಮಧ್ವಸಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ (ಮಾನಮೇಯರಹಸ್ಯ)

ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯು ಪ್ರಾರಂಭವಾಗಿ ಒಂಭತ್ತು ವರ್ಷಗಳಾದುವು ಇದರಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಟವಾಗತಕ್ಕ ವಿಷಯಗಳು ಅತ್ಯುತ್ಕೃಷ್ಟವಾದುವು ಸರ್ವರಿಗೂ ತಿಳಿಯುವಂತೆ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಪಂಡಿತರುಗಳಿಂದ ವಿಷಯಗಳು ಬರಿಯಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯಂತೆ ನಮ್ಮಲ್ಲಿ ಮತಪ್ರಕಾಶಕವಾದುದು ಮತ್ತಾವುದೂ ಇರುವುದಿಲ್ಲ ಇದರಲ್ಲಿ ಮಧ್ವಮತಕ್ಕೆ ಸಮ್ಬಂಧಿಸಿದ ವಿಷಯಗಳೆಲ್ಲದೆ, ಇತರ ಮತಗಳ ಪ್ರಮೇಯಗಳೂ, ನೀತಿ, ಧರ್ಮ, ಪುರಾಣೋಪನಿಷದ್‌ಗಳಲ್ಲಿ ಕಂಡುಬರುವ ಅನೇಕ ವಿಷಯಗಳೂ ಬರಿಯಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯನ್ನು ಆದರಿಸುವಂತೆ ಸರ್ವರೂ ಪ್ರಾರ್ಥಿಸಲ್ಪಡುತ್ತಾರೆ

ಇದರ ವಾರ್ಷಿಕಚಂದಾ ರೂ ೨-೪-೦ (ಟಪ್ಪಾಲು ಸಮೇತ)
ಪೋಷಕರು ೧ನೇ ತರಗತಿ ರೂ ೧೦-೦-೦ ೨ನೇ ತರಗತಿ ರೂ ೫-೦-೦
ಹಿಂದಿನ ಸಂಪುಟಗಳನ್ನೇ ಪೇಕ್ಷಿಸುವವರು ಬರೆದು ತರಿಸಿಕೊಳ್ಳಬಹುದು

ಕೆ ವ್ಯಾಸಾಚಾರ್ಯ, ಬಿ ಎ ,

ಕಾರ್ಯದರ್ಶಿ, ಮಧ್ವಸಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ ಸಭಾ, ಮೈಸೂರು,

पुस्तकपरिचयः.

संस्कृतबालादर्श-संस्कृतप्रथमादर्शश्च

महोपाध्याय पद समलङ्कृतै ब्र॥ K L व्यासरायशस्त्रिभि
बालकाना मनायासेन संस्कृतभाषाया प्रवेशसिद्ध्यर्थं विरचिनौ संस्कृत-
बालादर्श संस्कृतप्रथमादर्शाभिधानौ ग्रन्थविशेषा वामूलाग्र परिशीलितौ
बालकाना मप्यत्यन्तानुभव विषयीभूत पदमिश्रै र्वाक्यै स्सकलव्य
विरचितः प्रथमो ग्रन्थ पदलिङ्गज्ञानादिक सुसुख जनयति, तत्पठनेन
च सर्वेषामपि प्रायश न केवल ज्ञानाभिवृद्धिर्भवति, पर तु गैर्वाण
भाषाभ्यासे कौतुक च जायते। अत यदि संस्कृत भाषाभ्यासेऽतिकुतूह-
लिन ग्रन्थमिम मापादचूड समधीयीरन्, तदा तेषा मस्या भाषायाम-
त्युत्साह उत्पद्यते स्वेष्टार्थसिद्धिश्च सम्यग्भवतीत्यत्र न कोपि विषयलंश-
स्याप्यवकाश इति ॥

एवमेव द्वितीयोपि पाठनकालेऽनुभूतविद्यार्थिपरिश्रमैः पण्डित
प्रवरै तच्छ्रमनिवारणोद्देशेन विलिखिताना भाषान्तरीयप्रथमपुस्तका-
दीना पद्धतिं नवीनशैलीं चानुहरति। तस्मिंश्च मध्येमध्ये सयोजिताना
नीतिमार्गोपदेशकाना सुबोधार्थवता सर्वानुभवविषयपदमिश्राणा पद्यभा-
गानामध्ययनेन भाषाभ्यासेऽतिकौतुक पद्याध्यायनेऽनुभूयमानश्लोकादि-
परिहारश्च भवति। सर्वसाधारण्येन लोकव्यवहारविषयभूताना पदार्थानां
स्वरूपनिरूपकै. प्रश्नोत्तरवाक्यैः इतरवाक्यविशेषैश्च गुम्भितः अय ग्रन्थः
सर्वानपि गैर्वाणभाषाध्ययनकुतूहलिन अनायासेन तद्विशेषपरिचयवतः
लेखनभाषाणादिष्वतिसमर्थाश्च करोति। अस्यान्त्यभागे चोदाहृता सुबो-
धास्सदुपदेशविशिष्टाश्चित्रश्लोका तदध्येतृणा तत्सदृशविषयान्तरानु-
सन्धान एव तेषामतिकौतूहलमुत्पाद्य तद्बुद्धिचात्यन्त विकासयति इत्यन्य

महिमा केवल अनुभवैकशरणैरेव निर्णेतुं शक्य । अतः अस्सग्रथस्यै-
वाध्ययने प्रवृत्तास्सर्वेपि यथारुचि भाषाज्ञानादिकमनायासेन सम्पाद्य
सतोषातिशयमवामुयुरिति सुदृढं प्रतीम ।

शब्दमञ्जरी

पण्डितवरैः P ५ अनन्तनारायणशास्त्रिभिर्विरचिताऽस्तौ शब्द-
मञ्जरी क्रमशः सामान्य कष्टतर कष्टतमशब्दरूपाभ्यासविषये बाल-
कानां मतीवानुकूल्यं परिपोषयति । अस्यां चाधोभागे प्रायशस्सर्वत्रोपपा-
दिता व्याकरणाशादिविशेषविषया आधुनिकानां गीर्वाणभाषाभ्यासकुतु-
किना विद्यार्थिना मतीव साहाय्यकारिण उत्साहजनकाश्च । व्याख्याता
श्चास्यां अन्त्यभागे तिङ्शितसमासप्रकरणादिका तत्तदशेषु विद्यार्थिनां
सुसुखं तत्तदज्ञानादिकमुत्पादयन्ति येनच भाषान्तरीयतादृशविषया अपि
सुविशदमनायासेन तैर्विज्ञेया भवन्ति । अस्यां च विवृता स्सर्वेपि
शब्दा यत्किंचिद्वैलक्षण्यमापन्नास्सर्वास्वपि विभक्तिषु प्रायेण प्रदर्शिता
इत्ययमप्यशोऽध्येतृणां मत्यानुकूल्याधायकः । तस्मादेव सौख्यापादन-
पुरस्सरं भाषाज्ञानोपयोगिनीयं शब्दमञ्जरी गीर्वाणभाषाध्येतृभिस्सादरं
यद्यभ्यस्यते तदा ते सर्वेऽपि समधिगतमनोरेथास्सम्पद्यन्त इतीयं सङ्-
विश्वसनीया —

व्याकरणाविद्वान्

कृष्णदेशिकाचार्यः.

[तत्र तावत् सस्कृतप्रथमादर्शाभिधानः ग्रन्थः मैसूरुस्थानं सस्कृतं
विद्यामिवृद्धिमहासमाधिकारिभिः सस्कृतं प्रथमकक्ष्यायां पाठ्यमानपु-
स्तकचयेऽन्तर्भावितं इत्येतावदेव किलास्य ग्रन्थस्य विमर्शनं स्यात्] ॥सं॥

करयसंस्कृतपुस्तकानि.

| | | | |
|------------------------------|-----|-----------------------------|------|
| संस्कृतबालशिक्षा | ० ३ | श्रीगोविन्दद्वादश (चतुर्दश) | |
| सरस्वताप्रार्थना, श्यामला | | मञ्जरिकास्तोत्रम् | ० १ |
| दण्डक, नवरत्नमालाच | ० २ | मुकुन्दमाला | ० १ |
| शब्दमञ्जरी (दण्डपत्रात्मिका) | ० ६ | हिन्दी बालशिक्षा | ० ३ |
| यजुर्वेदसंन्यावन्दनम् | ० २ | हिन्दी प्रथमवाचकम् | ० ८ |
| आदित्यहृदयम् | ० १ | मर्तुहरिशतकत्रय मूलम् | ० ८ |
| महाकवि बोधायनकृत- | | विक्रमार्कचरित्रम् | ० १० |
| भगवदज्जुकनाटकम् | ० ६ | संस्कृतान्ध्रवर्णवोधिनी, | |
| शिवानन्दलहरी | ० २ | पत्रफलका | ० २ |
| रुद्रनमकचमकम् | ० २ | श्रीलक्ष्मीनारायणहृदय | ० ३ |
| सौन्दर्यलहरी | ० २ | ब्रह्मसूत्राणि, मूलम् | ० ३ |
| पञ्चसुक्तानि | ० २ | | |
| रामकर्णामृतम् | ० ८ | ॥ नामावलीसहितानि ॥ | |
| बालरामायणम् | ० २ | विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| विवेकचूडामणि | ० ८ | ललितासहस्रनामस्तोत्रम् | ० ६ |
| कृष्णकर्णामृतम् | ० ६ | लक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| ॥ आंग्लवादासहितम् | १ ८ | सुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्र | ० ८ |
| शिवकवचम् | ० २ | शिवसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| यजुर्वेदाह्निकम् | ० ६ | वेङ्कटेशस्तोत्रम् | ० ४ |
| श्रीवैष्णवाह्निकम् | ० ८ | अक्षपूरुणासहस्रनामस्तोत्रं | ० ४ |
| सूर्यनमस्कारमन्त्रा त्र्युच- | | आजनेयसहस्रनामस्तोत्र | ० ४ |
| ब्रह्मयज्ञचहितास्सस्वराश्च | ० १ | गणपतिसहस्रनामस्तोत्र | ० ४ |
| लक्ष्मीनृसिंहस्तोत्रम् | ० १ | | |

वाविळ्ळ. रामस्वामिशास्त्रिलु अण्ड् सन्म्,
२९२, एस्क्लेनेड् चेन्नपुरी.

ವಿಶ್ಲೇಷ ಸೂಚನಾ

1 ಮಹಾಪಾರಶಾಲೆಯ ಪಂಚಾಶತ್ಸಂವತ್ಸರ ಮಹೋತ್ಸವದ ಛಾಪಕಾರ್ಥವಾದ ಸಂಚಿಕೆಯು ಪ್ರತ್ಯೇಕ ಬಿಕರಿಗೆ ಸಿದ್ಧವಾಗಿದೆ ಸುಂದರವಾದ ಐದು ಭಾವಚಿತ್ರಗಳಿಂದಲಂಕಿತವಾಗಿ ಉತ್ತಮವಾದ ಕಾಗದದಲ್ಲಿ ಮುದ್ರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಉದ್ದಾಮ ಪಂಡಿತರಿಂದ ರಚಿತಗಳಾದ ಉಪನ್ಯಾಸಗಳಿಂದ ಭರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಸರ್ವರೂ ಗ್ರಹಿಸತಕ್ಕದಾಗಿರೆ ಕೆಲವು ಪ್ರತಿಗಳು ಮಾತ್ರ ಉಳಿದಿರುವುದರಿಂದ ಇಷ್ಟವುಳ್ಳವರು ಶೀಘ್ರದಲ್ಲಿಯೇ ಕೆಳಗಿನ ವಿಳಾಸಕ್ಕೆ ಬರೆದು ಪಡೆಯಬಹುದು ಬೆಲೆ ಎಂಟಾಣಿ, ಅಂಚ ವೆಚ್ಚ ಎರಡಾಣಿ

2 ಇದುವರೆಗೂ ನಮ್ಮ ಪತ್ರಿಕೆಗೆ ಚಂದಾದಾರರಾಗುವುದರ ಮೂಲಕ ಪ್ರೋತ್ಸಾಹಕೊಟ್ಟ ಮಹನೀಯರಿಗೆ ಬಹಳ ಕೃತಜ್ಞರಾಗಿದ್ದೇವೆ ಮುಂದೆಯೂ ಹೀಗೆಯೇ ಸಹಾಯಮಾಡಿ, ಕ್ಷೀಣದಶೆಗೆ ಬರುತ್ತಿರುವ ಗೀರ್ವಾಣ ವಿದ್ಯೆಯನ್ನು ಕೈಲಾದಷ್ಟು ಉದ್ಧಾರಮಾಡಬೇಕಾಗಿ ಪ್ರಾರ್ಥನೆ

| | | | |
|---------------------------------|---|---------|---|
| ಚಂದಾ—ಮೈಸೂರು ದೇಶದೊಳಗೆ | 1 | 8 | 0 |
| ,, ,, ಹೊರಗೆ | 1 | 12 | 0 |
| ,, ಸೀಮೆಯಲ್ಲಿ | 3 | ಪಿಲಿಂಗ್ | |
| ವಿದ್ಯಾರ್ಥಿಗಳಿಗೆ—ಮೈಸೂರು ದೇಶದೊಳಗೆ | 1 | 6 | 0 |
| ,, ದೇಶದ ಹೊರಗೆ | 1 | 4 | 0 |

ಚಕ್ರವರ್ತಿ ರಾಮಾನುಜಯ್ಯಂಗಾರ್ಯ,

ಅಧ್ಯಕ್ಷ,

ಸಂಸ್ಕೃತ ಮಹಾಪಾರಶಾಲಾ, ಮೈಸೂರು

श्रीमन्महाराजसंस्कृतमहापाठशालापत्रिकायाः

विनिमयविषयीभूता एता पत्रिकाः

- १ मडारकर् रिसर्च् इन्स्टिट्यूट आनल्स्, पूना
- २ जर्नल् आफ् ओरियंटल् रिसर्च् मदरासु
- ३ प्रबुद्धकर्णाटक, बेंगळूरु
- ४ मिथिक् सोसैटि जर्नल्, बेंगळूरु
- ५ यूनिवर्सिटि यूनियन् म्यागसीन्, मैसूरु
- ६ एम् टि वि आर्ट्स् कालेजु म्यागसीन्, सुरत
- ७ ओरियंटल् कालेजु म्यागसीन्, लाहोर
- ८ सद्बोधचन्द्रिके, आनन्दवन
- ९ श्री शारदा, शृंगेरि
- १० कादम्बरोसग्रह, चामराजनगर
- ११ सनातनधर्मसजीविनी, मैसूरु
- १२ कर्णाटक चन्द्रिके, मैसूरु
- १३ उद्यानपत्रिका, तिरुवादि
- १४ सुप्रमातम्, काशी
- १५ सुविचारिणी, बेंगळूरु
- १६ वै ए ए ए पत्रिका, मल्लेश्वरं, बेंगळूरु
- १७ ग्रामजीवन, लक्ष्मीपुरं, मैसूरु
- १८ आन्ध्रसाहित्य पत्रिका, काकिनाड

ಸು ಚ ನಾ .

‘ಮಾನಮೇಯರಹಸ್ಯಶ್ಲೋಕವಾರ್ತಿಕಮ್’

ಇತಿ ನಾಮ ಕಶ್ಚಿನ್ಮಹಾಪ್ರಬಂಧ ಆನುಶ್ರುತಶ್ಲೋಕರೂಪಣ ಸಗೃಹಿತಃ
ಸರ್ವಸಿದ್ಧಾಂತಸಾರಸಪ್ರಹರೂಪ ಪರಸ್ಸಹಸ್ರವಿಷಯವಿಭಕ್ತ ಏತತ್ಪತ್ರಿಕಾ-
ಸಂಪಾದಕೇನ ಪ್ರಣೀತ ಮುದ್ರಿತ ಪ್ರಕಾಶಿತಶ್ಚಾಸ್ತಿ । ಮೃದಯಮಸ್ಯ (6) ಪಠ್ಯ
ರೂಪಕಾಣಿ ಪ್ರಾಪಣಭೃತಿ ಪೃಥಗೇವ

ಉಪಲಬ್ಧಿಸ್ಥಾನಂ—ಪತ್ರಿಕಾಸಂಪಾದಕ

ಶ್ರೀ ಮಧ್ವಸಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ (ಮಾನಪತ್ರಿಕೆ)

ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯು ಪ್ರಾರಂಭವಾಗಿ ಒಂಭತ್ತು ವರ್ಷಗಳಾದುವು ಇದರಲ್ಲಿ ಪ್ರಕಟವಾಗತಕ್ಕ ವಿಷಯಗಳು ಅತ್ಯುತ್ಕೃಷ್ಟವಾದುವು ಸರ್ವರಿಗೂ ತಿಳಿಯುವಂತೆ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಪಂಡಿತರುಗಳಿಂದ ವಿಷಯಗಳು ಬರಿಯಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯಂತೆ ನಮ್ಮಲ್ಲಿ ಮತಪ್ರಕಾಶಕವಾದುದು ಮತ್ತಾವುದೂ ಇರುವುದಿಲ್ಲ ಇದರಲ್ಲಿ ಮಧ್ವಮತಕ್ಕೆ ಸಮ್ಬಂಧಿಸಿದ ವಿಷಯಗಳಲ್ಲದೆ, ಇತರ ಮತಗಳ ಪ್ರಮೇಯಗಳೂ, ನೀತಿ, ಧರ್ಮ, ಪುರಾಣೀತಿಹಾಸಗಳಲ್ಲಿ ಕಂಡುಬರುವ ಅನೇಕ ವಿಷಯಗಳೂ ಬರಿಯಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯನ್ನು ಆದರಿಸುವಂತೆ ಸರ್ವರೂ ಪ್ರಾರ್ಥಿಸಲ್ಪಡುತ್ತಾರೆ

ಇದರ ವಾರ್ಷಿಕಚಂದಾ ರೂ ೨-೪-೦ (ಏಪ್ಪಾಲು ಸಮೇತ)
ಪೋಷಕರು ೧ನೇ ತರಗತಿ ರೂ ೧೦-೦-೦ ೨ನೇ ತರಗತಿ ರೂ ೫-೦-೦
ಹಿಂದಿನ ಸಂಪುಟಗಳನ್ನೇ ಪೇಕ್ಷಿಸುವವರು ಬರೆದು ತರಿಸಿಕೊಳ್ಳಬಹುದು

ಕೆ ವ್ಯಾಸಾಚಾರ್ಯ, ಬಿ ಎ ,

ಕಾರ್ಯದರ್ಶಿ, ಮಧ್ವಸಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ ಸಭಾ, ಮೈಸೂರು.

ऋग्यसंस्कृतपुस्तकानि.

| | | | |
|----------------------------|-----|-------------------------------|------|
| संस्कृतबालशिक्षा | ० ३ | श्रीगोविन्दद्व्यादश (चतुर्दश) | |
| सरस्वताप्रार्थना, इयामला | | मञ्जरिकास्तोत्रम् | ० १ |
| दण्डक, नवरत्नमालाच | ० २ | मुकुन्दमाला | ० १ |
| शब्दमजरी (दृढपत्रात्मिका) | ० ६ | हिन्दी बालशिक्षा | ० ३ |
| यजुर्वेदसंन्यासवन्दनम् | ० २ | हिन्दी प्रथमवाचकम् | ० ८ |
| आदित्यहृदयम् | ० १ | भर्तृहरिशतकत्रय, मूलम् | ० ८ |
| महाकवि बोधायनकृत- | | विक्रमार्कचरित्रम् | ० १० |
| मगवदज्जुक्नाटकम् | ० ६ | संस्कृतान्ध्रवर्णबोधिनी, | |
| शिवानन्दलहरी | ० २ | पत्रफलका | ० २ |
| रुद्रनमकचमकम् | ० २ | श्रीलक्ष्मीनारायणहृदयं | ० ३ |
| सौन्दर्यलहरी | ० २ | ब्रह्मसूत्राणि, मूलम् | ० ३ |
| पञ्चसूक्तानि | ० २ | | |
| रामकर्णामृतम् | ० ८ | ॥ नामावलीसहितानि ॥ | |
| बालरामायणम् | ० २ | विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| विवेकचूडामणि | ० ८ | ललितासहस्रनामस्तोत्रम् | ० ६ |
| कृष्णकर्णामृतम् | ० ६ | लक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| „ आंग्लवादासहितम् | १ ८ | सुब्रह्मण्यसहस्रनामस्तोत्रं | ० ८ |
| शिवकवचम् | ० २ | शिवसहस्रनामस्तोत्रम् | ० ४ |
| यजुर्वेदाह्निकम् | ० ६ | वेङ्कटेशस्तोत्रम् | ० ४ |
| श्रीवैष्णवाह्निकम् | ० ८ | अश्वपूर्यासहस्रनामस्तोत्रं | ० ४ |
| सूर्यनमस्कारमन्त्रा ज्युच- | | आजनेयसहस्रनामस्तोत्रं | ० ४ |
| ब्रह्मयज्ञचहितास्सस्वराश्च | ० १ | गणपतिसहस्रनामस्तोत्रं | ० ४ |
| लक्ष्मीनृसिहस्तोत्रम् | ० १ | | |

वाविर्कळ. रामस्वामिशास्त्रिलु अण्ड् सन्म् ,
२९२, एस्फ़्लनेड् चेन्नपुरी

ವಿಶ್ಲೇಷ ಸೂಚನಾ

1 ಮಹಾಪಾರಶಾಲೆಯ ಪಂಚಾಶತ್ಸಂವತ್ಸರ ಮಹೋತ್ಸವದ ಜ್ಞಾಪಕಾರ್ಥವಾದ ಸಂಚಿಕೆಯು ಪ್ರತ್ಯೇಕ ಬಿಕರಿಗೆ ಸಿದ್ಧವಾಗಿದೆ ಸುಂದರವಾದ ಐದು ಭಾವಚಿತ್ರಗಳಿಂದಲಂಕೃತವಾಗಿ ಉತ್ತಮವಾದ ಕಾಗದದಲ್ಲ ಮುದ್ರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಉದ್ದಾಮ ಪಂಡಿತರಿಂದ ರಚಿತಗಳಾದ ಉಪನ್ಯಾಸಗಳಿಂದ ಭರಿತವಾಗಿರುವುದರಿಂದಲೂ, ಸರ್ವರೂ ಗ್ರಹಿಸತಕ್ಕದ್ದಾಗಿದೆ. ಕೆಲವು ಪ್ರತಿಗಳು ಮಾತ್ರ ಉಳಿದಿರುವುದರಿಂದ ಇಷ್ಟವುಳ್ಳವರು ತೀಪ್ತದಲ್ಲೆಯೇ ಕೆಳಗಿನ ವಿಳಾಸಕ್ಕೆ ಬರೆದು ಪಡೆಯಬಹುದು ಬೆಲೆ ಎಂಟಾಣಿ, ಅಂಚೆ ವೆಚ್ಚ ಎರಡಾಣಿ

2 ಇದುವರೆಗೂ ನಮ್ಮ ಪತ್ರಿಕೆಗೆ ಚಂದಾದಾರರಾಗುವುದರ ಮೂಲಕ ಪ್ರೋತ್ಸಾಹಕೊಟ್ಟ ಮಹನೀಯರಿಗೆ ಬಹಳ ಕೃತಜ್ಞರಾಗಿದ್ದೇವೆ ಮುಂದೆಯೂ ಹೀಗೆಯೇ ಸಹಾಯಮಾಡಿ, ಕ್ಷೀಣದಶೆಗೆ ಬರುತ್ತಿರುವ ಗೀರ್ವಾಣ ವಿಘ್ನೆಯನ್ನು ಕೈಲಾದಷ್ಟು ಉದ್ಧಾರಮಾಡಬೇಕಾಗಿ ಪ್ರಾರ್ಥನೆ

| | | | |
|---------------------------------|---|---------|---|
| ಚಂದಾ—ಮೈಸೂರು ದೇಶದೊಳಗೆ | 1 | 8 | 0 |
| ,, ,, ಹೊರಗೆ | 1 | 12 | 0 |
| ,, ,, ಸೀಮೆಯಲ್ಲಿ | 3 | ಪಿಲಿಂಗ್ | |
| ವಿದ್ಯಾರ್ಥಿಗಳಿಗೆ—ಮೈಸೂರು ದೇಶದೊಳಗೆ | 1 | 0 | 0 |
| ,, ದೇಶದ ಹೊರಗೆ .. | 1 | 4 | 0 |

ಎಚ್ ಯೋಗೇಶ್ವರಸಿಂಹಾಯ್,

ಅಧ್ಯಕ್ಷ,

ಸಂಸ್ಕೃತ ಮಹಾಪಾರಶಾಲಾ, ಮೈಸೂರು

सधन्यवादमस्माभिरङ्गीकृता एताः

विनिमयरूपाः पत्रिकाः

- १ मडारकर् रिसच्चे इन्स्टिट्यूट आनल्स, पूना
- २ जर्नल् आफ् ओरियंटल् रिसर्च्, मदरासु
- ३ प्रबुद्धकर्णाटक, बेंगळूरु
- ४ मिथिक् सोसैटि जर्नल्, बेंगळूरु
- ५ यूनिवर्सिटि यूनियन् म्याग्सीन्, मैसूरु
- ६ एम् टि बि आर्ट्स्कालेजुम्याग्जीयन्, सूरत.
- ७ ओरियंटल् कालेजु म्याग्सीन्, लाहोर्
- ८ सद्बोधचन्द्रिके, आनन्दवन
- ९ श्री शारदा, शृंगेरि.
- १० कादम्बरोसग्रह, चामराजनगर
- ११ सनातनधर्मसजीविनी, मैसूरु
- १२ कर्णाटक चन्द्रिके, मैसूरु
- १३ उद्यानपत्रिका, तिरुवादि
१४. सुप्रभातम्, काशी
१५. सुविचारिणी, बेंगळूरु
- १६ वै एं एं ए पत्रिका, मल्लेश्वर, बेंगळूरु
- १७ ग्रामजीवन, लक्ष्मीपुर, मैसूरु
- १८ आन्ध्रसाहित्य पत्रिका, काकिनाड
- १९ विश्वकर्णाटक, बेंगळूरु
- २० ताय्नाडु मैसूरु
- २१ मञ्जुमाषिणी, काञ्चीपुरम्
- २२ सूर्योदय , काशी
- २३ उद्योतः, लाहोर्

ಸು ಚ ನಾ

‘ಮಾನಮೇಯರಹಸ್ಯಶ್ಲೋಕವಾರ್ತಿಕಮ್’

ಇತಿ ನಾಮ ಕಾಶ್ಚಿನ್ಮಹಾಪ್ರಬಂಧ ಆನುಶ್ರುತಶ್ಲೋಕರೂಪೇಣ ಸಗೃಹೀತಃ
ಸರ್ವಸಿದ್ಧಾಂತಸಾರಸಗ್ರಹರೂಪ ಪರಸ್ಸಹಸ್ರವಿಷಯವಿಭಕ್ತ ಏತತ್ಪತ್ರಿಕಾ-
ಸಂಪಾದಕೇನ ಪ್ರಣೀತ ಸುದ್ರಿತ ಪ್ರಕಾಶಿತಶ್ಚಾಸ್ತಿ । ಮೂಲ್ಯಮಸ್ಯ (6) ಪದ್ಯ
ರೂಪಕಾಢಿ ಪ್ರಾಪಣಭೃತಿ ಪೃಥಗೇವ

ಉಪಲಬ್ಧಿಸ್ಥಾನ—ಪತ್ರಿಕಾಸಂಪಾದಕ.

ಶ್ರೀ ಮಧ್ವನಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ (ಮಾನಮೇಯರಹಸ್ಯ)

ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯು ಪ್ರಾರಂಭವಾಗಿ ಒಂಭತ್ತು ವರ್ಷಗಳಾದುವು ಇದರಲ್ಲಿ
ಪ್ರಕಟವಾಗತಕ್ಕ ವಿಷಯಗಳು ಅತ್ಯುತ್ಕೃಷ್ಟವಾದುವು ಸರ್ವರಿಗೂ
ಅಭಿಮಾನವಂತೆ ಕನ್ನಡ ಭಾಷೆಯಲ್ಲಿ ಅನೇಕ ಪಂಡಿತರುಗಳಿಂದ ವಿಷಯಗಳು
ಬರಿಯಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯಂತೆ ನಮ್ಮಲ್ಲಿ ಮತಪ್ರಕಾಶಕವಾದುದು
ಮತ್ತಾವುದೂ ಇರುವುದಿಲ್ಲ ಇದರಲ್ಲಿ ಮಧ್ವಮತಕ್ಕೆ ಸಮ್ಮಂದಿಸಿದ
ವಿಷಯಗಳಿಲ್ಲದೆ, ಇತರ ಮತಗಳ ಪ್ರಮೇಯಗಳೂ, ನೀತಿ, ಧರ್ಮ,
ಪುರಾಣೀತಿಹಾಸಗಳಲ್ಲಿ ಕಂಡುಬರುವ ಅನೇಕ ವಿಷಯಗಳೂ ಬರಿಯ
ಲ್ಪಡುತ್ತಲಿವೆ ಈ ಪತ್ರಿಕೆಯನ್ನು ಆದರಿಸುವಂತೆ ಸರ್ವರೂ ಪ್ರಾರ್ಥಿಸ
ಲ್ಪಡುತ್ತಾರೆ

ಇದರ ವಾರ್ಷಿಕಚಂದಾ ರೂ. ೨-೪-೦ (ಏಪ್ತಾಲು ಸಮೇತ)
ಪೋಷಕರು ೧ನೇ ತರಗತಿ ರೂ. ೧೦-೦-೦. ೨ನೇ ತರಗತಿ ರೂ. ೫-೦-೦
ಹಿಂದಿನ ಸಂಪುಟಗಳನ್ನೇ ಪೇಕ್ಷಿಸುವವರು ಬರೆದು ತರಿಸಿಕೊಳ್ಳಬಹುದು.

ಕೆ. ಪಟ್ಟಾಭಿಷೇಕ, ಬೈಲ, ,

ಕಾರ್ಯದರ್ಶಿ, ಮಧ್ವನಿದ್ಧಾಂತ ಪ್ರಕಾಶಿನೀ ಸಭಾ, ಮೈಸೂರು.